इमर्जेंसी का कच्चा चिट्ठा

कुलदीप नय्यर

हिन्दी रूपान्तर

मानस कश्यप

राधाकृष्ण

Originally published by
VIKAS PUBLISHING HOUSE PVT LTD
5, Ansari Road, New Delhi 110002 (India)
in the English language under the title
THE JUDGEMENT : Inside Story of the Emergency in India

प्रथम हिन्दी संस्करण जुलाई 1977
तृतीय आवृत्ति अगस्त, 1977

मूल्य
पेपरबैक संस्करण 18 रुपये
सजिल्द संस्करण 24 रुपये

आवरण सज्जा सुकुमार शंकर

प्रकाशक
राधाकृष्ण
2 अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली 110002

मुद्रक हरजीत आर्ट प्रेस, दिल्ली 110006

यह पुस्तक
भारत की जनता को समर्पित है
जिसमे यह फैसला करने की शक्ति थी
और जिसने यह फैसला किया।

भूमिका

25 जून 1975 को आधी रात के समय अचानक टेलीफोन की घंटी बजी और मेरी आँख खुल गयी। उधर से कोई भोपाल से बात कर रहा था। वहाँ सड़कों पर पुलिस ही-पुलिस दिखायी दे रही थी। वह चाहता था कि मैं पता लगाकर बताऊँ कि ऐसा क्यो है ? मैंने अलसाये हुए स्वर मे कहा कि अच्छा पता लगाऊँगा और टेलीफोन रख दिया। टेलीफोन रखते ही फिर घंटी बजी। इस बार जालंधर के एक अखबार से टेलीफोन आया था और उधर से जो आदमी बोल रहा था उसने बताया कि पुलिस ने प्रेस पर कब्जा कर लिया था और उस दिन के सारे अखबार जब्त कर लिये थे। इसके बाद मेरे अपने दफ्तर से टेलीफोन आया कि बहादुरशाह जफर मार्ग पर सारे अखबारो के दफ्तरो की बिजली काट दी गयी है और गैर सरकारी सूत्रो का कहना था कि वह 'जल्दी' लौटकर आने वाली नहीं है।

सच पूछिये तो मैंने इन घटनाओ के बीच आपस मे कोई सम्बन्ध नही देखा। मैंने सोचा कि नौकरशाही एक बार फिर अपने हथकडे आजमा रही है। कई महीने पहले बस ड्राइवरो की हड़ताल के मौके पर दिल्ली के अखबारो के दफ्तरो की बिजली काट दी गयी थी, दस घंटे बाद बिजली आयी थी। शायद सरकार नहीं चाहती थी कि जयप्रकाश की 25 जून वाली उस मीटिंग की खबर अखबारो मे छपे जिसमें उन्होंने सत्याग्रह का नारा दिया था।

इतने में इरफान खाँ का टेलीफोन आया, जो उन दिनों जयप्रकाश के शुरू किये हुए साप्ताहिक अखबार एवरीमंस मे काम कर रहे थे। उन्होंने बताया कि उन्हें खबर मिली थी कि जयप्रकाश, मोरारजी और चन्द्रशेखर सहित बहुत-से नेता गिरफ्तार कर लिये गये हैं। इसके कुछ ही घंटे बाद इमर्जेंसी और सेंसरशिप लागू होने का ऐलान आया, सारे राष्ट्र को जंजीरो मे जकड दिया गया था और उसकी जबान बन्द कर दी गयी थी।

किसी भी अखबारवाले को किसी भी दूसरी बात से इतनी निराशा नहीं होती जितनी कि इस बात से कि उसे ऐसी खबरें जमा करनी पड़ें जिनके बारे मे वह जानता हो कि वे छप नही सकती। जल्द ही यह बात जाहिर हो गयी कि इमर्जेंसी का हमला 'कामयाब' हो गया था और ऐसा लगता था कि जनतन्त्र को अब ऐसी रात का सामना करना पडेगा जिसका कोई अन्त नही होगा। लेकिन

सुबह की उम्मीद कितनी ही धुंधली क्यो न रही हो, जब मैं इमर्जेंसी लागू किये जाने की वजहो का पता लगाने निकला तो मेरे मन मे हर बात को दर्ज करते जाने और किसी दिन किताब लिखने का विचार उठा। जानकारी जमा करना बहुत कठिन काम था।

ऐसा खौफ छाया हुआ था, चारों तरफ इतनी दहशत थी कि शायद ही कोई जबान खोलता हो। कुछ बातों का पता तो मुझे चला लेकिन 26 जुलाई को मैं गिरफ्तार कर लिया गया। सात हफ्ते बाद जब मुझे रिहा कर दिया गया तब मैंने फिर से इसका सिरा पकड़ा।

चुनावो का ऐलान होने के साथ ही 18 जनवरी को, इमर्जेंसी मे ढील पड़ने के बाद भी बहुत थोड़े ही लोग थे जो मुझसे बात करने को तयार थे। लेकिन चुनावो के बाद हर चीज बदल गयी और मैंने संजय गांधी, आर० के० धवन, एच० आर० गोखले, चन्द्रजीत यादव, रुखसाना सुल्ताना, बेगम आबिदा अहमद और पुलिस के और दूसरे विभागों के चोटी के अफसरो से बात की। इन सभी लोगो ने कहा कि किसी बात के साथ उनका नाम न जोड़ा जाये और मैंने अपना वायदा पूरी तरह निभाया है। लेकिन इन सभी लोगो ने बहुत खुलकर बात की और इमर्जेंसी की कहानी का लगभग सारा ताना बाना मैंने इन्ही लोगों की बातों की बुनियाद पर बुना है। मैंने कम-से कम छ बार श्रीमती गांधी से इंटरव्यू लेने की कोशिश की लेकिन वह राजी नही हुई।

इमर्जेंसी के दौरान दो बार मैंने लगभग पूरे देश का दौरा किया—एक बार, अक्तूबर नवम्बर 1975 मे और फिर 1976 के मध्य में। इन यात्राओं के दौरान मैं बहुत से लोगो से मिला और मैंने बहुत-सी सामग्री भी जमा की। मैंने कुछ अण्डरग्राउण्ड प्रकाशन भी जमा किये जो दहशत के उन उन्नीस महीनों के दौरान छापे गये थे।

मैं यह दावा नही करता कि इमर्जेंसी के बारे में सारी बातें इस किताब मे हैं। एक बात तो यह कि यह इतनी लम्बी कहानी है कि एक लाख शब्दों में पूरी बयान नहीं की जा सकती, दूसरे, इमर्जेंसी हटने के बाद जो बहुत-से आरोप लगाये गये है, और जो बहुत-सी अफवाहें फली हैं उनकी मैं पूरी तरह छानबीन नहीं कर पाया हूं और इमर्जेंसी के दौरान बहुत से लोगों की काली करतूतों पर राज का जो पर्दा पड़ा हुआ है उसे भी मैं नहीं चीर सका हूं। लेकिन इस किताब में जो कुछ भी दिया गया है उसकी सच्चाई के बारे में अच्छी तरह छानबीन कर ली गयी है।

मैं जानता हूँ कि कुछ बातें जो मैंने चुनकर निकाली हैं वे इनमे से कुछ लोगों को अच्छी नही लगेंगी और मुमकिन है कि वे उनका खण्डन भी करें। मैं उनसे कोई झगडा नही करना चाहता। मैंने तो घटनाओ को सच्चाई के साथ बयान कर देने का अपना काम किया है; मुझे किसी से द्वेष नही है। अपनी योग्यता भर मैंने चीजो को उनके असली रूप मे बयान कर देने की कोशिश की है।

अपनी यात्राओ और लोगो से बातचीत के दौरान मैंने एक बात यह देखी है कि लगभग हर आदमी कितना ही सहमा हुआ क्यो न रहा हो पर निरकुश शासन को स्वीकार किसी ने नहीं किया था। लोगो मे डर था, जो कुछ उनसे कहा जाता था वे वैसा ही करते भी थे, पर उन्होंने इस शासन को कभी स्वीकार नहीं किया। लोगो के मन मे यह डर किसने बिठाया था और इसकी क्या वजह है कि सरकार के अदर और दूसरी जगहों मे भी लगभग किसी ने भी इस दबाव का मुक़ाबला करने की कोशिश नही की ? इन सवालो के बारे मे खुली बहस होनी चाहिए।

—कुलदीप नय्यर

क्रम

डिक्टेटरशिप की ओर

प्रधानमंत्री की कोठी के एक छोटे-से अँधेरे कमरे में दो टेलिप्रिंटर लगातार खड़खड़ा रहे थे और शब्दों की एक अविराम धारा उँडेलते जा रहे थे। सुबह के वक्त, जब काम ज्यादा नहीं होता, प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया (पी० टी० आई०) और यूनाइटेड न्यूज ऑफ इण्डिया (यू० एन० आई०) के दफ्तर रात की आयी हुई खबरों को निबटा रहे थे। आमतौर पर कोई इन मशीनों की ओर झाँककर भी नहीं देखता था, कम से-कम दिन में इतनी जल्दी तो नहीं ही देखता था।

लेकिन, 12 जून 1975 को, श्रीमती इन्दिरा गांधी के सबसे सीनियर प्राइवेट सेक्रेटरी नेदुवलूर कृष्ण अय्यर शेषन, घबराये हुए एक मशीन से दूसरी मशीन के बीच चक्कर लगा रहे थे। कमरे में डरावना सन्नाटा छाया हुआ था, जिसे टेलिप्रिंटरों और टेलीफोन का शोर भी नहीं बेध पा रहा था।

बहुत बड़ी खबर आनेवाली थी और शेषन बड़ी बेचैनी से उसका इंतजार कर रहे थे। उस दिन इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज जस्टिस जगमोहन लाल सिनहा 1971 में लोकसभा के लिए प्रधानमंत्री के चुने जाने के खिलाफ राजनारायण की दायर की हुई याचिका पर अपना फैसला सुनानेवाले थे। लगभग 10 बजनेवाले थे और कुछ ही देर पहले इलाहाबाद टेलीफोन करने पर पता चला था कि जज साहब अभी अपने घर से नहीं निकले थे।

शेषन ने सोचा, सिनहा साहब भी अजीब आदमी हैं। हर आदमी की एक *कीमत होती है, लेकिन सिनहा साहब की शायद नहीं थी।* उन्हें न कोई लालच दिया जा सकता था और न ही उनसे दबाव डालकर कोई काम कराया जा सकता था।

श्रीमती गांधी के अपने प्रान्त उत्तर प्रदेश के एक संसद सदस्य ने इलाहाबाद जाकर बातों-बातों में सिनहा साहब से इसका जिक्र किया था कि क्या 5,00,000 रु० में उनका काम चल जायेगा। सिनहा साहब ने कोई जवाब नहीं दिया था। बाद में उनके एक साथी जज ने उनसे कहा था कि मुझे उम्मीद है कि फैसले के बाद आपको तरक्की देकर सुप्रीम कोर्ट भेज दिया जायेगा। सिनहा साहब ने बस उन्हें तिरस्कार भरी नजरों से देखा था।

फैसले को टलवाने की कोशिशें भी बेकार साबित हुई थीं। गृह मंत्रालय के ज्वाइंट सेक्रेटरी प्रेम प्रकाश नैयर उत्तर प्रदेश हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस से देहरादून में मिले थे और उनके सामने यह सुझाव रखा था कि अगर फैसला प्रधानमंत्री के अपनी *विदेश-यात्रा पूरी कर लेने तक के लिए टाल दिया जाय तो अच्छा हो—फैसला खिलाफ* होने पर ऐसी हालत में बड़ी परेशानी होगी।

चीफ जस्टिस साहब ने यह प्रार्थना सिनहा साहब तक पहुँचा दी। जज इतना नाराज हुए कि उन्होंने फौरन अदालत के रजिस्ट्रार को टेलीफोन किया ऐलान कर देने को कहा कि 12 जून को फैसला सुनाया जायेगा। सिनहा

शासक काग्रेस पार्टी के साथ इतनी रिआयत की थी कि उन्होने 8 जून को गुजरात विधान सभा के चुनाव से पहले फैसला सुनाने की तारीख नहीं रखी थी ताकि चुनाव के नतीजो पर उसका असर न पडे ।

फसला क्या होगा इसका पता जज साहब और उनके स्टेनोग्राफर के अलावा किसी को भी न था, न शेपन को और न किसी और को । खुफिया विभाग के लोग भी कुछ पता नही लगा सके थे । उसके कुछ लोग सिनहा साहब के स्टेनोग्राफर नेगीराम निगम को बहला फुसलाकर भेद लेने के लिए नई दिल्ली से इलाहाबाद तक गये थे । मगर वह भी अपने साहब के ही साँचे मे ढला हुआ लगता था । धमकियो से भी कोई काम नही निकला । और 11 जून की रात से वह और उसकी पत्नी अपने घर से 'लापता' थे । उनके कोई बच्चा था नही और खुफिया विभाग के लोग जब वहाँ पहुँचे तो घर मे बिलकुल सन्नाटा था ।

प्रधानमंत्री के सेक्रेटेरियट के लिए उम्मीद की केवल एक किरण यह थी कि सिनहा साहब की धार्मिक प्रवृत्ति को जानते हुए उनके घर के बाहर जो एक साधु तैनात किया गया था उसने बताया था कि "सब-कुछ ठीक हो जायेगा ।" अन्य गुप्तचरो के साथ वह भी कई दिन से सिनहा साहब की कोठी की चारदीवारी के बाहर डटा हुआ था । लेकिन उसे इस बात का पता नही हो सकता था कि सिनहा साहब ने अपने स्टेनोग्राफर को क्या लिखवाया है । फसले का असली हिस्सा सिनहा साहब के सामने 11 जून को ही टाइप किया गया था, और शायद सिनहा साहब ने उसी वक्त अपने स्टेनोग्राफर को 'लापता' हो जाने के लिए कह दिया था ।

सिनहा साहब जिन नतीजो पर पहुँचे थे वे उन्होंने बिलकुल अपने ही तक रखे थे । मुकदमे की सुनवाई के दौरान भी यह पता लगाना मुश्किल था कि उनका झुकाव किस तरफ है । अगर वह एक पक्ष से दो सवाल पूछते थे तो इस बात का पूरा ध्यान रखते थे कि दूसरे पक्ष से भी उतने ही सवाल पूछें । सुनवाई मे चार साल लगे थे, और जब वह 23 मई, 1975 को खत्म हुई थी उसके बाद से न वह अपने घर से बाहर निकले थे और न ही उन्होंने किसी का टेलीफोन उठाकर सुना था ।

शेपन ने एक बार फिर अपनी घडी देखी । टेलिप्रिंटर लगातार इधर-उधर की खबरें खडखडाये जा रहे थे, जिनका कोई महत्त्व नही था । शेपन ने एक बार फिर घडी देखी । दस बजने मे पाँच मिनट रह गये थे । सिनहा साहब वक्त के बहुत पाबन्द थे । वह अब जरूर हाईकोर्ट पहुँच गये होंगे । हाँ, वह पहुँच गये थे । जज साहब दुबले पतले शरीर के, पचपन वर्ष के आदमी थे । वह अपनी मोटर पर घर से सीधे अदालत आये थे । जैसे ही वह कमरा न० 24 में अपनी कुर्सी पर आकर बैठे, एक पेशकार ने, जो बडे सलीके के साफ-सुथरे कपडे पहने हुए था, खचाखच भरी हुई अदालत मे ऐलान किया, "साहबान, सुनिये जब जज साहब राजनारायण की चुनाव याचिका पर अपना फसला सुनायें तो कोई ताली न बजाये ।"

सिनहा साहब के सामने 258 पेज का फसला रखा था । उन्होंने कहा, "इस मुकद्दमे में जो सवाल उठाये गये हैं उनके बारे मे मैं जिन नतीजों पर पहुँचा हूँ सिर्फ वही मैं पढकर सुनाऊँगा ।'

इसके बाद उन्होने कहा "याचिका मंजूर की जाती है ।" उस क्षण तक बिलकुल सन्नाटा छाया रहा और फिर अचानक तालियों की गडगडाहट गूँज उठी । अखबार वाले टेलीफोनो की तरफ़ लपके और गुप्तचर अपने अपने दफ्तरों की ओर ।

शेपन ने दस बजकर दो मिनट पर यू० एन० आई० के टेलिप्रिंटर की घंटी सुनी और अचानक उसकी नजर उस पर बिजली के कौंदे की तरह छपी हुई खबर

पर पडी। श्रीमती गांधी का चुनाव रद्द। शेषन ने कागज मशीन पर से फाडा और उस कमरे की तरफ लपके जहाँ श्रीमती गाधी बैठी हुई थी। कमरे के बाहर ही उनकी मुठभेड उनके बडे बेटे राजीव से हो गयी, जो इण्डियन एयर लाइंस मे पाइलट है। उन्होंने खबर उसे सुनायी।

राजीव ने जाकर अपनी मा को बताया, "उन लोगों ने आपका चुनाव रद्द कर दिया है।"

श्रीमती गाधी ने खबर सुनकर कोई तूफान खडा नही किया। उन्हें शायद कुछ राहत ही मिली कि इन्तज़ार से तो छुटकारा मिला।

कल सारा दिन वह सोच मे डूबी रही थी। उनकी मुसीबत इस बात से और बढ गयी थी कि उनके घनिष्ठ मित्र दुर्गाप्रसाद धर का, जो पहले उनके मन्त्रिमण्डल मे मन्त्री थे और बाद मे राजदूत होकर मास्को चले गये थे, देहान्त हो गया था लेकिन उस दिन सुबह वह ज्यादा खुश दिखायी दे रही थी।

इतने मे एक और खबर आयी कि उन्हे छः साल के लिए कोई निर्वाचित पद सँभालने से रोक दिया गया है। इस खबर से वह कुछ परेशान हुइं और ऐसा लगा कि वह अपने भावो का छिपाने की कोशिश कर रही हैं। धीरे-धीरे चलकर वह बैठक मे गयीं।

सिनहा साहब ने उन्हे चुनाव मे दो भ्रष्ट आचरणो का अपराधी ठहराया था। पहला यह था कि उन्होने प्रधानमन्त्री के सेक्रेटेरियट के आफिसर, ऑन स्पेशल ड्यूटी यशपाल कपूर को "चुनाव मे अपनी जीत की सम्भावनाएँ बढाने' के लिए इस्तेमाल किया था। सरकारी नौकर होन की हैसियत से उन्हें इस काम के लिए नही इस्तेमाल किया जाना चाहिये था। सिनहा साहब ने कहा कि यशपाल कपूर ने हालाँकि श्रीमती गाधी के चुनाव का प्रचार 7 जनवरी 1971 को शुरू किया था और अपनी नौकरी से इस्तीफा 13 जनवरी को जाकर दिया था, लेकिन वह 25 जनवरी तक सरकारी नौकरी पर बने हुए थे। जज साहब के अनुसार श्रीमती गाधी ने "अपने उम्मीदवार होने का ऐलान" 29 दिसम्बर 1970 को कर दिया था, जब उन्होंने नई दिल्ली मे एक प्रेस कान्फ्रेंस मे भाषण देते हुए चुनाव मे खडे होने के अपने फैसले का ऐलान किया था।

दूसरी अनुचित बात यह थी कि श्रीमती गाधी ने वे मच बनाने के लिए, जिन पर खडे होकर उन्होने चुनाव की मीटिंगो म भाषण दिये थे, उत्तर प्रदेश के सरकारी अफसरो की मदद ली थी। लाउडस्पीकरो का और उनके लिए बिजली का इन्तज़ाम भी इन अफसरो ने ही किया था।

राजनारायण 1,00,000 से अधिक वोटो से हारे थे, इन अनुचित आचरणो का चुनाव के नतीजे पर कोई खास असर नही पडा होगा। प्रधानमन्त्री के चुनाव को रद्द कर देने को उचित ठहराने के लिए ये बहुत ही कमज़ोर आधार थे। लगभग बिलकुल वसी ही बात थी कि सडक पर आवाजाही के किसी कानून को तोडने के अपराध मे प्रधानमन्त्री का चुनाव रद्द कर दिया जाये।

लेकिन कानून तो कानून होता है और यह बिलकुल साफ़ था कि अगर कोई उम्मीदवार "चुनाव मे अपने जीतने की सम्भावना को बढाने के लिए" किसी सरकारी नौकर स मदद लेगा तो यह भ्रष्ट आचरण माना जायेगा। सिनहा साहब ने खुद अपने फैसले मे कहा कि उनके लिए कोई और चारा ही नही रह गया था। प्रधानमन्त्री के लिए कानून म अलग से कुछ नही कहा गया था और वह इसके अलावा कोई और फैसला दे ही नही सकते थ। इस कानून को तोडने की सज़ा भी तय कर दी गयी थी और जज का अपनी तरफ़ से उसमे हेर फेर करने का कोई अधिकार नही था।

प्रधानमन्त्री की कोठी पर जो लोग सबसे पहले पहुँचे वे थे ग्रामतौर पर बहुत प्रसन्नचित्त रहनेवाले पश्चिम बंगाल के मुख्यमन्त्री सिद्धार्थशंकर रे और कांग्रेस के गोल-मटोल अध्यक्ष देवकान्त बरुआ। उनके चेहरे पर विस्मय छाया हुआ था लेकिन जब श्रीमती गांधी ने कहा कि मुझे इस्तीफा देना पड़ेगा तो दोनों चुप रहे।

जैसे जैसे खबर फैली, मन्त्री और दूसरे लोग घबराये हुए 1 सफदरजंग रोड पर तांता बाँधकर आने लगे। बैठक खचाखच भरी हुई थी। कांग्रेस की एक जनरल सेक्रेटरी श्रीमती पूरबी मुखर्जी आयीं और आते ही फफक-फफककर रोने लगीं। यों तो वहाँ पर जितने लोग मौजूद थे सभी ऐसा लगता था किसी का शोक मनाने आये हैं, लेकिन वे भी समझ रहे थे कि पूरबी मुखर्जी ने अपनी भावनाओं का प्रदर्शन कुछ ज़रूरत से ज्यादा ही खुलकर किया था। श्रीमती गांधी ने कुछ झुंझलाकर उनसे अपने ऊपर क़ाबू रखने को कहा। प्रधानमन्त्री का चेहरा उतरा हुआ पर शान्त था। वह जानती थीं कि उनके पास अब इस्तीफा देने के अलावा कोई चारा ही नहीं रह गया है।

किसी ने सुझाव दिया कि वह सुप्रीम कोर्ट में अपील कर सकती हैं। लेकिन उसमें वक्त लगेगा। अभी सिद्धार्थशंकर रे, जो प्रधानमन्त्री के सबसे निकट होने का दावा करते थे, और क़ानूनमन्त्री हरि रामचन्द्र गोखले के बीच बहस हो ही रही थी कि इतने में टेलिप्रिंटर पर एक और खबर आयी कि सिनहा साहब ने अपने फ़ैसले की तामील को बीस दिन तक स्थगित रखने की साफ़ शब्दों में मंजूरी दे दी है। वातावरण बदल गया, सबने सन्तोष की साँस ली। गोखले ने पक्का पता करने के लिए इलाहाबाद टेलीफोन किया। बात सच थी। श्रीमती गांधी के लिए फौरन इस्तीफ़ा देना ज़रूरी नहीं था।[1]

लेकिन बस बाल बाल ही बचाव हो गया था। सिनहा साहब ने फ़ैसले की तामील को स्थगित रखने की अर्ज़ी लगभग नामंजूर ही कर दी थी, क्योंकि उससे एक दिन पहले खुफिया विभाग के लोगों ने उनके स्टेनोग्राफर को जिस तरह परेशान किया था उस पर वह बहुत झल्लाये हुए थे। लेकिन श्रीमती गांधी के वकील वी० एन० खरे ने, जिन्हें फ़ैसला सुनाये जाने के मुश्किल से बारह घंटे पहले हवाई जहाज़ से श्रीनगर से इलाहाबाद पहुँचाया गया था, सिनहा साहब को समझाया कि पुलिस ने उनके स्टेनोग्राफर के साथ जो कुछ भी किया उसमें उनके मुवक्किल का कोई दोष नहीं है। सिनहा साहब ने बात मान ली।

फ़ैसले पर अमल को स्थगित रखने के पक्ष में खरे साहब की दलील यह थी कि नया नेता चुनने में कुछ समय लगेगा और अगर प्रधानमन्त्री से तुरन्त अपना पद छोड़ देने को कहा गया, तो सारे देश का प्रशासन अस्त-व्यस्त हो जायेगा।

प्रधानमन्त्री की कोठी अब तक मन्त्रियों, व्यापारियों, बड़े बड़े सरकारी अफ़सरों और खुशामदियों से खचाखच भर चुकी थी। सिनहा साहब को बुरा भला कहा जा रहा था। साथ ही इस बात पर सन्तोष भी था कि उन्होंने अपने फ़ैसले पर अमल स्थगित कर दिया था। अब उस वटवृक्ष को बचाने के लिए कुछ समय मिल गया था जिसकी छाया में अब तक इन लोगों को शरण मिली हुई थी, वैसे ही जैसे उनके पिता के जमाने में भी ये लोग वटवृक्ष की छाया में पनपते रहे थे।

संकट की इस घड़ी में राजीव अपनी माँ के पास था। पर श्रीमती गांधी का

---

1. आधे घंटे बाद उन्होंने सुप्रीम कोर्ट के अवकाशकालीन जज कृष्ण अय्यर को टेलीफोन किया पर उनसे बात करने से इनकार कर दिया।

दूसरा बेटा संजय अपने मारुति[1] के कारखाने में था, जो 'जनता' मोटर बनाने के लिए लगाया गया था। इस सारी गड़बड़ी में किसी को उसे खबर भेजने का ध्यान ही नहीं आया था, हालांकि इधर कुछ दिनों से अपनी माँ को उन कम्युनिस्टों से बचाने के लिए, जिनसे उसे नफरत थी, उसने राजनीति में सक्रिय रूप से हिस्सा लेना शुरू कर दिया था, उसका भाई राजीव राजनीति में कोई हिस्सा नहीं लेता था।

जब संजय अपनी विलायती मोटर पर दोपहर के समय घर लौटा तो बाहर उसे एक भीड़ दिखायी दी। वह समझ गया कि क्या हुआ होगा और वह सीधा अपनी माँ के पास गया। उसने कहा कुछ नहीं पर उसे देखते ही माँ का चेहरा खिल उठा। संजय अभी अट्ठाईस ही वर्ष का था पर माँ अपने अनुभव से जानती थी कि उसकी सलाह कितनी 'तजुर्बेकार लोगों जैसी होती थी।

श्रीमती गांधी ने कमरा बन्द करके अपने परिवारवालों के साथ सलाह मशविरा किया कि क्या करना चाहिए। उनके दोनों बेटे, राजीव और संजय इसके खिलाफ थे कि वह कुछ दिन के लिए भी इस्तीफा दें। संजय ने यह बात ज्यादा जोर देकर कही। उसने उन्हें वही बात बतायी जो वह खुद पहले से जानती थी—विपक्ष के लोगों से ज्यादा उन्हें खुद अपनी पार्टी के लोगों के ऊँचे हौसलों से डरना चाहिए।

इसके बाद वह अपने घर की सामान रखने की कोठरी में चली गयी। जब भी किसी संकट का सामना होता था वह ऐसा ही करती थी। यही उनका शरण स्थल था जहां उन्हें सोचने का समय और अवसर मिलता था।

उन्हें बहुत सी बातों के बारे में सोचना था। अगर मैं अभी इस्तीफा दे दूं और सुप्रीम कोर्ट से 'बरी' होने के बाद फिर वापस आ जाऊँ तो मेरे उन आलोचकों का मुंह बन्द हो जायेगा, जो यह आरोप लगाते हैं कि मैं हर कीमत पर कुर्सी से चिपकी रहना चाहती हूँ। लेकिन अगर सुप्रीम कोर्ट ने भी इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले को सही ठहराया तो मुझे हमेशा के लिए अपनी कुर्सी छोड़नी पड़ेगी और एक और कलंक ऊपर से लगा रहेगा।

उन्हें भरोसा नहीं था कि जो अपील वह दायर करेंगी उस पर अदालत का रवैया क्या होगा। अब से पहले भी जिन सदस्यों का चुनाव हाईकोर्ट से रद्द हो गया था या पाबन्दी लगा दी गयी थी, उन्हें भी सदन में बैठने की इजाजत दे दी गयी थी, लेकिन उन्हें वोट देने, बहस में हिस्सा लेने या भत्ता पाने का अधिकार नहीं होता था। अगर अदालत ने कुछ शर्तें लगाकर फैसला उनके पक्ष में दिया तो?

उनके सलाहकारों ने संविधान की 88वीं धारा का आसरा लगा रखा था, जिसमें कहा गया था कि 'वोट देने का अधिकार' न होने पर भी किसी भी मंत्री या एटार्नी जनरल को दोनों ही सदनों में बोलने और बहस में हिस्सा लेने का अधिकार होगा। *स्थगन आदेश किसी भी ढंग का हो पर अदालत यह अधिकार किसी भी मंत्री से नहीं छीन सकती थी।*

अगर मैं इस्तीफा दे दूं तो सारी दुनिया में मेरी वाह वाह होगी, एक सच्चे जनवादी की हैसियत से मेरी साख इतनी बढ़ जायगी कि अबकी जब चुनाव होगा तो एक बार फिर 1971 की तरह सत्ता मेरे हाथ में आ जायगी। लेकिन अगर सुप्रीम कोर्ट ने मुझ पर छः साल के लिए चुनाव न लड़ने की पाबन्दी लगा दी तो? इतना समय तो बहुत होता है—इतने समय में तो लोग मेरा किया हुआ सारा अच्छा काम [illegible] जायेंगे, और खुद मेरी पार्टी के अन्दर के और उसके बाहर के सत्ता के लालची

1 पूरी कहानी परिशिष्ट 1 में पढ़िये।

का मेरे गढे हुए मुर्दे उखाडने का काफी मौका मिल जायेगा।

सजय ही उनका अकेला महारा था। उन्हें पूरा भरोसा था कि इस गाढे वक्त मे वही उनके काम आयेगा। कहा जाता है कि 1971 के चुनाव म चुनाव जीतनेवाला यह नारा उसी का दिया हुआ था, 'वह कहते हैं 'इन्दिरा हटाओ', लेकिन मैं कहती हू 'गरीबी हटाओ'।" लेकिन अब सिर्फ नारा गढ लेने से काम नही चलनेवाला था। वह जानता था कि उसकी माँ आसानी से हार माननेवाली नही थी लेकिन इस समय तो वह यही करने जा रही थी। ऐसा किसी हालत म नही हाने दिया जायेगा। मुझे जनता का समथन जुटाना हागा न सिफ माँ को यकीन दिलाने के लिए कि देश को उनकी जरूरत है, बल्कि उनके दुश्मना को दूर रखने के लिए भी।

सजय ने दून स्कूल मे अपनी पढाई बीच मे ही छोड दी थी और फिर इग्लड मे रोल्स रायस के कारखाने म अप्रेंटिस मेकनिक रहा था। राजनीति मे अपने पाँव जमाने के लिए उसे क्या कुछ न करना पडा था। धन और सत्ता दोनो से उसे बहुत लगाव था और अब ये दोनो ही चीजें उसे मिलना शुरू हो गयी थी।

उसके खास मददगार थे 35 वर्षीय राजेन्द्रकुमार धवन, जो प्रधानमत्री के सक्रेटरियट मे एडीशनल प्राइवेट सेक्रेटरी थे। अब से कोई दस बारह साल पहले तक वह रेलवे मे 450 रु० महीने पर क्लक थे। धवन के पास इस समय जो कुछ था वह सजय की बदौलत था, दोनो बहुत गहरे दोस्त थे और कितने ही हगामो मे दोनो साथ थ। श्रीमती गाधी का कोई भी काम पडता तो सबसे पहले उन्ही का सौपा जाता। कुछ लोग तो उन्हें दूसरा एम० ओ० मथाई भी कहते थे, जो नेहरू के स्टेनोग्राफर थे और उनके दफ्तर मे एक सबसे प्रभावशाली आदमी बन गये थे।

सजय इस तुच्छ सरकारी अफसर के सहारे सारी सरकार की मशीनरी को अपने इशारो पर नचाता था, या बात इसका उल्टी थी? धवन के हाथ मे इतनी ताकत थी कि किसी भी छोटे मोटे मत्री या बडे से बडे अफसर को तो वह चुटकियो मे उडा सकता था, वह जो कुछ कहता था उसे प्रधानमत्री का कहा हुआ समझा जाता था। एक बार उसने एक मत्री को इस बात पर बहुत लताडा कि उसने प्रधानमत्री के सेक्रेटेरियट को किसी महत्त्वपूर्ण सवाल के बारे मे याद दिलाने के लिए दूसरा पत्र भेज दिया था।

सजय के एक और बहुत गहरे दोस्त थे हालाकि वह उम्र मे उससे बहुत बडे थ। वह थे 52 वर्षीय बसीलाल हरियाणा के मुख्यमत्री जहाँ वह इस तरह शासन करते थे मानो वह उनकी जागीर हो। उनको उचित अनुचित सही गलत की कोई परवाह नही थी उन्हे इससे कोई सरोकार नही था कि काम किन तरीको से किया जाय बस अपना मतलब पूरा होना चाहिए। एक फटीचर वकील से तरक्की करके वह दस वष से भी कम म मुख्यमत्री बन बैठे थ और इससे भी आगे बढने की तमन्ना रखते थे। उन्होने ही सजय को मारुति के कारखाने के लिए कौडियो के मोल 290 एकड जमीन दे दी थी और यह कीमत चुकाने के लिए सरकारी कज ऊपर से दिलवा दिया था। इसके बदले मे सजय ने उन्हे प्रधानमत्री के दरबारे-खास मे पहुचा दिया था। माँ और बेटे दोनो को उन पर पूरा भरोसा था, क्योकि वह हर वक्त उनके इशारे पर हाजिर रहते थे, सही या गलत कोई भी काम दे दो पूरा कर देते थे।

श्रीमती गाधी इसी त्रिमूर्ति के बीच घिरी हुई थी। और उन्हे इन पर सोलह आने भरोसा भी था। सरकार म पार्टी मे और आमतौर पर सारी राजनीति मे यही लोग उनकी तरफ से सब-कुछ करते थे। वह जानती थी कि ये लोग कभी-कभी ओछे हथकडे भी इस्तेमाल करते थे लेकिन इसमे तो कोई शक नही था कि वे काम पूरा कर

देते थे। उन्होंने इन लोगों को मनमानी छूट दे रखी थी क्योंकि इससे उनके कदम और मजबूत होते थे।

एक और आदमी था जो आड़े वक्त में काम आता था। वह थे कांग्रेस के अध्यक्ष देवकान्त बरुआ। उन्हें लोग दरबारी मसखरा कहते थे और वह हरदम श्रीमती गांधी के गुण गाया करते थे। श्रीमती गांधी ही उन्हें असम राज्य की राजनीति से निकालकर लायी थी और उन्हें पहले बिहार का गवर्नर, फिर अपने मन्त्रिमण्डल का मन्त्री और अन्त में कांग्रेस पार्टी का अध्यक्ष बनाया था। अब वह उनका सहारा ले सकती थी।

श्रीमती गांधी उन्हें अपने पति फीरोज गांधी के एक दोस्त की हैसियत से जानती थी। पति और पत्नी के बीच, जो दोनों ही अपने हठ के पक्के थे, आयेदिन जो झगड़े उठ खड़े होते थे उनमें बरुआ ने अवसर बीच में पड़कर सुलह समझौता कराया था। बरुआ का दक्षिणपंथी कम्युनिस्टों के साथ भी मेल जोल रह चुका था क्योंकि उससे उनको एक विचारधारा की चमक दमक मिल गयी थी, जिसका एक पिछड़े हुए देश में बहुत अच्छा असर पड़ता है। यह बात संजय को पसन्द नहीं थी। वह उन्हें तिरस्कार से 'कॉमी' (कम्युनिस्ट का संक्षिप्त रूप) कहता था, लेकिन जब दोनों ही को विपक्ष की ओर से खतरे का सामना करना पड़ा तो बरुआ और संजय कम से कम उस वक्त तो साथ आ ही गये।

जल्द ही वे दोनों सारी दुनिया के सामने यह साबित करने में जुट गये कि एक जज कुछ भी कहता रहे पर जनता को इसमें जरा भी शक नहीं था कि श्रीमती गांधी उसकी चुनी हुई नेता थी और रहेंगी। उन्होंने पहला कदम यह उठाया कि उनकी लोकप्रियता को 'साबित करने' के लिए भीड़ें जुटाना शुरू किया। यह तमाशा वे पहले भी कई बार कर चुके थे। जबरदस्ती ट्रकें जमा करके गांवों में भेजी गयी कि लोगों को अपने नेता के साथ वफादारी का सबूत देने के लिये सफदरजंग रोड पर श्रीमती गांधी की कोठी पर लायें। सरकारी (दिल्ली ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन की) बसें लोगों की भीड़ को मुफ्त लाने के लिए धड़ल्ले के साथ इस्तेमाल की गयी। यह दूसरी बात है कि इन मीटिंगों के बाद लोगों को मुफ्त वापस ले जाने का कोई बन्दोबस्त नहीं था और उन्हें पैदल ही रगड़ते हुए घर वापस जाना पड़ा।

प्रधानमन्त्री की कोठी से धवन ने आस पास के राज्यों, पंजाब हरियाणा उत्तर प्रदेश और राजस्थान के मुख्यमन्त्रियों को ऐसी ही मीटिंगें कराने के लिए टेलीफोन किया। उन्हें भीड़ें जुटाने के लिए पूरी सरकारी मशीनरी लगा देने का बहुत अनुभव था। जुलाई 1969 में वे यह कर चुके थे, जब श्रीमती गांधी ने 'प्रगतिशील' रूप धारण करने के लिए भारत के चौदह बड़े बैंकों के राष्ट्रीयकरण का फैसला किया था, साथ ही जब वह यह भी दिखाना चाहती थी कि कांग्रेस में उनके प्रतिद्वंद्वी 7५-वर्षीय मोरारजी देसाई दक्षिणपंथी हैं क्योंकि वह बैंकों पर सिर्फ सामाजिक नियन्त्रण लागू करना चाहते थे।

देसाई दो बार प्रधानमन्त्री बनने की कोशिश कर चुके थे। एक बार 1966 में, जब श्रीमती गांधी से पहलेवाले प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री का ताशकन्द में देहान्त हो गया था, और दुबारा 1967 में जब कांग्रेस उस समय की लोकसभा की 520 सीटों में से केवल 285 सीटें जीत पायी थी और किसी तरह बड़ी मुश्किल से उसने सत्ता अपने हाथ में संभाल रखी थी।

धवन ने जनता का समर्थन जुटाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी क्योंकि यशपाल कपूर जो इन बातों का ज्यादा तजुर्बा रखते थे, इन दिनों नजर से गिर गये थे। लोग उन्हें इस बात के लिए बहुत बुरा भला कह रहे थे कि उन्हीं की

श्रीमती गाधी मुसीबत मे फँसी और उन पर चुनाव म भ्रष्ट आचरण का आरोप लगा।
लेकिन धवन यशपाल कपूर की बहन के बेटे थे और उन्होंने अपने मामा से बहुत-कुछ
सीखा था। यशपाल कपूर भी रंक से राजा बने थे। एक मामूली स्टेनोग्राफर से
बढ़कर वह राज्यसभा के सदस्य बन गये थे, और इससे भी बड़ी बात यह थी कि वह
श्रीमती गाधी के राजनीतिक सलाहकार और मुखबिर थे। कपूर हवा बांधने म बहुत
माहिर थे जब भी श्रीमती गाधी को जनता म अपनी साख ऊंची करने के लिए किसी
सहारे की जरूरत पड़ी थी तो यशपाल कपूर बहुत काम आये थे। वह जानते थे कि
किस मौके पर कौन-सी डोरी खींची जाये।

कुछ दिन तक वह रूठे हुए अपने घर पर ही पड़े रहे। उनसे कह दिया गया
था कि इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले म चूंकि उनका चर्चा खास तौर पर किया गया है
इसलिए वह जनता की नजरो के सामने न आयें। बाद म उन्हें फिर वापस बुला लिया
गया। यह नारा उन्होंने ही गढ़ा था कि 'देश की नेता इन्दिरा गाधी'। बरुआ ने यह
कहकर कि 'इन्दिरा ही भारत है' उसमें चार चाँद लगा दिये थे। बरुआ ने यह सोचा
भी नहीं था कि इसकी वजह से बहुत उलझन पैदा हो जायगी क्योंकि यह नारा उस
शपथ से बहुत मिलता जुलता था जो नाजी नौजवानों को दिलायी जाती थी 'एडाल्फ
हिटलर ही जर्मनी है और जर्मनी एडोल्फ हिटलर है।'

मुख्यमन्त्रियों को लोगों को बसों म भर भरकर श्रीमती गाधी की कोठी के
बाहरवाले चौराहे पर भेजने म बहुत समय नहीं लगा। 1969 म जब वी० वी० गिरि
भारत के राष्ट्रपति चुने गये थे उसी दिन से वहाँ इस तरह के जलसे-जुलूसों के लिए
एक बना-बनाया मंच मौजूद था। उस समय श्रीमती गाधी ने इस पद के लिए खुद
कांग्रेस के उम्मीदवार संजीव रेड्डी का विरोध किया था और उस समय भी प्रतिक्रिया
और प्रगति की लड़ाई म उनके प्रति अपने समर्थन का सबूत देने के लिए भीड़ें जुटाई
गयी थी।

जाहिर है, जनता के लिए राजनीति को सीधे सादे शब्दों म पेश करना जरूरी
था। विचारधारा, या विचारधारा को मानने का दावा करने का अपना अलग महत्त्व
था। कांग्रेस बहुत अरसे से 'जनवाद' और 'समाजवादी सिद्धान्तों' का दम भरती
आयी थी, और इसी वजह से वह उस 'समाजवाद' से थोड़ा-सा अलग दिखायी देती
थी जो कि सोशलिस्ट पार्टी की योजना का हिस्सा था। उस समय 'प्रतिक्रियावादी'
की टक्कर पर 'प्रगतिशील' शब्द का बहुत चलन था। श्रीमती गाधी प्रगतिशील थी
और सोशलिस्ट राजनारायण प्रतिक्रियावादी थे, और वह जज भी जिसने कुछ प्रति-
क्रियावादी कानूनों का सहारा लेकर अपना फैसला सुनाया था।

फैसला तो जल्द ही एक आयी गयी बात हो गया। श्रीमती गाधी ने यह जता
दिया कि वह अपनी गद्दी छोड़नेवाली नहीं हैं क्योंकि जनता के विश्वास के सहारे
वह गरीबी हटाने और एक नया समाज कायम करने के लिए काम करती रहेंगी।
कांग्रेस के छात्र संगठन भारतीय राष्ट्रीय छात्र संघ ने जो बाद म संजय गाधी का मना
युवक कांग्रेस म विलीन हो गया कहा श्रीमती गाधी भारत के करोड़ों दबे कुचले
लोगों और शोषित जनता की नेता हैं, न्याय और बराबरी की बुनियाद पर समाज
को बदलकर समाजवादी ढंग का बना देने के संघर्ष म वह उनका नेतृत्व कर रही
हैं। उसने उनके खिलाफ हाइकोर्ट के फैसले के बारे म एक शब्द भी नहीं कहा।

श्रीमती गाधी के लिए समर्थन की यह नुमाइश इतनी भोंडी थी कि कांग्रेस के
कुछ संसद सदस्यों ने जनता को बहलानेवाले इन जलसे-जुलूसों पर नाक भौं सिकोड़ी।
लेकिन श्रीमती गाधी का एक ही जवाब था यह सब-कुछ अपने आप हो रहा है।

देश मे सेठो-साहूकारो के पाँचो सगठनो ने और बडे-बडे उद्योगपतियो ने भी श्रीमती गाधी के समथन मे अपनी आवाज उठायी। उनके 'समाजवादी ढग के' रवैये के बावजूद ये लोग जानते थे कि अपनी धन-सम्पत्ति और अपने विशेषाधिकारो को बचाये रखने के लिए उन्ही का सहारा लेना सबसे अच्छा है। उनकी नीतियाँ उन समाजवादी नीतियो से तो कही अच्छी थी जिन्हे लागू करने का विपक्ष के बहुत से लोग दावा करते थे। उनकी पीठ पर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का भी हाथ था, जिसने अपने 13 जून के प्रस्ताव मे कहा था, "दक्षिणपथी प्रतिक्रियावादी तथाकथित नैतिक आधारो पर प्रधानमत्री के इस्तीफे के लिए छात्रो से जो शोर मचवा रहे हैं, उसमे उनके खतरनाक राजनीतिक उद्देश्य छिप नही रह सकते।" पार्टी जिसका रवैया सोवियत समथक था, यह उम्मीद करती थी कि वह काग्रेस के कधो पर बैठकर कम्युनिस्ट राज्यसत्ता के दरवाजे तक पहुँच जायेगी।

श्रीमती गाधी मे अपना विश्वास व्यक्त करने मे जामिया मिलिया इस्लामिया और भारतीय दलित वग सघ जैसी सस्थाएँ भी पीछे नही रही। कई वर्षो से वह और उनके पिता धम निरपक्ष समाज बनाने की कोशिश करते आये थे। ये लोग विपक्ष पर कैसे भरोसा कर सकते थे, जिसमे राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ का ससदीय सगठन जनसघ शामिल था राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ एक हिन्दू सगठन था जो हिन्दू सस्कृति के आधार पर, या जिसे उसके सचालक भारतीय सस्कृति कहते थे, एक अनुशासनबद्ध समाज बनाने मे विश्वास रखता था।

इस बात के बारे मे तो किसी को कोई शक नही था कि अगर श्रीमती गाधी का बेटा उनके लिए किराये की भीडें न भी जुटाता तब भी उन्हे बहुत व्यापक समथन प्राप्त था। विपक्ष भले ही यह कहता रहे कि असल सवाल यह है कि एक अपराधी प्रधानमत्री को अपने पद पर बने रहना चाहिए या नही और उन लोगो के खिलाफ जनता को चेतावनी देता रहे जो एक अदालती फसले को सडको पर चुनौती देकर देश के जनवादी ढाँचे को तहस नहस कर देने पर तुले हुए थे। लेकिन उनकी आवाज श्रीमती गाधी की जयजयकार के नारो मे लगभग बिलकुल डूबकर रह गयी।

कुछ नौजवान सोशलिस्टो ने अलबत्ता जवाबी प्रदर्शन करने की कोशिश की। जब उनमे से कुछ लोग प्रधानमत्री की कोठी के बाहर पुलिस का घेरा तोडकर अन्दर चले गये और 'इन्दिरा गाधी, इस्तीफा दें' के नारे लगाने लगे तो सजय गाधी की खास मददगार लम्बे कद और खूबसूरत नाक-नक्शे वाली अबिका सोनी ने झपटकर एक लडके को थप्पड मार दिया। 35-वर्षीया अबिका सोनी, जो आगे चलकर युवक काग्रेस की प्रेसिडेंट बननेवाली थी, यह साबित कर रही थी कि वह किसी से पीछे रहनेवाली औरत नही हैं। यह देखकर पुलिस को भी फौरन जोश आ गया, विरोध का स्वर उठानेवालो को बुरी तरह पीटा गया और उनमे से कुछ गिरफ्तार कर लिये गये।

लेकिन इससे विपक्ष ने हिम्मत नही हारी। सोवियत-समथक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को छोडकर, जो श्रीमती गाधी का इसलिए साथ देती थी कि वह समझती थी कि उनका झुकाव रूस की तरफ है विपक्ष की सभी पार्टियो ने ऐलान कर दिया कि वे उन्हे अपना प्रधानमत्री नही मानती। उन्होंने उन पर इस बात के लिए वार किया कि हाईकोर्ट के फसले मे अपराधी ठहरा दिये जाने के बाद भी वह गद्दी से चिपकी हुई थी।

उन सबके लिए—पुराने नेताओ की काग्रेस पार्टी, हिन्दू राष्ट्रवादी किसानो के हितो के समथक भारतीय लोकदल, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी म

निकली हुई मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और सोशलिस्टो के लिए—इलाहाबाद हाई-कोट का फैसला मुँहमांगा वरदान था। वे कई बातो के लिए—भ्रष्टाचार, जनवादी परम्पराओ की तनिक भी परवाह न करने डिक्टेटरशिप की ओर बढन की प्रवृत्ति आदि के लिए—श्रीमती गाधी पर बार बार हमले कर चुके थे, लेकिन कोई भी तरकीब काम नही करती थी।

जो काम वे बरसों म नही कर पाय थे वह अब अदालत के फसले ने उनकी तरफ से कर दिया था। उन्होंने श्रीमती गाधी के इस्तीफे की मांग की और राष्ट्रपति भवन के सामने धरना दिया हालांकि राष्ट्रपति उन दिना गम्भीर रूप से बीमार थे। उन्होने कहा कि वे श्रीमती गाधी के खिलाफ और भी कानूनी कारवाइयाँ करेंगे और उन्होने विभिन्न राज्यो म अपनी पार्टियो के कार्यकर्ताओ को इन्दिरा विरोधी मीटिंगो और प्रदशनो की मुहिम तेज कर देने का आदेश दे दिया।

विपक्ष की सब पार्टियों को मिलाकर भी ससद मे उनके साठ सदस्य भी नहीं थे। लेकिन अब उनका पलडा भारी था। उन्होने नतिकता और उचित आचरण का सवाल उठाया और जयप्रकाश नारायण को जो महात्मा गाधी के बाद राष्ट्र के अन्तरात्मा के रखवाले माने जाते थे सन्देश भिजवाया कि आकर हमारा नेतृत्व कीजिये।

वह अपने लिए जयप्रकाश से अच्छा कोई नेता चुन ही नही सकते थे हालांकि 1974 मे वह जयप्रकाश नारायण को निराश कर चुके थे क्योकि उन्होंने उनकी यह सलाह नही मानी थी कि वे सब एक ही पार्टी म मिलकर काग्रेस के खिलाफ चुनाव लड़ें। जयप्रकाश गाधीवादी थे और अग्रेजो के खिलाफ 1942 के भारत छोडो आन्दोलन के हीरो रह चुके थे। वह हमेशा दबे कुचले और हर चीज से वचित उन बहुमत देश-वासियो की तरफ से आवाज उठाते रहे थे जिनकी अपनी कोई आवाज नही थी। एक लम्बे अरसे के दौरान वह सावजनिक जीवन म साफ सुथरेपन और ईमानदारी का प्रतीक बन गये थे। उन्होंने अपने बिहार राज्य म सावजनिक जीवन मे बढते हुए भ्रष्टाचार के खिलाफ जो आन्दोलन शुरू किया था वह धीरे धीरे ठडा पड गया था। वह आन्दोलन राज्य विधानसभा को भग कराने जसे मामूली लक्ष्य मे घिरकर रह गया था और उसने उन उच्चतर नतिक लक्ष्यो को भुला दिया था जिन्हे जयप्रकाश नारायण पूरा करना चाहते थे—एक ऐसा सच्चा जनवादी ढांचा बनाने की आवश्यकता, जो जनता की जरूरतो को पूरा करने के उपाय कर सके और राजनीति को अवसरवाद से छुटकारा दिलाता। लेकिन बिहार आन्दोलन के दौरान जो पेड लगाया गया था उसमे दो वष बाद फल लगे।

अब से पहले जयप्रकाश श्रीमती गाधी से इस बात पर झगडा करते रहे थे कि उन्होने भ्रष्टाचार को बढावा दिया और समाजवाद के लक्ष्य के साथ गद्दारी की। इलाहाबाद हाईकोट के फसले मे उन्हे नतिक पुनरुत्थान की सावजनिक जीवन के मानदडो का स्तर ऊँचा उठाने की लडाई फिर शुरू करने का सुनहरा अवसर दिखायी दिया।

बहुत अरसे तक उनके और श्रीमती गाधी के बीच चाचा भतीजी जसे सम्बन्ध रहे थे और वह उन्हे इदु कहते थे। लेकिन कई वर्षो से, खास तौर पर पिछले दो वर्षों से वे दोनो एक दूसरे से दूर होते गये थे। वह श्रीमती गाधी को सारे भ्रष्टाचार की जड समझते थे और उनकी राय थी कि श्रीमती गाधी ने बुनियादी आदर्शों को नष्ट कर दिया है। इसलिए इलाहाबाद हाईकोट के फसले के बाद उन्होंने कहा कि श्रीमती गाधी का प्रधानमत्री बने रहने का कोई अधिकार नही है। उन्हे फौरन पद से हट जाना चाहिए। उनका गद्दी से चिपके रहना 'सावजनिक जीवन म शिष्टता और जन-

वादे आचरण के सरासर खिलाफ' था।

श्रीमती गांधी जानती थीं कि जयप्रकाश की ताकत से इंकार नहीं किया जा सकता। जब वह 1 नवम्बर 1974 को उनसे मिले थे—इस मुलाकात का बंदोबस्त दुर्गाप्रसाद धर ने कराया था—तो श्रीमती गांधी इस बात पर राजी हो गयी थीं कि अगर वह कोई और माँग न रखें तो बिहार की विधानसभा भंग कर दी जायेगी। जयप्रकाश इसके लिए राजी नहीं हुए।

जयप्रकाश नारायण को 17 जून को विपक्ष की पार्टियों का एक फौरी सन्देश मिला कि वह फौरन दिल्ली आकर उनकी विशाल रैली की अगुवाई करें। लेकिन उन्होंने इंकार कर दिया। वह इसके पक्ष में थे कि श्रीमती गांधी ने जो अपील दायर की थी उसके बारे में सुप्रीम कोर्ट का फैसला आ जाने के बाद ही कोई लड़ाई छेड़ी जाय।

जयप्रकाश अच्छी तरह जानते थे कि अगर विपक्ष की पार्टियाँ मिलकर एक हो जायें तो उनकी ताकत बेहद बढ़ जायगी। गुजरात विधानसभा के चुनाव में जनता मोर्चे की सफलता इस बात का काफी सबूत था, जहां उसने 182 सदस्यों के सदन में 87 सीटें जीती थीं, और छ निर्दलीय सदस्यों के आकर मिल जाने से जनता पार्टी को पूरा बहुमत मिल गया था। कांग्रेस को सिर्फ 74 सीटें मिली थीं, जबकि 1972 के चुनाव में, जब विपक्ष की पार्टियों में कोई एका नहीं था, उसने 140 सीटें जीती थीं।

इस चुनाव से पहले वहां जयप्रकाश की 'सम्पूर्ण क्रांति' की पहली मुहिम चल चुकी थी। जयप्रकाश गुजरात जैसा आंदोलन सारे देश में छेड़ना चाहते थे। मौका बहुत अच्छा था लेकिन पहले वह यह सुन लेना चाहते थे कि सुप्रीम कोर्ट का श्रीमती गांधी की अपील के बारे में क्या कहना है। उन्हें उम्मीद थी कि कानून की परम्पराओं को देखते हुए देश का सर्वोच्च न्यायालय जस्टिस सिनहा के फैसले को सही ठहराने के अलावा और कुछ कर ही नहीं सकता।

श्रीमती गांधी भी इंतजार कर रही थीं और उन्हें भी यही उम्मीद थी कि अदालत कानून का अक्षरशः पालन करने के बजाय उसकी असली भावना के अनुसार फैसला देगी।

अब चूंकि कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़कर विपक्ष की सभी पार्टियों ने उन्हें प्रधान मंत्री न मानने का ऐलान कर दिया था इसलिए उनके लिए मुसीबतों ही मुसीबतों का सामना था। संसद की बैठक में वह किस मुँह से जायेंगी।

मां ही उन्हें संसद सदस्य तुलमोहन राम को दिये गये इंपोर्ट परमिट के बारे में केन्द्रीय जाँच ब्यूरो (सी० बी० आई०) की रिपोर्ट के सिलसिले में संसद में काफी मुसीबत का सामना करना पड़ रहा था। तुलमोहन राम रेल मंत्री ललितनारायण मिश्र के खास आदमी थे, और इससे पहले कि यह परमिट जारी करने की जिम्मेदारी किसी के खिलाफ साबित की जा सकती, 3 जनवरी 1975 को ललितनारायण मिश्र की हत्या कर दी गयी थी।

एक बार मोरारजी देसाई ने धमकी दी थी कि सी० बी० आई० की रिपोर्ट सबके सामने पेश करने की विपक्ष की एकमत माँग अगर पूरी न की गयी तो वह सदन में सत्याग्रह कर देंगे। श्रीमती गांधी ने स्पीकर गुरदयालसिंह ढिल्लों से बहुत अकड़कर माँग की थी कि मोरारजी देसाई को इस बात पर सदन से बाहर निकाल दिया जाये। बाद में वह स्पीकर के इस फैसले पर बहुत झुंझलायीं कि वह और मोरारजी उनसे उनके चैम्बर में मिलें। उन्हें यह अपमान इसलिए चुपचाप सह लेना पड़ा कि जब स्पीकर ने सुना कि उन्हें उनका यह फैसला अच्छा नहीं लगा तो उन्होंने इस्तीफा दे दिया, और

श्रीमती गाधी को उन्हे समझा बुझाकर राजी करना पडा कि वह अपने पद पर बने रहे।

इस तरह की गन्दी अफवाह भी उड रही थी कि ललितनारायण मिश्र को मरवा देने म उनका हाथ था। यह सच है कि इपोट लाइसेंस काड म उनका हाथ होने की सम्भावना के बारे म जो ले दे हो रही थी उसकी वजह से उन्होने उनसे इस्तीफा देने को जरूर कहा था। पर उन्हे इस बात पर पछतावा हो रहा था और वह अपने आपको अपराधी समझ रही थी कि ललितनारायण मिश्र को उनका साथ देने की कीमत अपने प्राणो से चुकानी पडी थी। सजय और धवन ने रल भवन म मिश्रजी के दफ्तर पर सील लगवा दी लकिन इसकी वजह यह थी कि उन्होने वहा मारुति के बारे म कुछ कागजात जमा कर रखे थे और ये लोग नही चाहते थे कि वे कागजात किसी दूसरे के हाथो म पडें। श्रीमती गाधी को भी इस बात का पता चला लेकिन अभी तक चूकि उन्होने कभी मारुति के मामलात म दखल नही दिया था इसलिए अब भी उन्होने इसकी कोई जरूरत नही समझी।

यह मामला भी ससद मे उठेगा। श्रीमती गाधी ने ससद का जुलाई अगस्त अधिवेशन टलवा देन की बात भी सोची। अगर इपोट लाइसेंस काड पर बहस के दौरान विपक्ष न सदन की कोई कारवाई नही चलने दी थी, तो इलाहाबाद के फसले के बाद तो उसका बर्ताव और भी बुरा होगा। और यह नही कहा जा सकता था कि कामचलाऊ प्रधानमत्री का इन दबावो के सामने क्या रवया होगा।

अपने पद पर बने रहने से उन्हे घटनाक्रम को अपने हिसाब से मोड सकने का थोडा बहुत तो मौका मिलेगा। वह किसी हालत म इस्तीफा दे ही नही सकती थी। लेकिन दूसरो को इसका पता नही चलने देना चाहिए। लोग उन पर यह शुबहा करें कि वह हर हालत म अपनी गद्दी से चिपकी रहना चाहती है इससे तो कही अच्छा होगा कि वह यह जतायें कि दूसरो के समझाने बुझाने पर ही वह इसके लिए राजी हुई है। शायद उनका जवाब पहले से जानते हुए भी उन्होने अपने मत्रिमण्डल के पुराने अनुभवी साथियो जगजीवनराम, यशवतराव चह्वाण और स्वर्णसिंह से पूछा कि क्या मेरी अपील पर सुप्रीम कोर्ट का फसला आने तक मेरे लिए अपने पद पर बने रहना मुनासिब होगा। तीनो ही ने कहा कि अगर उन्होने इस्तीफा दे दिया तो गजब हो जायगा। लकिन ऐसा कहने के लिए उन सबकी वजह अलग अलग थी।

जगजीवनराम ने कहा कि उन्हे अदालती कारवाई का सिलसिला पूरा हो जाने तक इन्तजार करना चाहिए। लेकिन उन्हे अन्देशा था कि सुप्रीम कोर्ट कुछ शर्तों के साथ ही इलाहाबाद हाईकोर्ट के फसले को स्थगित रखने की मजूरी देगा क्योकि ऐसे मामलो म अभी तक सुप्रीम कोर्ट ने कभी बिना किसी शर्त के इस तरह की मजूरी नही दी थी। वह सोच रहे थे कि वही विद्रोह का झडा खडा करने के लिए सबसे अच्छा वक्त होगा। उन्होने मुझसे उन्ही दिनो कहा था "हम सुप्रीम कोर्ट के फसले तक बडी आसानी से इन्तजार कर सकते है।'

पिछले कुछ वर्षो के दौरान श्रीमती गाधी के साथ जगजीवनराम के सम्बन्ध बिगडते गये थे। यहा तक कि इधर कुछ दिनो से बडे बडे सवालो की कौन कहे, छोटे छोटे सवालो पर भी उनसे सलाह नही ली जा रही थी। श्रीमती गाधी हमेशा से जानती थी कि पार्टी म वह उनके सबसे बडे प्रतिद्वन्द्वियो म से थे और 1969 म जाकिर हुसन के मरने के बाद उन्होने यही सोचकर उन्हे राष्ट्रपति के पद के लिए काग्रेस का उम्मीदवार बनाने का सुझाव रखा था कि शायद वह उस ऊचे पद के लाभ आ जायेंगे। उन्हे मत्रिमण्डल म रखने के मुकाबले इस सजावटी पद पर रखने म

कोई खतरा नही था।

यह सच है कि श्रीमती गाधी ने उन्हें इस बात के लिए माफ कर दिया था कि वह दस साल तक इनकम टैक्स देना 'भूल गये थे । लेकिन जगजीवनराम यह समझते थे कि उन्होने मोरारजी के खिलाफ उनका साथ देकर यह कर्ज चुका दिया है, हालाकि 1963 में उनके पिता जवाहरलाल नेहरू ने काग्रेस के पुनर्गठन के नाम पर कामराज योजना मे जब जगजीवनराम और मोरारजी दोनो को मत्रिमण्डल से निकाल दिया था तो दोनो राजनीति के निर्जन वन मे साथ साथ भटकते रह थे। वह बहुत चालाक और महत्वाकाक्षी आदमी थे और श्रीमती गाधी इस बात को जानती थी। अगर सुप्रीम कोर्ट का फैसला उनके खिलाफ हुआ तो विद्रोह का जोखिम उठाये बिना ही प्रधानमत्री का ताज अपने आप ही उन्हे पहना दिया जायेगा। जाहिर है कि ऐसी हालत मे जगजीवनराम को फैसले तक इन्तजार करने मे तकलीफ ही क्या हो सकती थी।

चह्वाण के लिए[1] जब तक श्रीमती गाधी बनी हुई थीं तभी तक वह भी बने हुए थे। उनकी तमन्ना बस यही थी कि उनके बाद दूसरे नम्बर पर वही माने जायें। 1969 मे राष्ट्रपति के चुनाव म इस भरोसे पर कि उन्हे प्रधानमत्री बना दिया जायगा उन्होंने काग्रेस के पुराने सूरमाओ के साथ वोट दिया था लेकिन जब पुराने नेताओ की मण्डली ने सौदेबाजी शुरू कर दी तो वह फिर श्रीमती गाधी के साथ आ गये थे। इसलिए विपक्ष वालो के बीच उनकी साख बहुत गिर चकी थी। जयप्रकाश नारायण के साफ शब्दो मे यह कह देने के बाद कि प्रधानमत्री के पद पर उनके मुकाबले मे वह जगजीवनराम को ज्यादा पसन्द करेंगे[2] उन्हें अब श्रीमती गाधी का साथ छोडने मे कोई फायदा नही था।

स्वर्णसिंह की साख यह थी कि उनसे किसी का कोई झगडा नही है। लेकिन जब प्रधानमत्री के एक खास आदमी से उन्होने सुना कि अगर उन्होंने कभी भी थोडे दिन के लिए भी अपने पद से इस्तीफा दिया तो अन्तरिम काल म वह उन्ही को प्रधानमत्री बनायेंगी तो उनकी उमगें भी जाग उठी वह समझते थे कि वह खुद ही इस्तीफा दे देंगी और हालांकि उन्होने उनको ऐसा न करने की सलाह दी, लेकिन साथ ही यह भी जता दिया कि अगर वह इस्तीफा दे भी दें तब भी कोई हर्ज नही है।

श्रीमती गाधी के कानूनी सलाहकार खासतौर पर सिद्धार्थशकर रे और गोखले भी (जिन्होंने इलाहाबाद मे उनके मुकदमे को चौपट करके रख दिया था) उनके इस्तीफा देने के खिलाफ थे। उनकी दलील यह थी कि सुप्रीम कोर्ट 'दशको को खुश करने' की कोशिश नही करेगा जैसा कि इलाहाबाद के जज ने किया था और इसलिए उन्हे फैसले का इन्तजार करना चाहिए। कुछ और लोगो ने, जिनका कानून से कोई मतलब नही था, यह समझाया कि जिन अपराधो के लिए उन्हें दोषी ठहराया गया है वे सिर्फ 'तकनीकी' अपराध है।

इस बात से तसल्ली तो बहुत मिली लेकिन देश मे बहुत से लोग ऐसे भी थे जिनकी समझ मे यह बात नही आयी कि जनप्रतिनिधित्व अधिनियम म यह कहाँ कहा गया है कि कुछ अपराध तकनीकी होते हैं और कुछ ठोस अपराध होते हैं। 1951 म दो तरह के अपराध हुआ करते थे—मामूली और सगीन। चुनाव रद्द सिर्फ सगीन अपराधो की बुनियाद पर किये जाते थे। लेकिन 1956 म नेहरू के जमाने म चुनाव के

1 काग्रेस के पुराने नेताओ की मण्डली में जिसे सिंडीकेट कहा जाता था चह्वाण से कहा कि वह चुनाव तक के लिए मोरारजी को प्रधानमत्री बन जाने दें जो 1972 म होनेवाले थे।

2 जयप्रकाश नारायण ने यह बात मुझको 1974 म अखबार के लिए एक इटरव्यू के दौरान बतायी।

कानूनों में हेर फेर करके उन्हें आसान बना दिया गया। जिन अपराधों को भ्रष्ट आचरण माना गया था उनकी सूची काट छाँटकर बहुत छोटी कर दी गयी थी। लेकिन सरकारी नौकरों को चुनाव के काम के लिए इस्तमाल करना अब भी अपराध माना गया था। राज्यों के कई मंत्री और संसद के सदस्य और विधायक इसी बुनियाद पर अपनी सीटें खो चुके थे। जब श्रीमती गांधी के मंत्रिमण्डल के आंध्र प्रदेश के मंत्री चेन्ना रेड्डी को चुनाव में भ्रष्टाचार के तरीके अपनाने का अपराधी ठहराया गया था तो उन्होंने खुद उनसे इस्तीफा देने को कहा था।

इसी उसूल पर चलकर तो उन्हें भी इस्तीफा दे देना चाहिए था। वह पार्टी के नेताओं से सलाह मशविरा करती रहीं और इन लोगों ने समझा कि यह उनके खुलेपन की निशानी है। वे लोग खुद अपने अपने राज्यों के संसद-सदस्यों से सलाह मशविरा करने लगे।

सबसे महत्वपूर्ण मीटिंग चन्द्रजीत यादव के घर पर हुई, जो केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में एक राज्यमंत्री थे और कुछ कम्युनिस्ट विचार रखते थे। बरुआ ने इस मीटिंग की अध्यक्षता की। कांग्रेस के केवल कुछ गिने चुने भरोसे के नेताओं को इस मीटिंग में बुलाया गया था। उनमें प्रणव मुखर्जी भी थे, जो उस समय बहुत ही छोटे मंत्री थे। इन लोगों ने इस सवाल पर विचार किया कि अगर श्रीमती गांधी को कुछ दिन के लिए भी अपना पद छोड़ना पड़े तो उनकी जगह प्रधानमंत्री किसको बनाया जाये।

दो में से एक को चुनना था—जगजीवनराम या स्वर्णसिंह। ज्यादातर लोग स्वर्णसिंह के पक्ष में थे क्योंकि उनके बारे में यह समझा जाता था कि उनसे किसी तरह का खतरा नहीं है और उनसे जो भी कहा जायेगा वही करेंगे। लेकिन जगजीवनराम मंत्रिमण्डल के सबसे पुराने सदस्य थे और उनको इस तरह रास्ते से हटा देने का मतलब यही था कि इन लोगों के मन में जो यह डर था कि अगर सुप्रीम कोर्ट ने श्रीमती गांधी को बरी भी कर दिया तो भी जगजीवनराम पर यह भरोसा नहीं किया जा सकता कि वह उनके लिए फिर गद्दी खाली कर देंगे, वह डर खुलेआम सबके सामने जाहिर हो जाता। इन लोगों की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाये। इस मौके पर जगजीवनराम ने जिस तरह श्रीमती गांधी का साथ दिया था उससे तो इन लोगों को यही लगा कि शायद श्रीमती गांधी को भी उन पर भरोसा करने में कोई संकोच नहीं होता। और अगर उनको नजरअन्दाज किया गया और उन्होंने विद्रोह कर दिया तो शायद पार्टी टूट जाय। ये लोग कोई फैसला नहीं कर सके। प्रणव ने मुझे बताया कि अगर सिद्धार्थशंकर रे केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में होते[1] तो सीधे उन्हीं को अन्तरिम प्रधानमंत्री बना दिया जाता। शायद जगजीवनराम के लिए भी उनसे टक्कर लेना मुश्किल होता।

लेकिन यह कोरी अटकलबाजी थी। श्रीमती गांधी अभी अपने पद पर बनी हुई थीं और जब तक वह अपने पद पर थीं तब तक इस बात का पूरा यकीन था कि उन्हें वही भरपूर समर्थन मिलता रहेगा जो हमेशा मिलता रहा था।

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के मंत्रियों, मुख्यमंत्रियों और राज्य के मंत्रियों से कहा गया कि वे श्रीमती गांधी के नेतृत्व में विश्वास प्रकट करते हुए एक शपथ पर दस्तखत करें। चूंकि परमेश्वरनाथ हक्सर[2] मसविदा बहुत अच्छा तैयार करना जानते थे इसलिए इस शपथ

1 पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बनने से पहले वह केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में शिक्षामंत्री थे।

2 हक्सर किसी जमाने में प्रधानमंत्री के सबसे चहेते कर्मचारी थे लेकिन बाद में जब उन्होंने उनको यह समझाने की कोशिश की कि वह संजय और यशपाल कपूर को 'बढ़ावा न दें' तो उन्हें दूध में मक्खी की तरह निकाल फेंका गया और योजना आयोग का डिप्टी चेयरमैन बना दिया गया।

को शब्दो मे पिरोने का काम उन्ही को सौपा गया। 1969 मे जब काग्रेस के दो टुकडे हो गये थे उसके दौरान दूसरे पक्ष को भेजे गये लगभग सभी पत्रो का मसविदा उन्होने ही तैयार किया था। हक्सर के मसविदे मे ढके छुपे ढग से अदालतो की भी आलोचना की गयी थी लेकिन इसे बदल दिया गया क्योकि जजो को नाराज करने से कोई फायदा नही था जबकि सुप्रीम कोर्ट मे श्रीमती गाधी की अपील की सुनवाई होना अभी बाकी थी। लेकिन उनके मसविदे का जो असली हिस्सा था वह ज्यो का त्यो रहने दिया गया "श्रीमती गाधी अब भी प्रधानमन्त्री हैं। हम अच्छी तरह सोच विचार करके इस पक्के नतीजे पर पहुँचे है कि देश की अखण्डता, स्थायित्व और प्रगति के लिए उनका गतिवान नेतृत्व नितान्त आवश्यक है।'

इस बयान पर दस्तखत करने के लिए होड लग गयी, क्योकि इस वफादारी का पट्टा समझा जाने लगा था। सजय अपनी माँ को बराबर बताता रहता था कि किस-किसने अब तक दस्तखत कर दिये हैं। और भला ऐसा कौन था जिसने दस्तखत न किये हो? अखबारो म इन नामो की जो सूची छपी वह बराबर बढती ही जा रही थी।

उडीसा की मुख्यमन्त्री श्रीमती नन्दिनी सत्पथी उस पर दस्तखत करने के लिए भुवनेश्वर से दिल्ली रात को कुछ देर से पहुँची और इस बात पर हठ करने लगी कि अगले दिन सुबह के अखबारो मे दस्तखत करनेवालो की जो सूची छप उसमे उनका नाम भी शामिल रहे। सरकार के सूचना कार्यालय के अफसरो ने सम्पादको को टलीफोन करके इसका पक्का बन्दोबस्त करा दिया। इस बात का बहुत महत्त्व था कि सब लोग जान लें कि कौन कौन श्रीमती गाधी का वफादार है। एक मन्त्री जिन्हाने प्रधान मन्त्री की कोठी से बार बार टेलीफोन किये जाने पर भी दस्तखत करने मे देर की वह थे स्वर्णसिह। वह अपने दिमाग से किसी तरह यह बात नही निकाल पा रहे थे कि अगर श्रीमती गाधी इस्तीफ़ा दे दें तो वह अन्तरिम प्रधानमन्त्री बन जायेंगे। और कई महीने बाद उन्हे इसकी कीमत चुकानी पडी।

इस बीच शहरो और कस्बो मे राज्यो की सरकारो और पार्टी न अपने खर्चे स लाखों लोगो के प्रदर्शन सगठित किये थे, जो सडको पर नारे लगात फिरत थे कि 'हम इलाहाबाद हाईकोट के फैसले को नही मानते।' इसमे यह मतलब भी छिपा हुआ था कि अगर सुप्रीम कोट ने इसके पक्ष म फसला दिया तो वे सुप्रीम कोट का फैसला भी नही मानेंगे। श्रीमती गाधी और उनके लोग हर सूरत के लिए पूरी तैयारी कर रहे थे, अगर कोई अदालत किसी चुनाव के बारे मे, खासतौर पर प्रधानमन्त्री के चुनाव के बारे मे, 'तकनीकी मुद्दो की बुनियाद पर फसला दे द तो वह पत्थर की लकीर नही हो जाता—जनता अपनी जो मर्जी जाहिर कर दे उसके बारे मे तो कोई भी अदालत फैसला नही सुना सकती।

श्रीमती गाधी को एक ऐसी जगह से भी समथन मिल गया जहाँ से उन्होंने इसकी कोई उम्मीद भी नहीं की थी। टी० स्वामीनाथन पहले उनके कबिनेट सेक्रेटरी रह चुके थे। पहले तो उनकी नौकरी की मियाद बढा दी गयी थी और बाद म उन्हे श्रीमती गाधी ने चीफ एलेक्शन कमिश्नर नियुक्त कर दिया था। उन्होंने ऐलान किया कि उन्ह इस बात का अधिकार था कि अगर कोई भी व्यक्ति प्रधानमन्त्री सहित, किसी निर्वाचित पद पर हो और उसे किसी भी वजह म इसके लिए अयोग्य ठहरा दिया जाये तो वह अयोग्यता के इस आदेश को रद्द कर सकते हैं। नियमो म यही कहा गया था, हालांकि उनसे पहले वाले चीफ एलेक्शन कमिश्नर सन वर्मा न 1971 के चुनाव के बारे मे अपनी रिपोट मे यह कहा था कि एलेक्शन कमिश्नर को इस तरह के मनमाने अधिकार' नही होने चाहिए।

इस बात की पहले से ही काफी चेतावनी दे दी गयी थी कि सुप्रीम कोर्ट के फैसले को अटल मान लेना जरूरी नही है। फिर भी श्रीमती गाधी इस बुनियाद पर अदालत मे आने वाली लडाई की तरफ लापरवाही नही बरत रही थी।

उन्होने सुप्रीम कोर्ट मे अपनी अपील की पैरवी के लिए बम्बई के जाने हुए वकील नानी ए० पालकीवाला स सम्पर्क किया। पालकीवाला को उस वक्त प्रतिक्रियावादी कहा गया था जब उन्होने भेदभाव की बुनियाद पर चौदह भारतीय बैंको का राष्ट्रीयकरण अदालतो से रद्द करवा दिया था और पुराने देसी रजवाडो का गुजारा बन्द कर दिये जाने के बारे मे इस दलील की बुनियाद पर नुक्ता उठायी थी कि गुजारा चूकि जायदाद का हिस्सा है और जायदाद को सविधान मे बुनियादी अधिकार माना गया है इसलिए गुजारा बन्द नही किया जा सकता।[1] लेकिन वक्त पडने पर श्रीमती गाधी के बुलाने पर पालकीवाला जो देश के सबसे बडे औद्योगिक प्रतिष्ठान टाटा के एक सीनियर डायरेक्टर भी थे, हवाई जहाज से दिल्ली पहुँचे। उन्होंने श्रीमती गाधी से कहा कि मैं मुकदमा जिता सकता हूँ। लेकिन उनका अपने पद पर बने रहना जनवाद की कसौटी पर कहाँ तक खरा उतरता था? लेकिन अब उन्हे किसी को भी यह बताने मे कोई झिझक नही रह गयी थी कि उन्होने अपने पद पर बने रहने का फैसला कर लिया है और वह थोडे दिन के लिए भी अपना पद छोडने को तैयार नही हैं।

उन्हे कोई पक्का फैसला करना ही था क्योकि उन्हे इस्तीफा देने पर राजी करने के लिए दबाव बढता ही जा रहा था। और यह दबाव विपक्ष की ओर से ही डाला जा रहा हो ऐसी बात नही थी। खुफिया विभाग ने यह सूचना दी थी कि काग्रेस पार्टी के कुछ सदस्य भी यह चाहते थे कि जब तक 'बादल छट न जायें' मतलब यह कि जब तक वह सुप्रीम कोर्ट से बरी न हो जायें तब तक के लिए उन्हे इस्तीफा दे देना चाहिये। पुराने सोशलिस्टो का एक छोटा सा अपनी धुन का पक्का गिरोह जिसे युवा-तुर्क कहा जाता था इस मुहिम मे आगे आगे था। श्रीमती गाधी जानती थी कि ये लोग क्या कर सकते हैं। एक बार उन्होने मोरारजी देसाई को नीचा दिखाने के लिए इन लोगो का सहारा लिया था। उन्हाने सरकारी फाइलें युवा तुर्क चन्द्रशेखर को यह साबित करने के लिए दिलवा दी थी कि अपने बेटे कान्ति देसाई की करतूतो मे मोरारजी की 'रजामन्दी' शामिल है। कान्ति देसाई ने अपना जीवन एक बीमा एजेण्ट की हैसियत से शुरू किया था और अब एक मालदार व्यापारी बन बैठा था।

यह बात सभी जानते थे कि प्रधानमत्री की हैसियत मे श्रीमती गाधी ने जो कुछ किया था उससे युवा तुर्क खुश नही थे। कुछ समय से वह इन लोगो को दबाकर रखने की कोशिश कर रही थी। हालांकि वह चन्द्रशेखर के काग्रेस वर्किंग कमेटी मे चुने जाने मे रुकावट डालने मे सफल नही हो पायी थी लेकिन उन्होने राष्ट्रपति से कहकर एक और युवा तुर्क मोहन धारिया को मत्रिमण्डल से इसलिए निकलवा दिया था कि उन्होने उनसे जयप्रकाश नारायण के साथ बातचीत शुरू करने के लिए कहा था।

और अब धारिया उनके इस्तीफे की माग कर रहे थे। उनका सुझाव था कि जब तक सुप्रीम कोर्ट उन्हे बरी न कर दे तब तक के लिए उन्हे अपना पद छोडकर जगजीवनराम या स्वर्णसिंह को प्रधानमत्री बना देना चाहिये। दूसरे युवा तुर्क भी उनके साथ थे और श्रीमती गाधी को डर था कि यह माग तेजी के साथ बढती ही जायगी।

1 गोलकनाथ बनाम पजाब राज्य वाले मुकदमे मे यह फैसला दिया गया था कि मूल अधिकारो पर ससद को पुनर्विचार करने का अधिकार नहीं है।

खुफिया रिपोर्टों में बताया गया था कि युवा तुर्कों का जगजीवनराम से लगातार सम्पर्क था और वह विद्रोह की आग भड़का रहे थे। जगजीवनराम ने लगभग बिलकुल खुले तौर पर कहना शुरू कर दिया था कि प्रधानमंत्री के खिलाफ अदालत के फैसले को कोई साधारण बात नहीं समझा जाना चाहिए।

वह गिनतियां के खेल में भी हिस्सा लेने लगे थे और यह हिसाब लगाने लगे थे कि अगर मैं विद्रोह कर दूं तो कितने लोग मेरा साथ देंगे। लेकिन उन्होंने देखा कि उनका साथ देनेवालों की संख्या काफी नहीं थी।

श्रीमती गांधी दांव पेंच खूब जानती थीं। उन्होंने इस सुझाव का चर्चा करवा दिया कि अगर मैं अपना पद छोड़ने का फैसला करूं भी तो अगला प्रधानमंत्री नियुक्त करने का अधिकार मुझी को रहना चाहिये। जैसा कि उन्हें अन्देशा था इस सुझाव को किसी ने शुरू से ही नहीं माना—जगजीवनराम और चह्वाण दोनों इसके खिलाफ थे।

जगजीवनराम खून का घूंट पीकर रह गये जब उन्हें यह मालूम हुआ कि बहुत थोड़े अरसे के लिए जब श्रीमती गांधी डांवाडोल थीं तो उनके दिमाग में कमलापति त्रिपाठी का नाम था, जिन्हें वह उत्तर प्रदेश से केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में 'कामचलाऊ प्रधानमंत्री' की हैसियत से लायी थीं।

इसके बारे में जगजीवनराम ने यह रवैया अपनाया कि "हम लोग इस शर्त पर त्रिपाठीजी का समर्थन करने को तैयार हैं कि वह श्रीमती गांधी को फिर वापस न आने दें।"

थोड़े दिन के लिए जिसे प्रधानमंत्री बनाया जाय अगर वह अपनी वफादारी से फिर सकता है तो वह आसानी से जांच बिठाने के लिए भी तैयार हो सकता है और श्रीमती गांधी बहुत अरसे से जांच का विरोध करती रही थीं। जांच से उनकी साख को ऐसा धक्का पहुंचता कि उनके लिए दुबारा संभल सकना मुश्किल हो जाता। उनकी एक दुखती रग तो उनके बेटे का मोटर का कारखाना मारुति ही था।

दूसरी दुखती रग थी मुकद्दमे की सुनवाई के दौरान 'दिल का दौरा' पड़ जाने से[1] रुस्तम सोहराब नागरवाला की मौत। नागरवाला पेंशनयाफ्ता फौजी अफसर थे और कहा जाता था कि उन्होंने प्रधानमंत्री और उनके सेक्रेटरी हकसर की आवाज की नकल करके नई दिल्ली में स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया की तिजोरियों से साठ लाख रुपये निकलवा लिये थे। (बैंक के बड़े खजांची वेदप्रकाश जिन्होंने इसकी इजाजत दी थी, नौकरी छोड़ने के बाद कांग्रेस में चले गये थे।)

श्रीमती गांधी अगर जगजीवनराम पर भरोसा नहीं करती थीं तो इसकी वजह थी। उन्हें यों भी युवा तुर्कों से टक्कर लेनी पड़ रही थी। पार्टी के अन्दर जोड़ तोड़ और तिकड़मों का बाजार इतना गर्म होता जा रहा था कि उनके लिए यह जरूरी हो गया था कि संसद में उनके भरोसे के लोग हों। उन्होंने सभी मुख्यमंत्रियों को दिल्ली में तलब किया कि वे अपने अपने राज्यों के संसद सदस्यों पर 'नियन्त्रण' रखें। वह चाहती थीं कि कांग्रेस संसदीय दल जिसकी मीटिंग उनके मन्दिर से 18 जून के लिए तय की गयी थी उन्हें अपना भरपूर समर्थन दे। सिद्धार्थशंकर रे और आंध्र प्रदेश से राज्यसभा के सदस्य वी० बी० राजू को इस काम पर तैनात किया गया। उनको हिदायत दी गयी कि जो प्रस्ताव वे तैयार करें उस पर जगजीवनराम से पक्की हामी भरवा लें।

---

1 एक डॉक्टर ने जिसको नागरवाला के शव की जाँच से कुछ सम्बन्ध था मुझे बताया कि दिल का दौरा पड़ने के चिह्न बनावटी तरीकों से भी पैदा किये जा सकते हैं।

इन लोगों पर पूरा भरोसा किया जा सकता था कि वे इस काम में कोई कसर उठा न रखेंगे। कांग्रेस संसदीय दल के भरपूर समर्थन का ऐसा सबूत मिल जाने के बाद राष्ट्रपति के लिए विपक्ष की उनको बर्खास्त कर देने की मांग को रद्द कर देना आसान हो जायेगा। संविधान यह कहता था कि जब तक बहुमत दल को उन पर विश्वास रहे तब तक वह प्रधानमंत्री बनी रह सकती थी।

जिस समय इलाहाबाद हाइकोर्ट का फैसला आया था उस समय राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद श्रीनगर गये हुए थे। जब उन्होंने फैसला सुना तो वह उसी दिन लौट आना चाहते थे लेकिन श्रीमती गांधी ने उन्हें टेलीफोन करके ऐसा करने से रोक दिया। अगले तीन दिन तक वह लगातार उनसे पूछते रहे कि वह वापस लौट आयें या नहीं लेकिन वह नहीं चाहती थीं कि वह वक्त से पहले अपने दौरे पर से वापस आ जायें कि कहीं लोग इसका कोई गहरा मतलब न लगाने लगें और यह न सोचने लगें कि राष्ट्रपति उनका इस्तीफा लेने के लिए जल्दी वापस आ रहे हैं। राष्ट्रपति भवन के बाहर विपक्ष के लोग यही मांग लेकर धरना दिये बैठे थे।

16 जून को उनके दिल्ली वापस पहुंचने के थोड़ी ही देर बाद श्रीमती गांधी उनसे मिलीं। बहुत ही थोड़ी देर की मुलाकात थी, पंद्रह मिनट से भी कम लगे होंगे, जिसके दौरान उन्होंने राष्ट्रपति को बताया कि इलाहाबाद हाईकोर्ट के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट में अपील दायर करने के सिलसिले में क्या तैयारियां की जा रही हैं।

उसी दिन बाद में कम्युनिस्टों को छोड़कर विपक्ष के दूसरे नेताओं के साथ राष्ट्रपति का मुलाकात ज्यादा लम्बी रही। इन लोगों ने उनसे प्रार्थना की कि आप श्रीमती गांधी को अपना पद छोड़ देने का 'हुक्म' दे दें। राष्ट्रपति अहमद ने जाहिर यही किया कि वह इस सुझाव पर विचार कर रहे हैं—वह यह नहीं चाहते थे कि ऐसा लगे कि वह किसी का पक्ष ले रहे हैं, वह इस कलंक को भी धो डालना चाहते थे कि वह श्रीमती गांधी के लिए सिर्फ रबड़ की एक मुहर हैं। उन्होंने पहले तो उनसे कहा कि यह तो देख लें कि कांग्रेस संसदीय दल की मीटिंग में क्या नतीजा निकलता है। लेकिन तब उन्होंने महसूस किया कि शायद उन्होंने गलत बात कह दी है और मुमकिन है कि इसका यह मतलब लगाया जाय कि वह किसी ऐसी बात की तरफ इशारा कर रहे हैं जिसका उनको गुमान भी नहीं था। उन्होंने फौरन अपनी बात बदल दी और कहा कि उनका मतलब यह था कि वे लोग सुप्रीम कोर्ट का फैसला आ जाने तक इंतजार कर लें। उनके प्रेस सेक्रेटरी ने यह सफाई देते हुए एक बयान भी जारी कर दिया ताकि अखबारों को कोई गलतफहमी न रह जाय।

राष्ट्रपति से मिलने के बाद विपक्ष के लोगों ने राष्ट्रपति भवन के सामने से अपना धरना उठा लिया। लेकिन इसके साथ ही उन्होंने श्रीमती गांधी को पद छोड़ने पर मजबूर करने के लिए अपनी मुहिम और तेज करने का भी फैसला किया। उनमें से कई लोगों ने कांग्रेस पार्टी के सदस्यों के साथ सम्पर्क स्थापित करने की बात भी सोची कि कम-से-कम उनसे यह अपील तो की ही जाये कि वे प्रधानमंत्री के पद की मर्यादा बनाये रखें। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी उस प्रतिनिधिमण्डल में शामिल नहीं थी जो राष्ट्रपति से मिलने गया था लेकिन उसने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़कर विपक्ष की बाकी सभी पार्टियों की इस मांग का पूरा समर्थन किया कि श्रीमती गांधी अपनी कुर्सी छोड़ दें।

श्रीमती गांधी के इस्तीफे की मांग करने के लिए राष्ट्रपति से विपक्ष के लोगों की मुलाकात पर वह सबसे ज्यादा चिढ़ गयीं। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। 1962 में चीन के हाथों भारत की हार के बाद जब उनके पिता की साख रसातल पहुंच

गयी थी, तब भी प्रधानमंत्री के इस्तीफे की माँग करने के लिए विपक्षवाले एक साथ राष्ट्रपति से नहीं मिले थे।

वह महसूस करने लगी थी कि वह चारों ओर से घिर गयी हैं। उन्हें सबसे बड़ी चिंता विपक्ष की वजह से नहीं बल्कि खुद अपनी पार्टी की वजह से थी, जिसमें असंतोष उबल रहा था। ज्यादातर सदस्य यह महसूस कर रहे थे कि अगर वह नेता बनी रहीं तो उनके लिए फरवरी 1976 में होनेवाला अगला चुनाव लड़ना नामुमकिन हो जायेगा। जगजीवनराम और युवा तुर्क ज्यादा से ज्यादा संसद-सदस्यों के साथ सम्पर्क स्थापित कर रहे थे, और उनके सामने यह दलील रख रहे थे कि अदालती फैसलों की मर्यादा बनाये रखने के लिए श्रीमती गांधी को इस्तीफा दे देना चाहिए। यह ऐसी दलील थी जिसे समझने में आम लोगों को भले ही कोई कठिनाई होती पर विधायकों और संसद सदस्यों को नहीं।

इस खींचातानी का उन पर असर पड़ने लगा था। बात बात पर अब उन्हें गुस्सा आने लगा था। अब उनके भाषण भी गुस्से से भरे होते थे। 'मेरे खिलाफ तरह-तरह के झूठे इल्जाम लगाये जाते हैं, झूठी बातें कही जाती हैं मुझे बदनाम करने के लिए उल्टी सीधी तोहमतें लगायी जाती हैं लेकिन मैं सब कुछ बर्दाश्त करती रही हूँ।" इस तरह की बातें वह उन मीटिंगों में कहती थीं जो उनके समर्थन के लिए जुटायी जाती थीं।

उन्होंने जस्टिस सिनहा से भी लोहा लिया। खुलेआम उन्होंने कहा कि यशपाल कपूर 14 जनवरी के बाद से सरकारी नौकर नहीं रह गये थे और उसी तारीख से उन्होंने तनख्वाह लेना भी बंद कर दिया था। (सिनहा साहब ने कहा था कि यशपाल कपूर 25 जनवरी तक सरकारी नौकर की हैसियत से काम करते रहे थे), और यह कि प्रधानमंत्री की मीटिंगों के लिए सरकारी अफसरों से मंच बनवाने का चलन उनके पिता के जमाने में भी था।

अपने भाषणों में वह अक्सर 1971 की बंगला देश की लड़ाई में पाकिस्तान के खिलाफ भारत की जीत का चर्चा भी ले आती थीं, उस वक्त उनके सबसे कट्टर विरोधी जनसंघ ने भी कहा था कि वह कांग्रेस पार्टी की नहीं बल्कि भारत की नेता हैं वह पार्टियों और विचारधाराओं से परे हैं।

वह अपने हर भाषण में विपक्षी दलों पर हमला करने लगीं और पहले की तरह ही सरकार की नीतियों की हर खराबी के लिए उन्हें दोष देने लगीं, ये लोग गद्दार थे। वह कहती थीं कि विपक्षवाले ही प्रगति के रास्ते का रोड़ा हैं। अब वह कहने लगीं कि 'स्वार्थी लोगों की तरफ से डाली जाने वाली बाधाओं के बावजूद समाजवाद कामयाबियाँ हासिल करता रहेगा।

विपक्ष की ओर उनके पिता का जो रवैया रहा था उसमें और उनके रवैये में जमीन आसमान का फर्क था। विपक्ष के बहुत से लोगों को वह दिन याद थे जब राष्ट्रीय महत्त्व के सवालों पर उनसे सलाह ली जाती थी और खाने की समस्या या राष्ट्रीय एकता की समस्या से सम्बन्ध रखनेवाले कार्यक्रमों में उनका सहयोग माँगा जाता था। अब उन्हें सिर्फ कांग्रेस पार्टी के फैसलों की सूचना देने के लिए बुलाया जाता था। वे जानते थे कि संसद में उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। लेकिन ऐसा तो नेहरू के जमाने में भी था और इसके बावजूद उनसे सलाह ली जाती थी और उनकी बात सुनी जाती थी। नेहरू ने उन्हें कभी यह महसूस नहीं होने दिया कि इन लोगों को उन पर या उनकी सरकार पर उँगली उठाने का कोई अधिकार नहीं है। वह विरोध करने के अधिकार को बढ़ावा देते थे और संसदीय लोकतंत्र में विपक्ष के लिए जो भूमिका तय

की गयी है उसे अच्छी तरह समझते थे।

श्रीमती गांधी के लिए विपक्ष बस एक रोड़ा था। उन्होंने विपक्ष पर इल्जाम लगाया कि वह हमेशा अपने राजनीतिक फायदे के लिए देश का सारा काम-काज ठप्प कर देने की कोशिश करता रहता था और इस सिलसिले में उन्होंने 1974 की रेलवे हड़ताल की मिसाल दी। रेलवे के कुल 13,50,000 नियमित कर्मचारियों में से, जिनमें से 3 50 000 रोजाना मजदूरी पर काम करते थे, लगभग 65 प्रतिशत ने हड़ताल में हिस्सा लिया था, लेकिन सरकार ने उन्हें कुचलने के लिए ऐसे भीषण दमन का सहारा लिया जैसा इससे पहले कभी नहीं देखा गया था—कितने ही लोग नौकरियों से बर्खास्त कर दिये गये, कितने ही नजरबन्द कर दिये गये, हड़ताल करनेवालों के परिवारों को रेलवे के क्वार्टरों से निकाल दिया गया, रेलवे की सस्ते अनाज की दुकानों को माल देना बन्द कर दिया गया और मजदूरों की बस्तियों का पानी बिजली काट दिया गया।

वह इस बात की चर्चा करते नहीं थकती थी कि चारों तरफ अराजकता और राजनीतिक तिकड़मबाजी फैलती जा रही है। यह सच है कि कुछ यूनिवर्सिटियों में गड़बड़ी मची हुई थी और कारखानों में इससे पहले कभी काम का इतना नुकसान नहीं हुआ था।

विपक्ष यह समझता था कि वह डिक्टेटर बनना चाहती हैं और इसलिए उनके पाँव उखाड़ना जरूरी है। जयप्रकाश ने अपना हमला और तेज कर दिया था और वह केन्द्रीय सरकार को लोकतन्त्र की आड़ में डिक्टेटरशिप के दर्जे पर उतार लायी गयी एक औरत की हुकूमत कहने लगे थे। दबी जबान से उनकी पार्टी के कई लोग भी अब इसी तरह की दलीलें देने लगे थे।

और सबसे बड़ी बात यह थी कि कानूनी राय भी कुछ बहुत हौसला बढ़ाने वाली नहीं थी। कानून के अच्छे से अच्छे जानकारों ने उनको बताया था कि हद-से हद वह इसकी उम्मीद कर सकती हैं कि सुप्रीम कोर्ट कुछ शर्तों के साथ हाईकोर्ट के फैसले को स्थगित कर दे, हालाँकि वे समझते थे कि 'अन्तिम फैसले' में उन्हें बरी कर दिया जायगा। अगर हाईकोर्ट का फैसला कुछ शर्तों के साथ स्थगित किया गया तो उससे उनकी साख को जो झटका लगेगा उसके बाद क्या वह हुकूमत कर पायेंगी?

जैसा कि उन्होंने एक सम्पादक से कहा 'राजनीति को सम्भालना' या ही मुश्किल हो गया है। बाहर से विपक्ष के दबाव—जयप्रकाश को सुनने के लिए लाखों लोगों की भीड़ जमा होने लगी थी—और खुद अपनी पार्टी के अन्दर सुलगती हुई विद्रोह की आग की वजह से उनके मन में तरह-तरह की आशंकाएं उठने लगीं।

फैसले और उसके बाद की घटनाओं के बारे में अखबारों ने जो सुर्खियाँ दी और जो ब्यौरा छापा उससे उनका अदेशा और बढ़ता गया। वह सोचने लगीं कि अखबारों ने न कभी उनकी कठिनाइयों को ठीक से समझा है और न ही उनकी कामयाबियों को। नई दिल्ली के एक दैनिक अखबार ने तो उनको और उनके परिवार वालों को विरोधियों की हत्या तक में हाथ बताया था। उन्हें पूरा यकीन था कि अखबारों को उनसे बैर था, एक बार उन्होंने सम्पादकों को बताया कि उन्होंने तो अखबार पढ़ना ही छोड़ दिया था क्योंकि उन्हें मालूम था कि कौन-सा अखबार क्या लिखेगा।

अखबारवालों के बारे में उनकी राय अच्छी नहीं थी। वह जानती थी कि खरीदा जा सकता है। सच तो यह है कि उन्हें ललितनारायण मिश्र ने बताया था कि किस तरह उन्होंने ह्विस्की, नकद पैसा और सूट का कपड़ा देकर कितने ही

पत्रकारो को, खास तौर पर नई दिल्ली के पत्रकारो को, अपनी तरफ़ मिला रखा था। उनके कहने पर उनके अपने सेक्रेटेरियट ने भी कितनी ही बार उनके आलोचकों पर हमला करने के लिए 'प्रगतिशील' पत्रकारो को इस्तेमाल किया था। वह जानती थी कि पत्रकार ही क्यो, अखबारो के मालिक भी खरीदे जा सकते थे। लेकिन अब ऐसा लगता था कि इन सब लोगो ने उनके खिलाफ गिरोहबन्दी कर रखी थी।

उनका धीरज टूटने लगा था और उन्हे ऐसा लग रहा था कि जसे चारो तरफ से दुश्मनो ने उन्हें घेर लिया हो। ऐसा लगता था कि उनके बेटे सजय और उसकी टोली को छोडकर, जिसमे धवन भी शामिल थे, बाकी सब लाग उनको गिरा देने के लिए कमर बाँध चुके हैं।

चारो तरफ बचैनी और हलचल बढती जा रही थी, गरीबी हटाओ' के उनके नारे स जनता के रहन-सहन म कोई सुधार नही हुआ था। 1950 51 और 1965 66 के बीच कीमतें तीन फीसदी प्रतिवष स कुछ ही ज्यादा बढी थी। लेकिन उनके शासन-काल मे कीमतें औसत से पन्द्रह फीसदी की रफ्तार से बढी थीं। अब उनके खिलाफ लोग जितना खुलकर बोलने लगे थे उतना इसस पहले उन्हाने कभी नही देखा था।

उन्होंने महसूस किया कि हालत जिस तरह विगडती जा रही है वह उनके लिए खतरनाक साबित हो सकती है। यही वह वक्त था जब उन्हान उन लोगो का मुह बन्द करने के लिए, जो काग्रेस के अन्दर और बाहर दोना जगह उनकी बुराइयाँ गिनान लग थे, कुछ सख्त कदम उठाने की बात सोची। विपक्ष जनमत का अपन पक्ष मे कर सकता था। लगभग सभी पार्टियाँ मिलकर एक हो गयी थी और काग्रेस पार्टी के अन्दर से टूट जाने का खतरा था।

उन्हें विपक्ष के बारे मे 'कुछ करना होगा जिसकी ताक्त ससद म उनकी अपनी पार्टी के छठे हिस्से के बराबर भी नही थी। उन्ह पूरा भरोसा था कि जब भी उन्होने कोई कारवाई करने का फसला किया तो उसे पूरा करने मे देर नहीं लगेगी, क्योकि उन्हाने सारी ताकत प्रधानमत्री के सक्रेटेरियट के हाथा म समेट रखी थी।

यह सिलसिला उनसे पहलेवाले प्रधानमत्री लालबहादुर शास्त्री के ज़माने मे ही शुरू हो चुका था। उनके सक्रेटरी एल० के० झा का हर चीज म दखल रहता था और उन्हे लोग सुपर सक्रेटरी कहने लगे थे। श्रीमती गाधी के सिविल सर्विसवाले सक्रेटरी पी० एन० हकसर तो झा से भी दो कदम आग बढ गय थे और उन्होंने पूरी व्यवस्था को इस तरह सगठित किया था कि हर चीज़ प्रधानमत्री के सेक्रेटेरियट के चारो ओर ही घूमती थी। उसकी मजूरी के बिना कोई डिप्टी सक्रटरी तक नही नियुक्त किया जा सकता था। उन्हाने अलग ही एक मिनी-सरकार बना ली थी। इस सक्रेटेरियट के हर अफसर को एक एक क्षेत्र की लगभग पूरी ज़िम्मेदारी सौंप दी गयी थी—चाहे वह आर्थिक क्षेत्र हो या विदेशो से सम्बन्ध रखना हो या विज्ञान का क्षेत्र हो। सभी मत्रालय इन्ही लोगो स आदेश लेकर काम करत थे। लेकिन हकसर की सबसे बडी देन यह थी कि उन्हान इस ढाँचे पर राजनीतिक रग चढा दिया था। आज़ादी के बाद देश के इतिहास मे पहली बार सरकार की मशीनरी का राजनीतिक कामो के लिए, जरूरत पडने पर काग्रेस पार्टी के कामो के लिए, इस्तेमाल किया जाने लगा था। कुछ वर्षों बाद उन्हे अपने इस दिन के किये पर पछताना पडा।

श्रीमती गाधी न इस मशीनरी को उन लोगो पर नियत्रण रखने की ताक़त दी जो 'सुरक्षा प्रदान कर सकते थे। केन्द्र म उनके पास बॉडर सिक्योरिटी फोर्स (बी० एस० एफ०), सेन्ट्रल रिज़र्व पुलिस (सी० आर० पी०), सेन्ट्रल इडस्ट्रियल सिक्योरिटी फ़ोर्स (सी० आई० एस० एफ०) और होमगार्ड के लगभग 7 00 000 पुलिसवाले थे।

इन टुकडियो का विभिन्न राज्यो की पुलिस से (जिसकी सख्या 8 00,000 बतायी जाती थी) और हथियारबन्द फौज से, जिसमे लगभग 10,00 000 सिपाही थे, कोई सम्बन्ध नही था।

उनको ऐसा लगा कि विपक्ष हद तक जाने की तयारी कर रहा है, उनको अपनी पार्टी के अन्दर के और बाहर के दुश्मन अब यह करने की कोशिश कर रहे थे जो वह राजनीतिक लडाई म नही कर पाये थे—उन्ह हटान के लिए वे एक 'अडियल' जज के फैसले का सहारा लेने जा रहे थे। जरूरत पडने पर वह भी हद तक जा सकती हैं।

सजय का इसके बारे मे कोई शक नही था और उसने अपनी माँ को यह बता भी दिया। और जब वह हाईकोर्ट के फैसल के बाद सत्ता और उचित आचरण की खीचातानी मे पडी हुई थी तब उसी ने उन्हें फैसला करने मे मदद दी थी और उसके बाद से वही उनका खास सलाहकार बन गया था। और उसी ने उनके सामन यह बात साबित कर दी थी कि देश का और देश की जनता को उनकी जरूरत थी।

सजय दिन रात उनके मन म यही बात बिठाता रहता था कि आप अपने विरोधियो के साथ जरूरत से ज्यादा नरमी बरतती हैं और उनके खिलाफ कोई कारवाई करने मे झिझकती हैं। आडे वक्त मे काम आनवाले उसके दोस्त बसीलाल का भी यही कहना था जिन्होने अपने विरोधियो को पिटवाकर, हवालात म बन्द करवाकर या पुलिस से तग करवाकर हरियाणा मे विपक्ष की आवाज बिलकुल बन्द कर दी थी। बसीलाल ने कहा, "मैं होता तो इन सबको जेल मे डलवा देता। बहनजी आप इन लोगो को मेरे हवाले कर दीजिये, मैं एक एक को ठीक कर दूँगा। आप जरूरत से ज्यादा मुरव्वत और शराफत से काम लेती हैं।" उन्होंने अपन हरियाणा राज्य म यह बात साबित कर दी थी कि लोग इज्जत उसी की करते हैं जिसमे ताकत हो, जो काम पूरा करके दिखा सके।

लगभग सभी मुख्यमत्री श्रीमती गाधी को यह चेतावनी द चुके थे कि उन्ह 'कुछ' करना होगा, नही तो घटनाओ की लहर उन्हे अपनी लपेट मे ले लगी। उन्होंने यह मामला सजय पर छोड दिया। वही उन्हे दबाव के आगे न झुकन के लिए पूरा सहारा दे रहा था। जिस वक्त उनके पक्के से पक्के समथको के पाँव भी लडखडाते दिखायी दे रहे थे उस वक्त उसी ने उनको इस्तीफा न देने की सलाह दी थी।

जैसा कि बाद मे सजय न अपन एक दोस्त को बताया, 15 जून को उसो 'हालात को ठीक करन के लिए कोई योजना" बनाने का काम शुरू किया। उसका मसूबा यह था कि राजनीतिक स्तर पर और सरकारी स्तर पर सरकार का ढाँचा बदल दिया जाये। उसे काम करन का लोकतान्त्रिक तरीका पसन्द नही था। न ही उसम कायदे कानून की लम्बी चक्करदार कारवाई को बर्दाश्त करने का धीरज था। वह वक्त चाहता था, और वक्त तजी मे निकलता जा रहा था।

सबसे पहला काम उसने यह किया कि अपने कमरे म दो 'खुफिया टेलीफोन लगवा लिये। ये टेलीफोन सिर्फ मत्रियो और चोटी के अफसरो के यहाँ लगाये जा सकते थे, लकिन सभी लोग जानते थे कि उसका हुक्म प्रधानमत्री का हुक्म है और इसलिए यह काम फौरन कर लिया गया। अब वह किसी को भी उसके सक्रेटरी की माफत टेलीफोन करन का झझट मोल लिये बिना सीधे टेलीफोन कर सकता था।

उसके दिमाग म इस बात की पहले से कोई योजना नही थी कि वह क्या करना चाहता है। लकिन उसे पूरा यकीन था कि हर विरोधी को या तो खरीदा जा सकता है या तोडा जा सकता है। इसम किसी तरह की मुरव्वत नहा की जानी

चाहिए। जैसा कि एक बार उसने पश्चिम जर्मनी के किसी अखबार से इंटरव्यू के दौरान कहा था, वह डिक्टेटरशिप को पसन्द करता था लेकिन 'हिटलर जैसी नहीं'। एक बार अगर लोगों के मन में डर बिठा दिया जाये तो वे या तो हुक्म मानना सीख जायेंगे या कम-से-कम अपनी ज़बान नहीं खोलेंगे। संजय चाहता था कि जो हुक्म दिया जाये उसे लोग मानें और इसके लिए वह ओछे से ओछे हथकंडे को भी बुरा नहीं समझता था।

शुरू में योजना सिर्फ अखबारों पर लगाम लगाने और विपक्ष के कुछ नेताओं और महत्वपूर्ण लोगों का मुंह बन्द कर देने की थी। इस तरह 'अनुशासन' का पक्का बन्दोबस्त हो जायेगा और सब लोग ठीक रास्ते पर आ जायेंगे। अखबार ऐसी कोई बात नहीं छाप पायेंगे जो सरकार को बुरी लगे और विपक्ष के लोग ऐसी बात नहीं कह पायेंगे जो 'नापसन्द' हो।

अखबारों का मुंह बन्द करना ज़रूरी था। जैसा कि श्रीमती गांधी और संजय दोनों ही अक्सर अपने परिवार के दूसरे लोगों को कहा करते थे, उनके विरोधियों को आसमान पर चढ़ा देने और सरकार के खिलाफ 'अविश्वास का वातावरण' पैदा करने का सारा दोष अखबारों का था। लेकिन अखबार और विपक्षवाले दोनों ही मिट्टी के शेर थे और उन्हें आसानी से काबू में किया जा सकता था।

संजय ने जब अपना मारुति का कारखाना लगाया था उसी दिन से वह अखबारों से खुश नहीं था। अखबारवालों ने इस कारखाने के बारे में और खुद उसके बारे में हद से ज़्यादा लिखा था—ज़रूरत से ज़्यादा ऐसी बातें जो उसे अच्छी नहीं लगी थीं, हालांकि उसने सम्पादकों को अपना कारखाना दिखाने का खुद ही बन्दोबस्त किया था।

इसकी ज़्यादातर ज़िम्मेदारी उसने सूचनामंत्री इन्द्रकुमार गुजराल के मत्थे मढ़ दी थी। उसका कहना था कि गुजराल की पत्रकारों से दोस्ती है लेकिन वह उनसे कभी सरकार के पक्ष में कोई बात नहीं लिखवा पाये। यह उसकी ज़्यादती थी। 1969 में जब चौदह बैंकों का कारोबार सरकार ने अपने हाथ में ले लिया था उसके बाद से गुजराल ने ही श्रीमती गांधी की धूम बांधकर उन्हें आसमान पर चढ़ा दिया था और उनके पैर मज़बूत करने के लिए सरकारी रेडियो और टेलिविज़न और प्रकाशनों का पूरी तरह इस्तेमाल किया था। उन्होंने अखबारों पर भी दबाव डाला था, खासतौर पर इश्तहार देकर छोटे और कमज़ोर अखबारों पर—देश भर में सबसे अधिक इश्तहार सरकार ही देती थी इसलिए उसके पास दूसरों को अपने पक्ष में रखने के लिए इन को बहुत कुछ था। लेकिन इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले के बाद ऐसा लगता था कि गुजराल का जोश कुछ ठंडा पड़ गया था।

संजय के साथियों धवन और बंसीलाल को भी गुजराल और अखबार दोनों ही से चिढ़ थी। धवन यह दलील देते थे कि गुजराल ने पत्रकारों को बहुत सर पर चढ़ा रखा है और उन्हें उनकी असली हैसियत बता दी जानी चाहिए। बंसीलाल ने उन्हें बताया कि चंडीगढ़ के ट्रिब्यून अखबार को सरकारी इश्तहार देना बन्द करके और जो गाड़ियां यह अखबार लेकर हरियाणा जाती थीं या उस राज्य में होकर गुज़रती थीं उनकी पुलिस से तलाशी करवाकर किस तरह उन्होंने उसे सीधा कर दिया था।

लेकिन एक छोटे से राज्य में एक अखबार के खिलाफ जो कुछ किया गया था क्या वही सारे देश में अखबारों को काबू में रखने के लिए किया जा सकता था? संजय

के दोस्त कुलदीप नारग[1] ने उसे एक छोटी सी किताब दी जिसमे फिलीपाइस के सेंसरशिप के नियम दिये हुए थे और इस बात का भी पूरा ब्योरा दिया गया था कि इन नियमो को वहाँ लागू करने के लिए क्या बन्दोबस्त किया गया था। नारग को यह सामग्री नई दिल्ली म अमरीकी दूतावास के अपने कुछ दोस्तो से मिली थी।

जयप्रकाश नारायण और दूसरे लोगो के खिलाफ कारवाई की योजना तो बहुत पहले जनवरी मे ही बना ली गयी थी। मुझे इसका पता प्रधानमत्री के सेक्रेटेरियट के एक सदस्य से चला था। उसने कहा था कि 'कब्जा करने' की कुछ तरकीबों के बारे मे सोच विचार हुआ है। बस यहाँ-वहाँ से कुछ बिखरी बिखरी बातें ही वह पकड सका था, और हालाकि उसे पूरा ब्योरा नही मालूम था, उनमे जयप्रकाश की गिरफ्तारी और आर० एस० एस० पर पाबन्दी शामिल थी।

तब मैं सम्वाददाता नही था, दफ्तर मे बैठकर काम करता था, इसलिए मैंने यह खबर जनसघ के दनिक मदरलैंड और इडियन एक्सप्रेस को भिजवा दी। मदरलैंड मे खबर इस तरह छपी

> नई दिल्ली, 30 जनवरी—भारत सरकार ने राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ पर पाबन्दी लगा देने का फैसला कर लिया है।[2] उसने श्री जयप्रकाश नारायण को गिरफ्तार करने का भी फसला किया है।
>
> उम्मीद की जाती है कि आर० एस० एस० पर पाबन्दी 2-3 फरवरी की रात को लगायी जायगी और जयप्रकाश को 3 फरवरी को पटना मे हवाई जहाज म उतरते ही गिरफ्तार कर लिया जायेगा।
>
> श्री गफूर (बिहार के मुख्यमत्री) ने जब यह कहा था कि 'मैं किसी भी हद तक जाने को तयार हूँ, तो वह सिफ प्रधानमत्री के फसले का ऐलान कर रहे थे।
>
> ये दोनो फैसले इसी हफ्ते कैबिनेट की राजनीतिक मामलात की कमेटी मे लिये गये।
>
> इस आर्डिनेंस का मसविदा तयार करने मे पश्चिम बगाल के मुख्य मत्री श्री सिद्धार्थशकर रे ने भी हाथ बँटाया है—जो 1969 म प्रधानमत्री के लिए आधी रात को भेजे जानेवाले सन्देशो का मसविदा भी तैयार करते थे।
>
> इस आर्डिनेंस म कई बार फलाया गया यह झूठ फिर दोहराया गया है कि आर० एस० एस० एक खुफिया सगठन है जो अहिंसा मे विश्वास नही रखता। और उससे श्री एल० एन० मिश्रा की हत्या की जिम्मेदारी हिसा के उस वातावरण पर रखी गयी है जो आर० एस० एस० ने और जे० पी० के आन्दोलन ने पदा किया है।

इडियन एक्सप्रेस ने जे० पी० की गिरफ्तारी के बारे मे इसके अलावा और कुछ नही कहा कि इसकी सम्भावना है, लेकिन बाकी खबर छाप दी।

> नई दिल्ली, 30 जनवरी—यहाँ के राजनीतिक क्षेत्रो म ऐसा समझा जाता है कि जल्द ही राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ पर पाबन्दी लगाने के बारे म एक आर्डिनेंस जारी किया जानेवाला है।

1 उसी की गाडी म सजय एक बार ग्रेजुएट लडकियो के होस्टल के बाहर पकडा गया था और नारग ने उसे बचाया था।

2 सिद्धार्थशकर रे ने श्रीमती गांधी को 8 जनवरी को एक पत्र लिखकर उनसे आर्डिनेंस जारी करके आर० एस० एस० पर पाबन्दी लगाने को कहा था।

इस दिशा मे अटकलबाजी बिहार के मुख्यमत्री श्री अब्दुल गफूर के इस बयान से शुरू हुई, जो उन्होने बुधवार को यहा एक प्रेस कान्फ्रेंस के दौरान दिया था कि बिहार मे श्री जयप्रकाश नारायण के आदोलन की रोकथाम के लिए बडी कारवाई की जानेवाली है।

याद रहे कि श्री गफूर ने इस बात से भी इकार नही किया था कि श्री नारायण गिरफ्तार किये जा सकते हैं। यह भी समझा जाता है कि सर्वोदय नेता की गिरफ्तारी इस हफ्ते के आखिर मे या अगले हफ्ते के शुरू मे हो सकती है।

आर० एस० एस० पर पाबन्दी लगने के बाद इस सगठन के खास खास नेता भी गिरफ्तार कर लिए जायेंगे। गिरफ्तार किये जानेवाले लोगों की सूची कई दजन तक पहुँच सकती है।

जनसघ से श्रीमती गाधी को जो नफरत थी उसे सभी जानते थे। जब उसने मार्च 1974 मे दिल्ली म एक प्रदर्शन करने की योजना बनायी थी तो उन्होंने दिल्ली पुलिस के इस्पेक्टर जनरल को उन लोगो के नाम दिये थे जिन्हें वह चाहती थी कि वे गिरफ्तार कर लिए जायें। अधिकारी यह महसूस करते थे कि हालत ऐसी नही है कि ऐसा कदम उठाया जाय लेकिन उनका हुक्म था। बाद मे उन्होंने दिल्ली प्रशासन के चोटी के अफसरो को बदल दिया। और यही वह वक्त था जब सजय और धवन ने ऐसे अफसरो को जो उनके वफादार रहे दिल्ली मे तैनात करवा दिया।

जनवरी मे जो मसूबे बनाये गये थे वे सजय के अब बहुत काम आये, जो 'हर चीज़ को काबू म रखने' की तरकीबें सोच रहा था। श्रीमती गाधी, जिनसे हर कदम पर सलाह ली जाती थी, जयप्रकाश और मोरारजी देसाई को शुरू ही मे गिरफ्तार कर लेने के पक्ष मे नही थी। लेकिन बाद मे बात उनकी समझ मे आ गयी—उनके जैसे नेताओ को उपद्रव भडकाने के लिए खुला छोड रखना खतरनाक साबित हो सकता था।

इन तैयारियो म 55वर्षीय राज्यमत्री ओम मेहता भी हाथ बँटा रहे थे। हालाकि गृह मत्रालय मे वह दूसरे नम्बर पर थे लेकिन असली ताकत उन्ही के हाथ मे थी क्योकि चर्चा यह थी कि वह प्रधानमत्री के करीब हैं। उन्हे कई बार 'होम मेहता' के नाम से भी पुकारा जाता था। सविधान से हटकर जो भी काम करवाना होता था उसके लिए सजय उन्ही को इस्तमाल करता था।

धवन को ओम मेहता फूटी आँखो नही सुहाते थे क्योकि उनकी सजय तक सीधी पहुँच थी। लेकिन यह निजी पसन्द और नापसन्द का वक्त नही था, सब लोग मिलकर काम करते रहे। धवन बहुत बुनियादी हैसियत रखते थे क्योकि श्रीमती गाधी अफसरो को ही नही बल्कि मत्रियो तक को उन्ही के जरिये आदेश भिजवाती थी। धवन जो कुछ कह देते थे उसके बारे मे यह समझा जाता था कि प्रधानमत्री यही चाहती हैं।

बसीलाल का प्रधानमत्री के साथ बराबर सम्पर्क रहता था। उनसे 18 जून की मीटिंग के लिए दिल्ली मे जमा राज्यो के मुख्यमत्रियो से चर्चा करने के लिए कहा कि कोई बडी कारवाई की जाने वाली है। बसीलाल ने सिद्धार्थशकर रे और सत्पथी से बात करने से इकार कर दिया क्योकि वह उन्हें कम्युनिस्ट बसीलाल और सजय दोनो ही उन्हे नापसन्द करते थे, इसलिए श्रीमती । बताने की जिम्मेदारी खुद अपने ऊपर ले ली।

जाहिर म उन्हे यह नही बताना था कि क्या कारवाई की

लेकिन हर राज्य में भरोसे के अफसरों को यह बताया जा रहा था कि उन्हें क्या करना चाहिये। दिल्ली में, जहाँ विपक्ष के ज्यादातर नेता मौजूद थे यह काम किशनचंद को सौंपा गया। वह आई० सी० एस० से रिटायर हो गये थे और उस वक्त दिल्ली के लेफ्टिनेंट गवर्नर थे। संजय का उन पर यह बहुत बड़ा एहसान था कि उसी ने उनको इतने ऊँचे पद पर पहुँचा दिया था। उनके साथ और नवीन चावला के साथ संजय का सीधा सम्पर्क था। नवीन दून स्कूल में उनके साथ पढ़ चुका था और इस वक्त लेफ्टिनेंट गवर्नर का स्पेशल असिस्टेंट था।

उस वक्त तक इमर्जेंसी की कोई बात नहीं थी बस इतना सुनने में आता था कि अखबारों के खिलाफ और विपक्षवालों के खिलाफ 'कोई कारवाई होने वाली है'। इस पर कोई चर्चा नहीं करता था कि वह कारवाई क्या होगी। कानून और संविधान की दृष्टि से इसके नतीजे क्या हो सकते हैं इसका लेखा-जोखा अभी करना बाकी था। लेकिन इरादा पक्का था, इस संकट से बाहर निकलने का कोई रास्ता ढूँढना ही था।

कारवाई की तारीख भी अभी तय होनी थी। लेकिन श्रीमती गांधी के दिमाग में यह बात साफ थी कि जो कुछ भी करना हो वह इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले के खिलाफ स्टे आर्डर के लिए सुप्रीम कोर्ट में उन्होंने जो अर्जी दे रखी है, उसका फैसला हो जाने के बाद ही किया जाये। उनके वकील अवकाशकालीन जज जस्टिस वी० आर० कृष्ण अय्यर[1] के सामने अपील दायर करने की तैयारियाँ कर रहे थे, जिनके बारे में श्रीमती गांधी समझती थीं कि 'विचारधारा की हद तक वह उनकी तरफ हैं।

उधर उनका बेटा और उसकी टोली लड़ाई का नक्शा बनाने में लगे हुए थे, और इधर श्रीमती गांधी पार्टी का भरपूर समर्थन जुटाने की मुहिम में लगी हुई थीं। और ऐसा लगता था कि उनको कामयाबी मिल रही है। सिद्धार्थशंकर रे और राजू 'समर्थन प्रस्ताव' लेकर जगजीवनराम के पास गये थे और यह सुझाव रखा था कि वही उसे पेश करें। प्रस्ताव में श्रीमती गांधी में पार्टी का 'पूरा भरोसा और विश्वास' एक बार फिर दोहराया गया था और यह यकीन जाहिर किया गया था कि प्रधानमंत्री की हैसियत से उनके लगातार नेतृत्व के बिना राष्ट्र का काम ही नहीं चल सकता।' जगजीवनराम ने प्रस्ताव के मसविदे में कोई खास हेर फेर नहीं किया, सच तो यह है कि उन्होंने राजू को शाबाशी दी और कहा कि तुमने कांग्रेस को बचा लिया' है।

श्रीमती गांधी ने भी जगजीवनराम के पास यह संदेश भिजवाया कि वह इस बात का पक्का बन्दोबस्त कर लें कि युवा तुर्क प्रस्ताव के खिलाफ कुछ न बोलें। युवा तुर्कों ने जगजीवनराम को बता दिया था कि वे प्रस्ताव का समर्थन करने को तैयार हैं, शर्त बस इतनी है कि उसका वह अन्तिम वाक्य निकाल दिया जाय जिसमें कहा गया था कि "प्रधानमंत्री की हैसियत में उनके लगातार नेतृत्व के बिना राष्ट्र का काम ही नहीं चल सकता।' उन लोगों ने इस हिस्से पर कोई एतराज नहीं किया कि 'श्रीमती गांधी नव उत्थान के पथ पर आगे बढ़ते हुए आज के भारत की और जनता की उमंगों की प्रतीक हैं। इस समय पहले कभी की अपेक्षा कांग्रेस को और राष्ट्र को उनके नेतृत्व और मार्गदर्शन की जरूरत है।' लेकिन वे इस बेहूदा बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे कि उनके बिना काम ही नहीं चल सकता।

1 भारत के भूतपूर्व चीफ जस्टिस एम० एम० शास्त्री ने 1972 में अय्यर की नियुक्ति का विरोध इस बुनियाद पर किया था कि अय्यर कम्युनिस्ट थे।

जगजीवनराम उन सबकी इस सामूहिक राय को तो नही बदलवा सके, लेकिन अलबत्ता इस बात पर राजी कर लिया कि व मीटिंग मे आयें ही नही, क्योंकि अगर उन्होने यह सवाल उठाया तो बदमजगी होगी। युवा तुर्कों के न हाने पर कुछ लोगो का माथा तो ठनका और कुछ कानाफूसी भी हुई, लेकिन 516 सदस्यो वाले ससदीय दल पर इसका कोई असर नही पडा, उसने तो वही किया जो उस करना था। उसने एकमत होकर श्रीमती गाधी का समथन किया। अपने अपने राज्यो के ससद-सदस्यो पर कडी नजर रखनेवाले मुख्यमत्री दूर खडे तालियाँ बजाते रहे। जगजीवनराम ने प्रस्ताव पेश किया, लेकिन उन्हाने श्रीमती गाधी के गुण गिनाने स ज्यादा इस बात की चर्चा की कि सरकार और अदालतो के बीच तालमेल रहना चाहिए। चह्वाण ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए जो भाषण दिया उसने यह कमी पूरी कर दी, उन्होंने श्रीमती गाधी की तारीफ न सिफ इस बात के लिए की कि उन्होने 1971 की लडाई मे देश का नेतृत्व करके उसे विजय की मजिल तक पहुँचाया बल्कि इस बात के लिए भी कि इस लडाई के बाद जो आर्थिक सकट आया उसस भी देश को उन्होने ही उबारा।

जसा कि पहले से तय था, श्रीमती गाधी पार्टी की मीटिंग मे इस तरह आयी जैसे कोई रानी सलामी लेने आयी हो, और वह बस वहुत थोडी देर ही वहाँ ठहरीं। उन्होने अपन भाषण मे जो कुछ कहा उसमे कोई नयी बात नही थी—यही कि मौजूदा सकट के बादल काफी दिन म घिर रहे थे और यह उनके खिलाफ और कांग्रेस के खिलाफ 'कई ताकतो के गठजोड का नतीजा था और यह कि वह अपनी सारी ताकत जनता से हासिल करती हैं।

जब प्रस्ताव को सभी ने एकमत होकर पास कर दिया तो मीटिंग के अध्यक्ष बरुआ न सुझाव दिया कि सब लोग श्रीमती गाधी के कमरे मे चलें जो ससद के सेंट्रल हाल के पास ही था जहाँ काग्रेस के ससद सदस्य जमा हुए थे, जगजीवनराम ने यह कहकर कि श्रीमती गाधी अपने घर जा चुकी हैं इस सुझाव को वही दफन कर दिया। वह समझौतबाजी के रास्ते पर काफी आगे जा चुके थे, सच तो यह है कि वह जरूरत से ज्यादा समझौतेबाजी कर चुके थे और इसके बाद वह खुशामद की खुली नुमाइश नही करना चाहते थे।

प्रस्ताव पास हो जाने के बाद इस सवाल मे कोई दम ही नही रह गया कि सुप्रीम कोट अपना फसला कुछ शर्तों के साथ देगा या बिना किसी शत के। सभी का रवया यह मालूम होता था कि चाहे जो कुछ हो जायें, उन्हें अपनी जगह बने रहना चाहिये। अगर सुप्रीम कोट उन्हें ससद की बहसो मे वोट दने या हिस्सा लेने की इजाजत न भी दे तो क्या हुआ? प्रधानमत्री तो वह तब भी रहगी।

श्रीमती गाधी के चोटी के कानूनी और राजनीतिक सलाहकार इस बात पर सोच विचार कर रहे थे कि अगर फैसले मे उन पर यह पाबन्दी लगा दी गयी कि छ साल तक वे किसी एसे पद पर नही रह सकती जिसके लिए चुनाव जीतना जरूरी हो, तो जरूरत पडन पर इस रुकावट को कस दूर किया जा सकता है। उन लोगो ने ऐसा कानून पास करवा देने की बात भी सोची कि एक खास तारीख तक मिसाल के तौर पर 1 जुलाई 1975 तक, जितने भी मेम्बरो पर इस तरह की पाबन्दी लगायी गयी हो उन सब पर से उस हटा लिया जाय। एक बार पहले भी इस तरह का कदम उठाने की बात सोची गयी थी ताकि मध्य प्रदेश के डी० पी० मिश्रा और आध्र प्रदेश के चेन्ना रेड्डी पद पर रह सकें, लेकिन फिर उस पर अमल नही किया गया।

एक सुझाव यह भी था कि इलाहाबाद हाईकोर्ट के उस फसल को मानकर, जिसम उनका चुनाव रद्द कर दिया गया था, वह जरूरत पडने पर रायबरेली स दुबारा

चुनाव लड सकती हैं ।

लेकिन अजीब बात है कि जब भी इस तरह का कोई सुझाव श्रीमती गांधी के सामने रखा जाता था तो वह उसमें कोई दिलचस्पी नहीं दिखाती थी । ऐसा लगता था कि वह अपने ही खयालों में डूबी हुई हैं । कुछ तो वह सुप्रीम कोर्ट में अपनी अपील की तैयारियों में लगी हुई थीं लेकिन ज्यादातर उनका दिमाग उन बातों में उलझा रहता था जिनकी योजना बनाने में संजय और उसकी टोली जुटी हुई थी ।

गैर-कम्युनिस्ट विपक्ष ने श्रीमती गांधी के इस्तीफे की मांग उठाने का फैसला किया । उन्होंने 21 और 22 जून को जनता मोर्चे में शामिल पार्टियों की कार्यकारिणी समितियों की एक मिली जुली बैठक बुलायी और श्रीमती गांधी को हटाने के लिए सारे देश में आन्दोलन छेड़ने की योजना बनायी । जयप्रकाश ने सन्देश भेजा कि वह मोर्चे की बातचीत में और विशाल रैली में हिस्सा लेंगे । राजनारायण ने समझा बुझाकर जयप्रकाश को इस बात पर राजी कर लिया था कि कोई कारवाई शुरू करने से पहले सुप्रीम कोर्ट के फैसले का इन्तजार करना जरूरी नहीं है ।

विपक्ष ने संसद का मानसून (मध्य जुलाई) अधिवेशन बुलाये जाने पर भी जोर दिया और अपनी यह मांग स्पीकर के सामने रखी । लेकिन कांग्रेस पार्टी के नेता पहले ही इसके खिलाफ फैसला कर चुके थे क्योंकि संसद की बैठक से उनके लिए परेशानियाँ पैदा हो सकती थीं । उनकी दलील यह थी कि संविधान में इससे ज्यादा और कुछ नहीं कहा गया है कि दो अधिवेशनों के बीच छः महीने से ज्यादा का वक्त नहीं होना चाहिये । स्पीकर को मालूम था कि श्रीमती गांधी क्या चाहती हैं और इसलिए वह संसद का अधिवेशन बुलाने पर राजी नहीं हुए ।

अगर संजय और उसकी टोली का बस चलता तो संसद की बैठक कभी होती ही नहीं क्योंकि उनके लिए यह वक्त की बर्बादी थी । मिसाल के लिए पिछली ही बैठक के दौरान सिर्फ तुलमोहन राम के मामले पर बहस होती रही थी । और अगर साल का ज्यादातर हिस्सा संसद के सवालों का जवाब तैयार करने में ही निकल जाये तो सरकार काम कब करे ? उन्होंने इस बेकार काम की रोक थाम करने के बारे में सोचा ।

कुछ इसी तरह के विचार एक बार भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ झुकाव रखने वाले कांग्रेसी मंत्री चन्द्रजीत यादव ने भी जाहिर किये थे । नई दिल्ली से कांग्रेसी संसद-सदस्य शशिभूषण ने भी जो भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थक थे कुछ इसी तरह की बात कही थी । उन्होंने कहा था कि वह लिमिटेड डिक्टेटरशिप (सीमित डिक्टेटरशिप) के पक्ष में थे । बाद में जब उन्हें अपनी इस बात की याद दिलायी गयी तो उन्होंने कहा, ' लेकिन मैंने लिमिटेड की बात कही थी, प्राइवेट लिमिटेड की नहीं।'

अब तक श्रीमती गांधी का रवैया बदल चुका था । इलाहाबाद वाले फैसले के बाद उनके अन्दर जो एक हिचकिचाहट आ गयी थी वह अब दूर हो गयी थी । सच तो यह है कि अब उन्हें पूरा यकीन हो गया था कि वह फैसला उन्हें हटाने के लिए दूर तक फैलाये गये जाल का ही एक हिस्सा था । किसी ने उनको बताया था कि जस्टिस सिनहा का झुकाव जनसंघ की तरफ था ।

संजय और उसकी टोली को अपनी कामयाबी का पूरा भरोसा था । छोटी से छोटी ब्यौरे की बात में भी श्रीमती गांधी न सिर्फ उनके साथ थीं बल्कि उनकी कारवाई के लिए हर चीज लगभग बिलकुल तैयार थी । हर राज्य में विपक्ष के उन नेताओं की सूचियां तैयार की जा रही थीं जिन्हें गिरफ्तार किया जाना था और फिलीपाइंस जैसी सेंसरशिप लागू करने की रत्ती रत्ती बात तय कर ली गयी थी ।

'कारवाई' का वक्त भी तय हो चुका था—सुप्रीम कोर्ट का फैसला आने के अगले दिन। तैयारियों की रफ्तार और तेज कर दी गयी, आदेशों को पूरा करने का बन्दोबस्त कील काँटे से दुरुस्त कर लिया गया। जरूरत के वक्त जिन अफसरों पर पूरी तरह भरोसा किया जा सकता था, उन्हें ज्यादा से ज्यादा तादाद में बुनियादी महत्त्व की जगहों पर तैनात किया जा रहा था।

गृह मन्त्रालय के सेक्रेटरी निर्मल कुमार मुखर्जी को हटा देने का फैसला किया गया क्योंकि वह 'जरूरत से ज्यादा कानूनी' आदमी थे। राजस्थान के चीफ सेक्रेटरी सुन्दरलाल खुराना को उनकी जगह लाया गया। उनके बारे में यह समझा जाता था कि उन्हें आसानी से मनचाही दिशा में मोड़ा जा सकता है। इसके बाद से किसको कहाँ तैनात करना है इसका फैसला अकेले एक आदमी धवन के हाथ में छोड़ दिया गया था। बहुत दिन से उनकी यह शिकायत थी कि सरकार में मद्रासी छाये हुए हैं, वह चाहते थे कि उत्तर भारत के लोगों का, खासतौर पर पंजाबियों का पलड़ा भारी रहे।

खुफिया विभाग के कर्त्ता धर्त्ता ए० जयराम को हटाकर कहीं और भेज दिया गया। उनकी जगह भरने के लिए पंजाब पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल शिवनाथ माथुर को चुना गया—पहले उन्हें एडीशनल डायरेक्टर बनाया गया और फिर डायरेक्टर। जयराम बहरहाल इस मामले में तो निकम्मे साबित हुए ही थे कि इलाहाबाद हाईकोर्ट का फैसला सुनाये जाने से पहले वह इसकी भनक भी नहीं पा सके थे कि फैसला क्या होगा।

बंसीलाल ने ज्यादातर मुख्यमन्त्रियों से बात कर ली थी और वे विपक्ष के लोगों के खिलाफ और अखबारों के खिलाफ कारवाई करने के लिए हर तरह से तैयार थे। सिद्धार्थशंकर रे और नन्दिनी सत्पथी से खुद श्रीमती गांधी ने बात की थी। सिद्धार्थशंकर रे कामयाब वकील रह चुके थे, वह सिर्फ यह जानना चाहते थे कि ये दोनों कदम किस कानून के तहत उठाये जायेंगे। वह पूरी तरह से कदम उठाये जाने के पक्ष में थे, लेकिन वह यह नहीं चाहते थे कि श्रीमती गांधी कानून के रास्ते से भटक जायें। श्रीमती गांधी का झुकाव खुद संविधान की हदों के अन्दर रहकर काम करने की तरफ था और इसलिए उन्होंने सिद्धार्थशंकर रे से कहा कि वह इसका तरीका सोच लें और कलकत्ता से उन्हें टेलीफोन कर दें।

खुफिया विभाग ने खबर दी कि विपक्ष आन्दोलन छेड़ने के लिए तैयार हो रहा है जिसमें हजारों लोग जुलूस बनाकर उनकी कोठी तक जायेंगे और उसे घेर लेने की कोशिश करेंगे। वे रेल की पटरियों पर बैठ जायेंगे और ट्रेनों को नहीं चलने देंगे। अदालतों को काम नहीं करने दिया जायेगा। सरकारी दफ्तरों में कोई काम नहीं होने दिया जायेगा। कोशिश यह थी कि सारा काम काज ठप्प कर दिया जाये।

यह इस बात का सबूत था वैसे सबूत की कोई जरूरत नहीं थी कि संजय ठीक ही कहता था कि विपक्ष का एक ही मकसद था—श्रीमती गांधी को हटवा देना। अब उनका पूरा दारोमदार अपने बेटे और उसकी योजनाओं पर था। उन्हें पूरा भरोसा था कि वह उन्हें इस संकट से उबारने के लिए कोई-न-कोई तरकीब ढूँढ़ निकालेगा। वह देखती थी कि वह दिन में अठारह अठारह घंटे काम करता था।

नई दिल्ली में 20 जून को श्रीमती गांधी के समर्थन में सरकारी बन्दोबस्त से जुटायी गयी रैली में श्रीमती गांधी ने कहा कि वह अपनी आखिरी साँस तक जिस हैसियत से हो सका जनता की सेवा करती रहेंगी। उन्होंने यह भी कहा कि सेवा उनके परिवार की परम्परा रही है।

खुली मीटिंग में पहली बार उन्होंने अपने परिवार की चर्चा की थी। उनके

परिवार के लोग मच पर ही मौजूद थे—सजय, राजीव और उसकी इटलियन बीवी सानिया।

श्रीमती गाधी ने कहा कि बडी बडी ताकतें न सिर्फ उन्हें प्रधानमत्री की कुर्सी से हटा देन के लिए, बल्कि उन्ह जान से मरवा दन तक के लिए एडी चोटी का जार लगा रही थी और अपने इस मसूबे को पूरा करने के लिए उन्होंने बडी दूर-दूर तक जाल फैलाया था।

बरुआ इन्दिरा गाधी की हवा बाँधने का अपना पुराना काम कर रहे थे। उन्होंने वही जोड-जाडकर तैयार किया एक उर्दू का शेर पढा

इन्दिरा, तेरे सुबह की जय, तेरी शाम की जय,
तेरे काम की जय, तेरे नाम की जय।

रली वहुत कामयाब रही। जैसा कि श्रीमती गाधी न कहा, 'इतनी बडी रैली दुनिया म कभी नहीं हुई थी।' लेकिन वह टलीविजन पर नहीं दिखायी गयी थी क्योंकि वह पार्टी की रली थी, सरकारी रली नहीं थी। और इसकी वजह से गुजराल का अपने मत्रालय से हाथ धोना पडा। सजय की गुजराल स झडप हो गयी और गुजराल ने झुंझलाकर उससे कह दिया, मैं तुम्हारी माँ का मत्री हू तुम्हारा नहीं।

पब्लिक मीटिंग से उठकर तेरह मुख्यमत्री सीधे राष्ट्रपति भवन पहुँचे जहाँ उन्होंन एक बार फिर श्रीमती गाधी पर उनको पूरा भरोसा होन की बात दोहरायी और एक पेज का ममोरन्डम राष्ट्रपति को दिया जिसमे कहा गया था कि श्रीमती गाधी के इस्तीफा देने स न सिर्फ राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि अलग अलग राज्यो म भी हालत डाँवाँडाल हो जायगी।

अगले दिन 23 जून को सोमवार के दिन उनमे स कुछ सुप्रीम कोट म भी मौजूद थे जब जस्टिस कृष्ण अय्यर ने श्रीमती गाधी की अपील की सुनवाई की। उनकी अर्जी मे 'श्रीमती गाधी जिस पद पर थी उस देखते हुए" 'बिना किसी शत के बिलकुल दो टूक' स्टे ऑडर की माँग की गयी थी। दलील यह दी गयी थी कि जब तक अपील का फसला न हो जाये तब तक राष्ट्र के हित म यही मुनासिब है कि वतमान स्थिति म कोई हेर फेर न किया जाय।"

जस्टिस अय्यर ने दोनो पक्षो की दलीलें दो दिन तक सुनी और वह इस नतीजे पर पहुँचे कि श्रीमती गाधी को 'चुनाव म किसी सगीन गडबडी' का अपराधी नहीं ठहराया गया है। उन्होंने कहा कि वह प्रधानमत्री बनी रह सकती हैं लेकिन उन्हें लोकसभा म तब तक वोट देने का अधिकार नहीं होगा जब तक कि सुप्रीम कोट इलाहाबाद हाईकोट के फसल के खिलाफ उनकी अपील को निबटा न दे।

स्टे ऑडर कुछ शर्तों के साथ दिया गया था। लेकिन उन पर ससद की बहसो म हिस्सा न लेने की कोई पाबन्दी नहीं लगायी गयी थी। फिर भी जस्टिस अय्यर ने ससद का ध्यान इस बात की ओर दिलाया था कि 'कानून क्रूर होने पर भी अदालतो की नजर में कानून ही रहता है लेकिन उसम कानून बनानेवाले चौकस और मुस्तैद लोगो की आँखें खुल जानी चाहिये।'

सरकार ने समाचार एजेंसियो स यह बन्दोबस्त कर लिया रेडियो और टलीविजन तो उनके कब्जे म थे ही, कि फसले का वही पहलू उभारा जाय जिसम उनके मतलब की बात कही गयी थी। इसका मतलब यह था कि श्रीमती गाधी के प्रधानमत्री बने रहने पर कोई पाबन्दी नहीं थी।

तब तक जयप्रकाश भी दिल्ली पहुँच चुके थे। विपक्ष के नेता सुप्रीम कोट स टक्कर लेना नहीं चाहते थे। उन्होंने फसले का स्वागत तो किया लेकिन एक बयान म

यह भी कहा कि "श्रीमती गाधी की साख बिलकुल उठ चुकी है, उनकी सदस्यता सीमित हो गयी है और वोट देने का अधिकार उनसे छिन चुका है। ऐसी हालत मे वह किस तरह प्रधानमत्री रह सकती हैं?' उन लोगो ने श्रीमती गाधी को इस्तीफा देने पर मजबूर करने के लिए सारे देश मे आदोलन छेड़ने के अपने पक्के इरादे को एक बार फिर दोहराया।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी इस वक्त गर कम्युनिस्ट विपक्ष के साथ शामिल तो नही हुई लेकिन उसका रवैया भी बहुत-कुछ ऐसा ही था—चूकि इलाहाबाद हाईकोर्ट ने श्रीमती गाधी को 'झूठा साबित कर दिया है इसलिए उन्हें इस्तीफा दे देना चाहिए।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी उनका समर्थन करती रही। पार्टी के केंद्रीय सचिवमण्डल ने कहा कि उन्हें 'दक्षिणपथी प्रतिक्रियावादियो की धौंस' के आगे हथियार नही डालना चाहिए और प्रधानमत्री के पद पर बने रहना चाहिए।

जस्टिस अय्यर के फसले से जगजीवनराम के मसूबो पर पानी फिर गया। उन्हे उम्मीद थी कि स्टे-ऑर्डर कुछ शर्तों के साथ दिया जायेगा, और अदालत के फसले म यह बात साफ-साफ नही कही जायगी कि वह प्रधानमत्री बनी रह सकती है। बहरहाल उन्होने अपनी चाल चलने मे देर कर दी थी और जिस तरह बरुआ और दूसरे लोगों ने एक नतिक सवाल को राजनीतिक सवाल बना दिया था, उसके बाद तो स्टे आडर की कोई हैसियत ही नही रह गयी थी।

अब जगजीवनराम भी केंद्रीय मत्रियो, मुख्यमत्रियो और दूसरे लोगो से सुर मे सुर मिलाने लगे। एक बयान मे और एक प्रस्ताव मे इन लोगो ने कहा था कि श्रीमती गाधी के प्रधानमत्री की हैसियत से काम करते रहने म कोई रुकावट नही थी। जगजीवनराम इससे भी एक कदम आगे बढ गये—उन्होंने कहा यह सिर्फ एक कानूनी मसला है, इसमे किसी नैतिक या राजनीतिक सवाल का दखल नही है। नैतिकता श्रीमती गाधी के पक्ष मे थी।

काग्रेस पार्टी के ससदीय बोर्ड की भी मीटिंग हुई और उसने पूरे राष्ट्र को चेतावनी दी कि 'हो सकता है कि कुछ गिरोह और कुछ लोग अपने स्वार्थ के लिए जनता को गुमराह करने और हालात का फायदा उठाने की कोशिश करते रह।"

जिन लोगो म पार्टी के बाकी लोगो की तरह इस मामले मे उतना जोश नही था उनमे युवा तुर्क भी थे—चन्द्रशेखर मोहन धारिया, रामधन, कृष्णकात और श्रीमती लक्ष्मीकातम्मा—और इनके अलावा कुछ और लोग भी। उन्होंने अपनी ताकत का अदाजा लगाने के लिए अलग एक मीटिंग की। ताकत तो बहुत नही थी, उनका साथ देनेवालो के नाम उगलियो पर गिने जा सकते थे।

चन्द्रशेखर और कृष्णकात दोनो ही ने मुझे बताया, 'ऐसे लोग तीस से ज्यादा नही रहे होंगे। लेकिन बहुत से लोग ऐसे थे जिन्होंने जरूरत पडने पर उनके साथ आ जाने का वादा किया था।'

इलाहाबाद वाले फसले के बाद इन्दिरा के पक्ष म एक मुहिम चलाने के लिए काग्रेस के नेताओ ने जिस तरह जनवादी आदर्शों का सम्मान करने का दिखावा करना भी छोड दिया था उससे युवा तुर्क बहुत दुखी थ। उन्हे सबसे ज्यादा निराशा जगजीवनराम से हुई थी, जो यह वायदा करने के बाद कि वह उनके साथ हैं, मदान छोडकर भाग खडे हुए थ।

श्रीमती गाधी के स्वय को उन्हे परवाह नही थी क्योकि वे पार्टी की तरफ़ से उनके खिलाफ अनुशासन की कारवाई किये जाने के लिए तैयार थ। उन्होंने इस बात

को कभी छिपाने की कोशिश नही की थी कि वे जयप्रकाश को बहुत सराहते थे। चन्द्रशेखर श्रीमती गाधी से कितनी ही बार कह चुके थे कि वह जयप्रकाश से मिल लें और राजनीति की गन्दगी दूर करने के लिए उनका सहयोग लें। 24 जून को चन्द्रशेखर ने जयप्रकाश को रात के खाने पर बुलाया। खुफिया विभाग वालो ने खबर दी थी कि अस्सी ससद-सदस्य युवा तुर्कों के ढंग से सोचते थे। लेकिन उस दिन दावत म सिर्फ बीस लोग आये थे।

सजय को और उसकी टोली को इस बात की तनिक भी चिन्ता नही थी कि युवा तुर्कों के बीच क्या हो रहा है, परवाह तो उन्हें, सच पूछा जाये तो, इसकी भी नही थी कि काग्रेस पार्टी के अन्दर क्या हो रहा है। वे अब अपनी योजना को पूरा करने के लिए सारे कलपुर्जों को ठीक कर रहे थे। सिद्धार्थशकर रे ने उनके लिए पूरा ब्यौरा तैयार कर दिया था कि क्या-क्या करना है।

दो ही दिन पहले उन्होने श्रीमती गाधी को कलकत्ता से टेलीफोन करके बताया था कि अगर 'कुछ करना' है तो उसका एक ही तरीका है कि 'भीतरी' इमर्जेंसी का ऐलान कर दिया जाय। ('बाहरी' इमर्जेंसी तो बगलादेश की लडाई शुरू होने के वक्त दिसम्बर 1971 से ही लागू थी।) उन्होने बताया था कि सविधान की धारा 352 मे राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया था कि अगर देश के अन्दर उपद्रव हो रहा हो तो वह इमर्जेंसी लागू कर सकते हैं। इस तरह सरकार को मनचाहे अधिकार मिल जायेंगे।

श्रीमती गाधी ने उनसे फौरन दिल्ली आ जाने को कहा। उनके लिए कलकत्ता से अचानक चले आने मे कोई कठिनाई नही थी। एक मजाक मशहूर था कि उनका सामान हमेशा बँधा तयार रहता था और दिल्ली का हवाई जहाज का टिकट हमेशा उनकी जेब मे रहता था। जब से वह केन्द्रीय मत्रिमण्डल छोडकर मुख्यमत्री बन थे तब से हर हफ्ते औसतन दो बार वह प्रधान मत्री से सलाह मशविरा करने दिल्ली जाते रहे थे।

नई दिल्ली म 24 जून को अपनी बातचीत के दौरान सिद्धार्थशकर रे अपने इस विचार पर ही जोर देते रहे। प्रधानमत्री की कोठी से जल्दी जल्दी ससद की लाइब्रेरी से सविधान की एक कापी मगवायी गयी। अखबारो और श्रीमती गाधी के विरोधियो का मुह बन्द करने के लिए 'कुछ करने' की जो एक धुधली-सी योजना थी उसको अब न सिर्फ एक ठोस शक्ल उभर आयी थी बल्कि उसको सविधान का सहारा भी मिल गया था—जिस कार्रवाई की योजना तानाशाही कायम करने के लिए बनायी गयी थी उस पर परदा डालने के लिए एक वकील ने 'भीतरी इमर्जेंसी' की आड ढूढ निकाली थी।

प्रधानमत्री के सेक्रेटेरियट ने इमर्जेंसी लागू करने के लिए एक नोट पहले से ही तैयार कर रखा था। यह अचानक सकट आ पडने पर काम आनेवाली उन योजनाओ में से एक थी जो हमेशा तयार रखी जाती थी। इमर्जेंसी के अधिकारो के तहत केन्द्रीय सरकार राज्यो को कोई भी हिदायत दे सकती थी सविधान की 19वी धारा[1]

1 सविधान की 19वीं धारा के अनुसार सब नागरिको को वाक-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य का शातिपूवक और निरायुध सम्मेलन का सस्था या सघ बनाने का भारत राज्य-क्षेत्र मे सवत्र अबाध सचरण का भारत राज्य-क्षेत्र के किसी भाग म निवास करने और बस जाने का सम्पत्ति के अर्जन धारण और व्ययन का तथा कोई वृत्ति उपजीविका व्यापार या कारोबार करने का अधिकार होगा।

को स्थगित कर सकती थी या सभी मूल अधिकारों को स्थगित कर सकती थी, अदालतों को हुक्म दिया जा सकता था कि वे इन अधिकारों को लागू करवाने के उद्देश्य से दायर किये गये मुक़द्दमे की सुनवाई न करें, इत्यादि। इमर्जेंसी में केन्द्रीय सरकार के अधिकारों की कोई सीमा नहीं थी।

अक्सर ऐसा लगता था कि श्रीमती गांधी को इस बात की ज्यादा चिन्ता रहती थी कि कोई चीज़ बाहर से देखने में कैसी लगती है, इस बात की उतनी नहीं कि उसका असली सार क्या है। उन्होंने सन्तोष की सांस ली, इमर्जेंसी की घोषणा करना कोई ऐसा काम नहीं होगा जो संविधान के खिलाफ हो।

उनका रवैया नेहरू के रवैये से कितना अलग था। 1962 में जब चीनियों के खिलाफ हमारे पैर उखड़ जाने की वजह से सारा देश उनके खिलाफ होता जा रहा था, तो उस समय के रक्षामंत्री कृष्ण मेनन ने भीतरी इमर्जेंसी लागू कर देने का सुझाव रखा था। नेहरू ने इस मानने से इस बुनियाद पर इंकार कर दिया था कि इससे जनवादी परम्पराओं को धक्का पहुँचेगा।

अब चूंकि इमर्जेंसी लागू करने का फैसला कर लिया गया था इसलिए गोखले को उसे क़ानूनी जामा पहनाने के लिए बुलाया गया। लेकिन यह बात उनको भी नहीं मालूम थी कि वह किस तारीख से लागू की जायगी।

इस कारवाई के लिए 25 जून की आधी रात का वक्त तय किया गया था। यह सोचा गया था कि तब तक सुप्रीम कोर्ट का फैसला आ जायगा।

बुनियादी बात यह थी कि किसी को कानों-कान खबर न हो। श्रीमती गांधी, संजय, धवन, बंसीलाल, ओम मेहता, किशनचन्द और अब सिद्धार्थशंकर रे को छोड़ कर किसी को भी पता नहीं था कि जल्द ही यह कारवाई होने वाली है, हालांकि सकड़ों लोगों के पास आदेश भेजे जाने लगे थे कि उन्हें क्या काम करना है। ज्यादातर ये आदेश गिरफ्तारियों के बारे में थे।

बरुआ ताड़ गये थे कि कोई खिचड़ी पक रही है। उन्हें 24 जून को इमर्जेंसी के बारे में बताया गया। वह चाहते थे कि इस बार के असर को नरम करने के लिए कुछ 'प्रगतिशील कदम उठाये जायें, और इसके लिए उन्होंने चीनी की और कपड़े की मिलों के राष्ट्रीयकरण का सुझाव रखा। उन्होंने दलील यह दी कि 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण से किस तरह राष्ट्रपति के चुनाव में उन्हें कांग्रेस के सरकारी उम्मीदवार को हराने में मदद मिली थी। लेकिन संजय ने जो निजी कारोबार में पक्का विश्वास रखता था इस सुझाव को ठुकरा दिया।

बरुआ ने एक और सुझाव रखा—बेरोज़गार लोगों को गुज़ारा देने का सुझाव। संजय ने यह कहकर कि इसमें पैसा बहुत लगेगा, इस सुझाव को भी ठुकरा दिया। कहा जाता था कि दो करोड़ से ज्यादा लोग बेरोज़गार थे।

ब्रह्मानन्द रेड्डी को 25 जून को यह भेद की बात बतायी गयी। लेकिन उन्हें यह फिर भी नहीं बताया गया कि किन किन लोगों को गिरफ्तार किया जाने वाला है, और उन्होंने जानने की कोशिश भी नहीं की। कुछ अरसे से उन्होंने अपनी जान बचाये रखने के लिए, अपने ही गृह मंत्रालय में हाँ में हाँ मिलाकर समय काटते रहना सीख लिया था।

विपक्ष को इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि क्या होने वाला है। शायद मालदार मार्क्सवादी ज्योतिर्मय बसु का तीर निशाने के सबसे पास जाकर लगा था जब उन्होंने खुलेआम यह कहा था कि श्रीमती गांधी संविधान को ही रद्द कर देने की बात सोच रही हैं—प्रधानमंत्री के यहाँ से किसी से उन्हें यह भनक मिली थी

कि कोई मह्त्न कदम उठाया जाने वाला है। ज्योतिमय बसु ने अपने मकान की खिडकियो मे लोहे के सीखचे लगवा लिये थे। बीजू पटनायक को भी, जो उडीसा के मुख्यमत्री रह चुके थे और भारतीय लोकदल के एक नेता थे, मन-ही-मन ऐसा लग रहा था कि इस तरह की कोई योजना बनायी जा रही है, और उन्होंने अपना यह अदेशा जाहिर भी किया था। लेकिन विपक्ष मे किसी ने इन लोगो की बातो का यकीन नही किया था। इन सुझावा की बात सोची भी नही जा सकती थी, इसलिए उन पर यकीन करना भी मुश्किल था।

बहरहाल, विपक्ष के नेता 25 जून की रैली की तैयारियो मे लगे हुए थे। जयप्रकाश के दिल्ली देर से पहुँचने की वजह से, जिन्हें अब प्यार से 'लोकनायक' कहा जाने लगा था, यह रली एक दिन के लिए टल गयी थी।

यह दिल्ली की एक सबसे बडी रैली थी, लेकिन उतनी बडी नही जितनी श्रीमती गाधी की थी, और श्रीमती गाधी के समयक इस बात के लिए अपनी पीठ ठोक रहे थे। लेकिन जो लोग जयप्रकाश की रैली मे आये थे वे खुद वहाँ पहुँचे थे, उन्ह लाने के लिए सरकार की तरफ से किराये की लारियो का इन्तजाम नही किया गया था, वह भाडे की भीड नही थी। एक के बाद एक विपक्ष के नेताओ ने प्रधानमत्री को गद्दी से चिपके रहने पर बहुत खरी खरी बातें सुनायी, कुछ ने तो यहाँ तक कहा कि वह डिक्टेटर की तरह काम कर रही हैं। उन्होंने यह बात साफ कर दी कि वे उनकी एक नही चलने देंगे।

जयप्रकाश ने पाँच आदमियो की एक लोक-सघष समिति बनाने का ऐलान किया, जिसके चेयरमैन मोरारजी देसाई थे और जनसघ के चोटी के नेता नानाजी देशमुख सेक्रेटरी थे, जिसे श्रीमती गाधी को इस्तीफा देने पर मजबूर करने के लिए 29 जून से सारे देश म आदोलन छेडने का काम सौंपा गया। अहिंसा का रास्ता अपनाकर हडतालें सत्याग्रह और प्रदशन करने का कायक्रम बनाया गया था।

जयप्रकाश ने वहाँ पर मौजूद भीड से हाथ उठाकर यह बताने को कहा कि देश मे नैतिक आदर्शों के फिर से कायम करने के लिए वे जरूरत पडने पर जेल जाने को तैयार हैं। सबने अपने अपने हाथ उठा दिये। ताज्जुब की बात है कि चौबीस ही घट बाद जेल जाना तो दूर रहा, इनमे से ज्यादातर लोगो ने कोई आवाज भी नहा उठायी जब आवाज उठाना जरूरी था। जयप्रकाश ने पुलिस और फौज के लोगो से भी अपील की कि, जसा कि उनकी कायदे कानून की किताब मे लिखा है वे किसी भी गर कानूनी हुक्म को मानने से इकार कर दें।

अनोखा व्यग्य था कि 1930 के आसपास के दिना म खुद काग्रेस यही बात कहा करती थी। श्रीमती गाधी के दादा मोतीलाल नेहरू ने ही काग्रेस पार्टी को यह प्रस्ताव रखने के लिए तैयार किया था जिसम पुलिस मे कहा गया था कि वह गर कानूनी हुक्म मानने से इकार कर दे। जिन लोगा को इस प्रस्ताव के पर्चे छपवाकर बाटने के लिए सजा दी गयी थी, उनकी अपील उस वक्त इलाहाबाद के हाईकोट ने मजूर कर ली थी। ब्रिटिश राज्य के जजो ने फसला दिया था कि पुलिस स गर कानूनी हुक्म न मानने के लिए कहना कोई गलत बात नही है।

लेकिन श्रीमती गाधी, सजय और उनके समथको के लिए पुलिस और फौज से जयप्रकाश की यह अपील प्रचार का सबस अच्छा हथियार था। अब वे कह सकत थे कि वह फौज म गडबडी फैलाने की कोशिश कर रह थ, यह एक ऐसी बात थी जिस बगावत फैलाने की सजा दी जा सकती थी।

लेकिन यह तो बस एक बहाना था। इस रली म बहुत पहले ही स सजय

गाधी और उनके भरोसे के लाग घातक वार करने की तैयारी कर रहे थे। जैसे जसे आधी रात का वक्त करीब आता गया, वसे-वैसे प्रधानमत्री की कोठी मे हलचल भी बढती गयी। सभी राज्यो को आदेश भेज दिये गये थे, और बहुत से लोग यह जानना चाहते थे कि उन्हें अखबारो पर सेंसर लागू कर देने और श्रीमती गाधी के विरोधिया को पकड लेने के अलावा क्या और भी कुछ करना है। दिल्ली मे और दूसरी जगहो पर जो नेता गिरफ्तार किये जाने वाले थे उनकी फेहरिस्तें तैयार थी और वे श्रीमती गाधी का दिखा भी दी गयी थी। ये फेहरिस्तें तैयार करने मे एक खुफिया विभाग, जिसने बहुत मदद की थी वह था रिसच ऐंड एनालिसिस विंग (शोध तथा विश्लेषण विभाग) जिसे सक्षेप म 'रा' कहा जाता था।

रा की स्थापना विदशो म भारत की जासूसी मे सुधार करने के लिए 1962 मे उस वक्त की गयी थी जब चीनिया के खिलाफ हमारी लडाई खत्म होने वाली थी, क्योकि चीनियो के खिलाफ लडाई के दौरान हमारी जासूसी बहुत निकम्मी साबित हुई थी। शुरू शुरू मे बीजू पटनायक ने भी इस काम मे हाथ बँटाया था, क्योकि उनके बारे म यह मशहूर था कि वह "दुश्मन की पाँता के पीछे घुसकर काम कर चुके है।" कई साल पहले जब इण्डोनेशिया पर डच लोगो का शासन था उस वक्त वह वहाँ के राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता सुकार्नो को छुडाकर लाने के लिए खुद उडाकर हवाई जहाज जकार्ता ले गये थे।

रा सीधे प्रधानमत्री के सेक्रेटेरियट की निगरानी मे काम करता था। श्रीमती गाधी पहली प्रधानमत्री थी जिन्हाने इसे देश के अन्दर राजनीतिक जासूसी के लिए इस्तमाल किया था। इसका गठापन और इसमे काम करने वाले लोग उसकी सबसे बडी खूबी थे, उन्हे इस बुनियाद पर चुना जाता था कि वे या तो अपनी पढाई मे बहुत अच्छे रह चुके थे, या भरोसे के किसी ऊचे सरकारी अफसर या पुलिस के अफसर स उनकी रिश्तेदारी थी। रा ने सरकार का विरोध करने वाला, काग्रेस पार्टी के अन्दर आलोचना करने वाला, व्यापारिया, सरकारी अफसरो और पत्रकारो के बारे मे पूरा ब्यौरा अपने यहा जमा कर रखा था। विरोधियो की फेहरिस्त तयार करना कोई मुश्किल काम नही था, रा के पास सबकी फाइलें तयार थी।

इस सवाल पर भी विचार कर लेना जरूरी था कि गिरफ्तारी किस कानून के तहत की जाये। आन्तरिक सुरक्षा कानून (मीसा) मे अभी साल ही भर पहले कुछ हेर-फेर करके सरकार को इस बात का अधिकार दे दिया गया था कि वह अदालत के सामने जुम लगाय बिना किसी भी आदमी को गिरफ्तार या नजरबन्द कर सकती है। लेकिन जब यह कानून पास किया गया था उस वक्त सरकार ने ससद मे विपक्ष को यह विश्वास दिलाया था कि मीसा को राजनीतिक विरोधिया को नजरबन्द करने के लिए इस्तमाल नही किया जायेगा।

बसीलाल चाहते थे कि दिल्ली मे जिन नेताओ को गिरफ्तार किया जाय उन्ह हरियाणा म नजरबन्द किया जाय। उन्होने श्रीमती गाधी को बताया 'मैंने रोहतक म एक बहुत बडा आधुनिक जेल बनवाया है।'

श्रीमती गाधी न थल-सेना के प्रधान सनापति जनरल रैना को दौरे पर स वापस बुला लिया। यह सिफ इसलिए किया गया था कि कही कोई एसी-वैसी बात न हो जाय।

इस वक्त तक दिल्ला पुलिस के चोटी के अफसरों को यह पता लग चुका था कि जयप्रकाश नारायण मोरारजी सगठन काग्रेस के प्रेसीडेंट अशोक मेहता और जनसघ के नेता अटल बिहारी वाजपेयी और लालकृष्ण अडवाणी जसे लोग भी गिरफ्तार

किये जाने वाले हैं।

किस क़ानून के तहत ? चूँकि उन्हें इमर्जेंसी के बारे में कुछ पता नहीं था इसलिए उन्होंने यह मालूम करने की कोशिश की कि उन्हें किस तरह गिरफ्तार किया जाये। उनसे कहा गया कि भारतीय दण्ड-संहिता (ग्राई० पी० सी०) की दफा 107 मे। लेकिन इस दफा में तो आवारा लोग पकड़े जाते थे। जयप्रकाश और मोरारजी को इस दफा में कैसे गिरफ्तार किया जा सकता था ?

दिल्ली के नामों की फ़ेहरिस्त अभी किशनचन्द की मदद से तयार की जा रही थी। जब पुलिस ने गिरफ्तारी के वारण्ट मांगे तो दिल्ली के डिप्टी कमिश्नर सुशील कुमार इस बात पर अड़ गये कि पहले उन्हें नाम बताये जायें। जब धवन को यह बात बतायी गयी तो वह आपे से बाहर हो गये और उन्होंने सुशील कुमार को चुपचाप बात मान लेने पर मजबूर कर दिया। उन्होंने सादे वारण्टों पर दस्तखत कर दिये। पी० एस० भिंडर, जो 'भरोसे के' पुलिस अफसर थे और हरियाणा से स्पेशल (खुफिया) ब्रांच में लाये गये थे, जरूरत के हिसाब से हर वारण्ट में नाम भरते जाते थे।

राज्यों में मुख्यमन्त्रियों को मालूम था कि क्या होने वाला है। वे अपने अपने पुलिस के इंस्पेक्टर जनरलों और चीफ सेक्रेटरियों के साथ बैठे गिरफ्तार किये जानेवालों के नाम पास कर रहे थे। हालाँकि बुनियादी तैयारियों की शुरुआत उसी वक्त से हो गयी थी जब 20 जून के लगभग मुख्यमन्त्री दिल्ली में लौटे थे लेकिन तब तक नक्शा कुछ धुंधला था, उस वक्त यह सोचा गया था कि कुछ ही लोगों को पकड़कर उनका मुंह बन्द करने के लिए कुछ दिन तक जेल में रखना होगा।

जब भी मुख्यमन्त्रियों को कोई दुविधा होती थी तो वे प्रधानमन्त्री की कोठी पर टेलीफोन करते थे, जिसे 'घराना' या 'महल' कहा जाता था। उधर से उनके सवालों का जवाब धवन देते थे। कुछ मुख्यमन्त्री अभी तक यह बात ठीक से नहीं समझ पाये थे कि जब पहले से ही इमर्जेंसी लागू है तो फिर इस नई इमर्जेंसी की क्या जरूरत है। धवन ने उनको दोनों का फर्क समझाया।

उत्तर प्रदेश में, लखनऊ में पुलिस के हैडक्वाटर में एफ० ग्राई० ग्रार० (पहली सूचना की रिपोर्ट) का एक नमूना तैयार करके थाने थाने भिजवा दिया गया ताकि फाइलों का पेट भरने के लिए हाथ में कुछ रहे। ऐसा केवल सावधानी बरतने के लिए किया गया था, हालांकि यह सभी जानते थे कि मीसा के बन्दियों को कोई वजह बताये बिना ही गिरफ्तार किया जा सकता है।

सिद्धार्थशंकर रे अकेले मुख्यमन्त्री थे जो दिल्ली में डेरा डाले हुए थे और यहीं से टेलीफोन पर कलकत्ता में अपने अफसरों को आदेश भेजते रहते थे। वह रुके इसलिए गये थे कि श्रीमती गांधी चाहती थीं कि जब वह राष्ट्रपति के पास इमर्जेंसी की घोषणा पर दस्तखत कराने जायें तो वह उनके साथ रहें।

ऐन वक्त में लगभग चार घंटे पहले सिद्धार्थशंकर रे और श्रीमती गांधी राष्ट्रपति भवन गये। सिद्धार्थ बाबू को यह समझाने में कि भीतर इमर्जेंसी में क्या-क्या होगा लगभग पैंतालीस मिनट लग गये। राष्ट्रपति बहुत जल्दी ही उसका मतलब समझ गये। वह भी वकालत कर चुके थे। इसके अलावा उन्हें अपने यहाँ काम करनेवाले एक असिस्टेंट के० एल० धवन से, जो प्रधानमन्त्री के यहाँ काम करनेवाले धवन के भाई थे, कुछ कुछ भनक मिल गयी थी कि क्या करने की कोशिश की जा रही है।

आनाकानी करने की बात उन्होंने सोची तक नहीं। उनके ऊपर श्रीमती गांधी के इतने बड़े एहसान का बोझ था कि उन्हें उन्होंने इस सबसे ऊँचे पद पर पहुँचा दिया था। राष्ट्रपति श्रीमती गांधी के बहुत निकट रह चुके थे खास तौर पर 1969 के बाद

से जब उन्होंने और जगजीवनराम ने मिलकर उस वक्त के कांग्रेस के अध्यक्ष एस० निजलिंगप्पा को पत्र लिखकर इस बात पर एतराज किया था कि वह राष्ट्रपति पद के लिए कांग्रेस के सरकारी उम्मीदवार संजीव रेड्डी के पक्ष मे समर्थन जुटाने के लिए जनसंघ और दक्षिणपंथी स्वतन्त्र पार्टी के पास जा रहे थे। राष्ट्रपति अहमद को याद था कि किस तरह उन लोगो ने, श्रीमती गांधी के नेतृत्व मे, रेड्डी को हटाकर[1] कांग्रेस के चोटी के नेताओ के गुट को, जिसे सिंडीकेट कहा जाता था, नीचा दिखाया था।

इमर्जेंसी की घोषणा पर राष्ट्रपति ने उसके लागू होने से पन्द्रह मिनट पहले 25 जून को रात के 11 बजकर 45 मिनट पर दस्तखत किये। प्रधानमंत्री की कोठी वाले धवन साहब उसका मसविदा लेकर आये थे। उस दिन राष्ट्रपति भवन मे काम करनेवाला कोई भी अफसर सुबह सात बजे से पहले सोने नही गया। इस घोषणा मे कहा गया था "आन्तरिक उपद्रवो के कारण भारत की सुरक्षा के लिए संकट उत्पन्न हो गया है जिसके कारण गम्भीर आपात स्थिति मौजूद है।" उसमे सरकार को अखबारो पर सेंसरशिप लागू कर देने, नागरिक अधिकार लागू करवाने के बारे मे अदालतों मे मुकदमे रुकवा देने, आदि के अधिकार दे दिये गये थे।

बहुत कुछ वैसा ही हो रहा था जैसा कि कई साल पहले जर्मनी मे हुआ था। हिटलर ने प्रेसीडेंट हिंडेनबर्ग पर दबाव डालकर 'जनता और राज्यसत्ता की रक्षा के लिए' एक अध्यादेश पर दस्तखत करा लिये थे जिसके अनुसार संविधान की वे धाराएँ कुछ समय के लिए रद्द कर दी गयी जिनमे व्यक्ति और नागरिक स्वतन्त्रताओ की गारंटी दी गयी थी।

अब श्रीमती गांधी के हाथ मे विपक्ष से और अखबारो से निबटने के लिए, जो उनकी कानूनी हैसियत को मानने से इकार करते थे, सारी ताकत आ गयी थी। अब उनके पास कानूनो मे मनमानी कतरब्योंत करने की सारी ताकत थी, नियमो और परम्पराओ को बदलने की सारी ताकत थी। वह देश, जो अगस्त 1947 मे अपनी स्वतन्त्रता हासिल करने के बाद से जनवाद के रास्ते पर धीरे धीरे लड़खड़ाता हुआ आगे बढ़ता आया था—पश्चिमी देशो की उस तमाम नुक्ताचीनी के बावजूद कि यह प्रणाली भारत के लिए ठीक है भी कि नही—वही अब डिक्टेटरशिप जैसी व्यवस्था कायम हो गयी थी।

श्रीमती गांधी ने एक बार कहा था कि वह चाहती हैं कि इतिहास मे उनका नाम एक ताकतवर हस्ती की हैसियत से लिया जाय, "कुछ नेपोलियन या हिटलर की तरह क्योंकि उन्हें हमेशा याद रखा जायगा।

उनके पिता ने लगभग चालीस साल पहले जो कुछ अपने बारे मे लिखा था[2] वह आज बेटी के बारे मे भी सच साबित होने लगा था एक जरा से मोड़ मे जवाहरलाल चोटी की चाल से चलनेवाले जनवाद का सारा ताम झाम दूर फेंककर डिक्टेटर बन सकते हैं। वह जनवाद और समाजवाद की भाषा और उसके नारे भले ही इस्तेमाल करते रहें, लेकिन हम सभी जानते है कि इसी भाषा के सहारे फासिज्म किस तरह पनपा और बाद मे उसने उसे बेकार काठ कबाड़ की तरह फेंक दिया। उनको काम करवाने की, जो भी चीज उन्हें नापसन्द हो उसका सफाया कर देने की

1 पूरी जानकारी के लिए मेरी किताब 'इंडिया द क्रिटिकल इयर्स' पढ़िये। विकास दिल्ली 1971।

2 नेहरू ने कलकत्ते की पत्रिका 'माडर्न रिव्यू' के 5 अक्तूबर 1937 के अंक में 'राष्ट्रपति जवाहरलाल की जय' के शीर्षक से एक गुमनाम लेख प्रकाशित करवाया था।

और नये सिरे से चीजों को बनाने की जो धुन उनमें है, वह जनवाद की धीमी चाल को शायद ही बर्दाश्त कर सकें। वह भले ही भूसी अपने पास रख लें, लेकिन उसे भी वह अपनी मर्जी के मुताबिक मोड़कर ही दम लेंगे। आम हालात के जमाने में वह बस एक मुस्तैद और कामयाब अफसर से ज्यादा कुछ नहीं होंगे, लेकिन इन्कलाबी दौर में सीजर बनने का लालच हमेशा सामने रहेगा, और क्या यह मुमकिन नहीं है कि जवाहरलाल अपने आपको सीजर समझने लगें?"

जो भी नेहरू को जानता है वह यह भी जानता होगा कि वह ऐसा नहीं कर सकते थे। और जो भी उनकी बेटी को जानता है वह यह भी जानता होगा कि वह अपने को सिर्फ सीजर समझकर ही संतोष कर लेनेवाली नहीं थी। उस रात इस नाटक में उनका बेटा परदे के पीछे खड़ा उन्हें बता रहा था कि उन्हें कब क्या कहना है और कब क्या बोलना है।

उस रात प्रधानमंत्री के घर पर कोई सोया नहीं। राष्ट्रपति भवन से लौटकर श्रीमती गांधी ने सुबह छः बजे कैबिनेट की मीटिंग बुलाने का फैसला किया। उस वक्त तक उन्हें मालूम हो चुका था कि जयप्रकाश मोरारजी और सैकड़ों दूसरे लोगों की गिरफ्तारियां योजना के अनुसार चल रही हैं।

यह कारवाई अचानक बड़ी तेजी से और बड़ी बेरहमी के साथ की गयी थी और उसमें वे सारी बातें मौजूद थीं जो सत्ता पर जबरदस्ती कब्जा कर लेने में होती हैं।

दिल्ली में विपक्ष के नेताओं को रात के ढाई और तीन बजे के बीच जगाकर गिरफ्तारी के वारंट दिखाये गये और उन्हें पकड़कर एक थाने में ले जाया गया। कैसा व्यंग्य है कि यह थाना संसद भवन से बहुत दूर नहीं था। उन्हें मीसा में नजरबन्द कर दिया गया उसी कानून के तहत जिसमें स्मगलरों को नजरबन्द किया गया था।

जो लोग गिरफ्तार किये गये थे उनमें दक्षिणपंथ के जनसंघ से लेकर वामपंथ की मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी तक सभी पार्टियों के लोग थे। विपक्ष की एक ही पार्टी जिसे हाथ नहीं लगाया गया था वह थी मास्को समर्थक कम्युनिस्ट पार्टी जो कांग्रेस का साथ देती रही थी।

जिस वक्त जयप्रकाश को गिरफ्तार किया गया तो उन्होंने संस्कृत का यह श्लोक पढ़ा 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि'। दो ही दिन पहले मोरारजी देसाई ने इटली के एक पत्रकार के इस सुझाव को मानने से इंकार कर दिया था कि वह गिरफ्तार किये जा सकते हैं। उन्होंने कहा था, "वह ऐसा कभी नहीं करेंगी। ऐसा करने से पहले वह आत्महत्या कर लेंगी।" मोरारजी और जयप्रकाश को दिल्ली के पास ही सोना के डाक बंगले में ले जाया गया। लेकिन दोनों को अलग अलग कमरों में रखा गया, जिनके बीच कोई आने-जाने का रास्ता भी नहीं था।

दिल्ली के ज्यादातर अखबार नहीं निकले क्योंकि आधी रात से पहले ही उनके प्रेसों की बिजली काट दी गयी थी, सरकारी तौर पर सफाई यह दी गयी कि बिजलीघर में कुछ गड़बड़ी पैदा हो गयी है। नई दिल्ली में स्टेट्समैन और हिन्दुस्तान टाइम्स निकले क्योंकि उनको बिजली दिल्ली म्युनिसिपल कार्पोरेशन से नहीं बल्कि नई दिल्ली की म्युनिसिपल कमेटी से मिलती थी और अखबारों की बिजली काट देने का हुक्म सिर्फ दिल्ली म्युनिसिपल कार्पोरेशन को भेजा गया था। पंजाब और मध्य प्रदेश में भी छापेखानों की बिजली काट दी गयी, लेकिन दूसरी जगहों के शहरों में ...र निकले। 26 जून को सुबह देश के अन्दर की हालत के बारे में अखबारों में लिखने पर सेंसरशिप लागू कर दी गयी। सारी खबरें जाँच-पड़ताल के लिए

सरकार के पास भेजनी पडती थी।

जिस वक्त तक मत्री लोग कबिनेट की मीटिंग के लिए 1 सफदरजग रोड पर पहुँचे, उस वक्त तक जितने लोगो के नाम गिरफ्तारी की फेहरिस्तो मे थे वे लगभग सभी पकडे जा चुके थे। सरकार ने अखबारो को इन लोगों की सख्या 676 बतायी, कबिनेट के मन्त्रियो का यह भी नही बताया गया। इमर्जेंसी की घोषणा उनके सामने घटना हो जाने के बाद मजूरी के लिए रख दी गयी। सभी लोग चुप रहे। जगजीवन-राम और चह्वाण बस अपने सामनेवाली दीवार को तकते रहे। चारो तरफ एक तनाव था।

कुछ देर बाद स्वर्णसिंह बोले। उन्होने पूछा कि क्या इमर्जेंसी सचमुच जरूरी थी ? उन्होने इसके बारे मे ज्यादा कुछ नही कहा और न ही श्रीमती गाधी ने कुछ कहा। इसके बाद सिर्फ इस पर थोडी देर चर्चा हुई कि सविधान की दृष्टि से इमर्जेंसी का क्या मतलब है।

लेकिन कैबिनेट की मीटिंग तो महज खानापूरी थी। यह रस्म पूरी हो जाने के बाद श्रीमती गाधी ने रेडियो पर अपने भाषण की तयारी शुरू कर दी, जिसका मसविदा सुबह चार बजे ही तैयार हो गया था। कुछ अंग्रेजी शब्दो के हिन्दी शब्द न मिलने की वजह से उसे अन्तिम रूप देने मे कुछ देर हुई थी।

हिन्दुस्तान टाइम्स और स्टेटसमन ने अगले दिन सुबह भी अखबार छापने की योजना बनायी थी। 11 बजे सुबह हिन्दुस्तान टाइम्स तो निकलकर सडको पर बिकने लगा लेकिन स्टेटसमन मे रोटरी मशीन चलने ही वाली थी कि टेलिप्रिंटर पर एक जरूरी खबर आयी जिसमे गिरफ्तारियो और देश के अन्दर की हालत के बारे मे सारी खबरो और टीका टिप्पणियो को पहले सेंसर से मजूर करा लेने का ऐलान किया गया था। सारी खबरें जाँच पडताल के लिए सरकार के पास भेजना जरूरी था। जल्दी-जल्दी रोटरी रुकवायी गयी। स्टेटसमन ने अपने अखबार के पेज प्रूफ मजूरी के लिए शास्त्री भवन मे प्रेस इनफार्मेशन ब्यूरो (पी० आई० बी०) के दफ्तर भिजवा दिये। लेकिन जब तक गिरफ्तार किये गये नेताओ के नाम काटकर और उनकी तस्वीरो पर काटने का निशान लगाकर ये प्रूफ वापस आये तब तक दफ्तर की बिजली कट चुकी थी। सप्लीमेंट नही छप सका, बस पेज प्रूफ ऐतिहासिक दस्तावेज बनकर रह गये।

और जब यह खबर फैली कि हिन्दुस्तान टाइम्स तो बिक रहा है, तो हाकरों से जल्दी जल्दी सारी बची हुई कापिया वापस करने को कहा गया ताकि उनके खिलाफ कोई कानूनी कारवाई न हो।

जनसघ का अखबार मदरलड अकेला अखबार था जिसने सप्लीमेंट निकाला। बाद मे उसके प्रेस पर ताला डाल दिया गया।

उस दिन सुबह रेडियो पर राष्ट्र के नाम अपने सदेश मे श्रीमती गाधी ने कहा कि सरकार को मजबूर होकर कुछ कदम उठाने पडे हैं, क्योकि "जब से मैंने जनतत्र की खातिर भारत के आम नर-नारियो के हित मे कुछ प्रगतिशील कदम उठाने शुरू किये हैं तभी से एक बहुत गहरी और व्यापक साजिश की जा रही है।" उन्होंने कहा कि इस साजिश का मकसद जनतत्र को काम ही न करने देना है। जनता की बाकायदा चुनी हुई सरकारो को काम नही करने दिया गया है और कही कही तो विधायको को इस्तीफा देने पर मजबूर करने के लिए जोर जबरदस्ती भी की गयी है ताकि कानूनी तौर पर चुनी गयी विधानसभाओ को भग किया जा सके।" उन्होंने ललितनारायण मिश्र की हत्या का भी हवाला दिया, और यह इशारा किया कि उसमे विपक्ष का हाथ है।

इतनी बहादुरी की बातें करने के बाद भी उनका डर दूर नही हुआ। जैसा कि बाद मे उन्होने किसी स कहा, "मुझे मालूम नही था कि जनता पर इसका क्या असर हुआ होगा।"

लोग हक्का-बक्का रह गये, उन्हें कुछ भी पता नही था कि इमरजेंसी का—श्रीमती गाधी के नादिरशाही फरमान का—मतलब क्या है। धीरे-धीरे उनकी समझ मे आने लगा कि जो जनतान्त्रिक व्यवस्था पच्चीस साल से काम कर रही थी उसको ग्रहण लग गया है। वे सोचते थे कि क्या अब हमेशा ऐसा ही रहेगा ?

आकाशवाणी और टलीविज़न पर श्रीमती गाधी के ये शब्द बार-बार दोहराये जाते थे "अब हमे साधारण काम काज मे बाधा डालने के लिए सारे देश म कानून और व्यवस्था को चुनौती देने वाले नये कार्यक्रमो का पता चला है। कोई भी सरकार, जो सरकार कह जाने का दावा करती है, इस बात को चुपचाप बर्दाश्त करके देश के स्थायित्व को खतरे मे कैसे पड़ने दे सकती है ?'

इमर्जेंसी का एक फायदा ज़रूर था कि जरूरी चीज़ो की कीमतो मे ठहराव आ गया था। स्कूलो मे, दूकानो पर ट्रेनो और बसो मे अनुशासन का असर दिखायी देने लगा था, नई दिल्ली की सडको पर तो गायें और भिखारी भी अब नही दिखायी देते थे।

लेकिन श्रीमती गाधी ने यह नही बताया कि यह सारी कारवाई इलाहाबाद हाईकोर्ट के फसले के बाद ही क्यो की जा रही थी, कारखानो मे और स्कूल कालेजो म आम कानूनो की मदद से अनुशासन क्यो नही लागू किया जा सकता था, और राष्ट्र मे जो और भी बहुत सी बुराइयाँ थी उन्ह भी इन कानूनो की मदद से क्यो नही दूर किया जा सकता था।

इसकी वजह बता पाना मुश्किल भी था। शायद श्रीमती गाधी ने सोचा कि इसकी कोशिश करना भी बेकार है। वह जानती थी कि उनकी साख बहुत गिर चुकी है। ललितनारायण मिश्र की एक शोक-सभा म उन्होने कहा, अगर कोई मेरी भी हत्या कर दे तब भी यही कहा जायेगा कि यह काम मैंने खुद करवाया है।"

कारण कुछ भी रहे हो, लेकिन जो कुछ उन्होने किया वैसा पहले कभी नही हुआ था। लगभग मार्शल लॉ लगा देने जैसा सख्त कदम था—'पुलिस का राज' तो था ही। सारे देश को अचानक एक धक्का सा लगा, ऐसा लगा मानो सबकी चेतना अचानक सुन्न हो गयी हो। किसी ने सोचा भी नही था कि इतना सख्त कदम उठाया जायगा, किसी की समझ म यह भी नही आया कि इसके नतीजे क्या-क्या होगे। बिलकुल 'जुमेराती कत्लेआम' था। लोगो म पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि श्रीमती गाधी को इसका नतीजा भुगतना पडेगा, वह बचकर निकल नही पायेंगी।

खुद उनकी अपनी पार्टी के ज्यादातर लोग उतने ही हक्का-बक्का थ जितने कि दूसरे लोग। और सबस पहले वही दुम दबाकर भाग खडे हुए। 1966 म गद्दी सँभालने के बाद स श्रीमती गाधी ने सत्ता का जो मीनार खडा किया था उसे देखकर सब लोग थर थर काँपने लगे थे। अब तो जो वह कह दें वही कानून था और कोई चू भी नही कर सकता था। कबिनेट के मन्त्रियो और मुख्यमन्त्रियो स लेकर छोटे-स छोटे एक्ज़ीक्यूटिव कौंसिलर तक सभी अपने पद पर तभी तक रह सकते थ जब तक वह चाहें। जिस किसी ने भी सर उठाने की कोशिश की उसे उन्होने हटा दिया। जो बच गये थे उनम से ज्यादातर की राजनीतिक जिन्दगी उन्हीं के दम स थी। किसी बात के खिलाफ आवाज़ उठाना इनके बस का नहीं था।

श्रीमती गाधी को चुनौती दो ही आदमी द सकते थे—चह्वाण और जगजीवन-

राम। लेकिन दोनो मिलकर कोई काम नहीं कर सकते थे क्योकि दोनो ही प्रधानमंत्री बनना चाहते थे। और जब तक जान बच जाने की उम्मीद न होती तब तक वे उनसे टक्कर लेकर अपनी मौजूदा स्थिति को भी खतरे मे डालने के लिए तैयार नही थे। और उस वक्त उन्हें इसकी रत्ती भर भी उम्मीद नही दिखायी दे रही थी।

श्रीमती गांधी जानती थी कि उन्हें किन किन लोगो पर नजर रखनी है। और उन्होने नजर रखी भी पूरी तरह।

जब मैं 26 जून को चह्वाण और जगजीवनराम से मिलने उनके घर गया तो मैंने देखा कि खुफिया पुलिसवाले उनसे मिलने आनवालो की मोटरो के नम्बर और उनके नाम लिख रहे हैं। चह्वाण तो डर के मारे मुझसे मिले भी नही और जगजीवन राम मिले भी तो एक मिनट के लिए और वह घबराये हुए दिखायी दे रहे थे। जगजीवनराम ने मुझसे बस इतना कहा कि उन्हें गिरफ्तार कर लिये जाने का अंदेशा है। यह बात उन्होने बडी सावधानी स टेलीफोन का रिसीवर नीचे उतारकर कही। वह जानते थ कि उनके टेलीफोन पर जो भी बात की जाती है वह बीच मे सुनी जाती है और वह समझते थे कि अब उसमे यह बारीकी और पैदा कर दी गयी थी कि जब रिसीवर टेलीफोन पर रखा रहता था तब कमरे मे होनेवाली सारी बातचीत दूसरी तरफ सुनायी देती थी।

प्रधानमंत्री की कोठी पर 26 जून की रात को विजय का जो वातावरण था उसके बारे मे शक की कोई गुंजाइश नही थी। सभी को इस बात पर संतोष था कि सारी कारवाई बिना किसी तक्लीफ के पूरी हो गयी। किसी ने कही विरोध करने की कोशिश भी नही की। अगर छुटपुट कुछ घटनाएँ हुई भी तो उन पर जल्दी ही काबू पा लिया गया। मजदूर नेता जार्ज फर्नांडीज, जनसंघ के नानाजी देशमुख और सुब्रह्मण्यम स्वामी और इक्का दुक्का और लोगो को छोडकर जो 'अडरग्राउंड' चले गये थे, सभी खास खास लोग गिरफ्तार कर लिये गये थे। (नानाजी को तो किसी ने टेलीफोन कर दिया था कि पुलिस उन्हें गिरफ्तार करने आ रही है और वह बच निकले थे)।

संजय ने अपनी माँ से कहा, 'मैं आपसे कहता था कि कुछ भी नहीं होगा।" बंसीलाल ने कहा कि जसा कि वह पहले से ही जानते थे कही कुत्ता तक नहीं भौंका। इलाहाबाद मे जस्टिस सिनहा को 'ठीक कर देने' के लिए कहला दिया गया था। अब पुलिस उनके पीछे परछाई की तरह लगी रहती थी। उनकी सारी पिछली करतूतो की छानबीन की जा रही थी और उनके रिश्तेदारो को सताया जा रहा था।

गुजराल को 28 जून को योजना मत्रालय मे भेज दिया गया और उनकी जगह विद्याचरण शुक्ला ने संभाली। उन्होंने खबर दी कि सेंसरशिप का बंदोबस्त बडी तेजी से ठीक होता जा रहा है। धवन को यह खुशी थी कि दिल्ली मे सेंसरशिप का कोई मतलब ही नही है। एक बार उन्होंने दिल्ली के अखबारो के दफ्तरो की बिजली कटवा दी थी तो उनका सारा काम-काज तब तक ठप रहा था जब तक कि उन्होंने दुबारा बिजली चालू कर देने का हुक्म नहीं दिया था।

श्रीमती गांधी घबरायी हुई थी। वह सोचती थी कि अभी इतनी जल्दी यह नही कहा जा सकता कि सब ठीक ठाक है, लेकिन हर मुख्यमंत्री ने यही रिपोर्ट भेजी थी कि 'स्थिति पूरी तरह काबू में है।'

दिल्ली की सडको पर डर छाया हुआ था। जनसंघ के स्वयसेवक छोटी-छोटी टोलियो मे गिरफ्तार हो रहे थे, और कुछ दूसरी छोटी-मोटी घटनाएँ भी हुई। लेकिन बाहर स देखन म जिन्दगी पहले की तरह ही चल रही थी। स्टेट्समन ने कमाल के

फोटोग्राफर रघुराय की खीची हुई एक फोटो छापी थी, जिसमे सब-कुछ कह दिया गया था। उसमे दिखाया गया था कि एक आदमी दो बच्चा को साइकिल पर बिठाये ले जा रहा है पीछे पीछे एक औरत पैदल चल रही है और चारो ओर बीसियो पुलिस-वाले हैं। तस्वीर के नीचे लिखा था चाँदनी चौक म जिन्दगी पहले की तरह ठीक से चल रही है। (सेंसर के दफ्तर मे जो आदमी था उसने तस्वीर को 'पास' कर दिया—अगले दिन उस बदलकर किसी दूसरी जगह भेज दिया गया।)

मीसा के ऑर्डर के साइक्लोस्टाइल किये हुए फार्मों से उत्तर प्रदेश म कई मजिस्ट्रेटो को बडी आसानी हो गयी। उन्होने खाली फार्मों पर दस्तखत कर दिये और बाकी कारवाई पुलिस पर छोड दी। खुफिया पुलिस की पुरानी रिपोर्टों की मदद स तैयार की गयी फेहरिस्तो के हिसाब से गिरफ्तारियाँ होती रही। फिर इसम ताज्जुब ही क्या है कि आगरा म पुलिस न एक घर पर ऐसे आदमी को गिरफ्तार करने के लिए छापा मारा जो 1968 म मर चुका था।

अखबारो का गला घोटा जा रहा था। जनसघ के हिन्दी के अखबार साप्ताहिक पाञ्चजन्य दनिक तरुण भारत और मासिक राष्ट्रधम बन्द करवा दिये गये। पुलिस की एक टुकडी तलाशी के वारट या उचित अधिकारी की आज्ञा के बिना ही इन अखबारो के दफ्तर म घुस आयी, उसन जबदस्ती प्रेस म काम करनेवालो को धक्का देकर बाहर निकाल दिया और प्रेस पर ताला डाल दिया ताकि इनमे स कोई अखबार छप न सके। इन अखबारो के प्रकाशक राष्ट्रधम प्रकाशन को लखनऊ मे कोई वकील तक नही मिल सका। वकील डरत थे, जो भी उनकी परवी के लिए तयार होता उस भारत सुरक्षा कानून म पकडकर बन्द कर दिया जाता।

शुरू मे पजाब मे अकालिया के खिलाफ कोई कारवाई नही की गया। उम्मीद थी कि वे जनसघ के खिलाफ सरकार का 'साथ देंगे,' क्योकि सिक्ख हिन्दू सवाल पर दोना म अनबन हो गयी थी। लेकिन सरकार यह भूल गयी थी कि दोना म जो भी मतभेद रहे हो वे पिछले कुछ वर्षों के दौरान दूर हो गये थे। जयप्रकाश के लुधियाना जान पर, जहाँ अकालियों न उनके लिए पाँच लाख आदमियो की मीटिंग जुटायी थी, ये लोग विपक्ष के ज्यादा करीब आ गये थे। बहरहाल, सरकार की नादिरशाही का खतरा जनसघ की छेडछाड से ज्यादा सगीन था।

पजाब के अखबारो पर, जो सारे-के सारे जालधर से निकलते थे पुलिस का हमला बहुत बरहम था। ट्रेनो के वक्त के हिसाब स उर्दू और पजाबी के ज्यादातर अखबार आधी रात तक छप जाते थे। पुलिस न रात को देर से निकलनेवाले एडीशन समेत सभी एडीशनो की सारी कापियाँ नष्ट करवा दी। पजाब की पुलिस चडीगढ मे ट्रिब्यून के दफ्तर भेजी गयी। जाहिर है इसके लिए नई दिल्ली से हुक्म आया होगा क्योकि सघ क्षेत्र होने के कारण चडीगढ मे घुसने के लिए पुलिस को केन्द्रीय सरकार म इजाजत लनी पडती है। चीफ कमिश्नर ने इस पर एतराज किया। बाद मे धवन ने इस मामले को अपने ढग से निबटा दिया।

हरियाणा म तो किसी को भी मीसा या डी० आई० आर० म गिरफ्तार कर लेना वहाँ के शासको के लिए मन बहलाने का आम तरीका था। किसी को भी पकड लेने के लिए वह बडा हो या छोटा, दोस्त हो या दुश्मन किसी बहाने की जरूरत नहीं होती थी। इमर्जेंसी लागू होते ही विपक्ष के नेताओ और कायकर्ताओ की आम धर-पकड के अलावा एक हजार से ज्यादा आदमी किसी-न किसी बहाने पकड लिए गये थे। जेल म राजनीतिक कैदियों के साथ चोर-डाकुओ जैसा बरताव किया जाता था।

देश भर म सबसे पहले महाराष्ट्र हाईकोर्ट क बार एसोसिएशन ने श्रीमती

गांधी के नादिरशाही शासन की निन्दा की। ऑल इंडिया बार एसोसिएशन के प्रेसीडेंट राम जेठमलानी ने उनकी तुलना मुसोलिनी और हिटलर से की, हालांकि वह यह भी दलील देते रहे थे कि चूंकि सुप्रीम कोर्ट ने उनके पक्ष में स्टे-ऑर्डर दे दिया है इसलिए उसका सम्मान किया जाना चाहिए।

कई दूसरे राज्यों के बार एसोसिएशनों ने भी ऐसा ही किया लेकिन न जाने क्या पश्चिम बंगाल बार एसोसिएशन ने चुप्पी साध रखी थी।

गुजरात में संयुक्त मोर्चे की सरकार होने की वजह से वह राज्य इमर्जेंसी के प्रकोप से बच गया। मुख्यमंत्री बाबूभाई पटेल रेडियो पर बोलना चाहते थे। केन्द्रीय सरकार ने उनको इसका मौका देने से इंकार कर दिया। यह इमर्जेंसी के साथ उनकी पहली झड़प थी। केन्द्रीय सरकार ने राज्यों को आदेश भेजा था कि जनसंघ के और दूसरे राजनीतिक नेताओं को गिरफ्तार कर लिया जाये। बाबूभाई ने पहले तो इस आदेश को मानने से इन्कार कर दिया और बाद में जब उन्होंने उनको गिरफ्तार किया भी तो डी० आई० आर० का सहारा लेकर, जिसमें गिरफ्तार किया गया आदमी जमानत पर छूट सकता है, जबकि मीसा में गिरफ्तार किये जानेवालों को कानून इस बात की इजाजत नहीं देता।

बाबूभाई ने एक इंटरव्यू में कहा कि वह इस बात का पक्का बन्दोबस्त रखेंगे कि नागरिक स्वतंत्रताओं में किसी तरह की बाधा न पड़ने पाये और यह भी कि वह मीटिंगों और जुलूसों पर पाबन्दी नहीं लगायेंगे।

सारे राज्य में विरोध प्रदर्शन हो रहे थे, बड़े शहरों में ज्यादा हो रहे थे। नागरिकों को काले बिल्ले लगाने अपने घरों पर काले झण्डे फहराने और अपने दरवाजों पर भारतीय संविधान की प्रस्तावना चिपकाने के लिए बढ़ावा दिया गया, जिसमें मानव अधिकारों पर जोर दिया गया है।

जन प्रदर्शनों में चुप जुलूस, छात्रों के जुलूस, भूख हड़तालें और सार्वजनिक स्थानों में धरने शामिल थे। धीरे धीरे सारे देश से श्रीमती गांधी के सैकड़ों आलोचकों ने इस राज्य में आश्रय ग्रहण ली।

अगर विपक्ष की सरकार उनकी रक्षा करने के लिए न होती तो नवनिर्माण समिति के छात्र नेताओं को शायद कई मुसीबतों का सामना करना पड़ता। 1974 में जब उस समय के मुख्यमंत्री चिमनभाई पटेल ने अध्यापकों के उम्मीदवारों को, जो उस समय गुजरात में नवनिर्माण आन्दोलनों की जान थे, हरवाकर अपने उम्मीदवार ईश्वरभाई पटेल को गुजरात यूनिवर्सिटी का वाइस चांसलर बनवा दिया था तो इन्हीं छात्र नेताओं ने उनके मन्त्रिमण्डल का तख्ता उलट दिया था।

गुजरात सरकार सेंसरशिप के पक्ष में नहीं थी और उसने राज्य के सूचना विभाग के डायरेक्टर को चीफ सेंसर नियुक्त नहीं होने दिया जैसा कि दूसरे राज्यों में हुआ था। अहमदाबाद के कॉलिज अध्यापकों ने आन्दोलन छेड़ दिया और विधानसभा में पूरे दिन इस सवाल पर बहस हुई। यह बात ठीक ठीक मालूम नहीं हो सकी है कि क्या सूचना विभाग के डायरेक्टर ने सरकार की सलाह से ऐसा किया, लेकिन उन्होंने अखबारवालों से कहा कि उस दिन की विधानसभा की कारवाई न छापें।

कुछ दिन बाद केन्द्रीय सरकार ने स्थानीय प्रेस इनफार्मेशन ब्यूरो (पी० आई० बी०) के प्रधान अधिकारी को चीफ सेंसर बना दिया। कई अखबारों को वे खबरें छापने से रोका नहीं जा सकता थे जिनसे राज्य-सरकार को परेशानी होती लेकिन इमर्जेंसी या केन्द्रीय सरकार के बारे में सारी खबरों को बड़ी मुस्तैदी से दबा देते थे।

तमिलनाडु ने भी अखबारों पर सेंसरशिप लागू करने का विरोध किया।

द्रविड मुन्नेत्र कजगम (डी० एम० के०) की सरकार ने, जिसमे मुख्यमंत्री करुणानिधि थे, खुली बगावत की नीति नही अपनायी और यह ऐलान किया कि वह केन्द्रीय सरकार के उन्ही आदेशों को पूरा करेगी जो 'हमे मजूर हो'। गैर सरकारी तौर पर, डी० एम० के० इमर्जेंसी के बिलकुल खिलाफ थी।

पश्चिम बगाल मे, मन्त्रियो से लेकर मामूली कांस्टेबिल तक सभी न इमर्जेंसी मे मिले हुए अधिकारो की आड लेकर अपने सारे, निजी और राजनीतिक, पुराने हिसाब निकाल लिये। अमृत बाजार पत्रिका के दो पत्रकार गौरकिशोर घोष और बरुन सेनगुप्ता, जिन्होन मुख्यमंत्री की आलोचना की थी, गिरफ्तार कर लिए गये। घोष ने बगला की एक छोटी सी किताब कालिकता मे राजनीतिक आधार पर मुख्यमंत्री की आलोचना की थी लेकिन सेनगुप्ता का हमला निजी बातो के बारे म था। उन दोनो को मीसा मे गिरफ्तार कर लेने का हुक्म दिया गया था। घोष को तो आसानी से गिरफ्तार कर लिया गया लेकिन सेनगुप्ता कलकत्ता छोडकर भाग गया और दिल्ली ने काफी अरसे तक मजय के सरक्षण म रहा, जिसस पता चलता है कि श्रीमती गाधी के बेटे और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध कितने खराब थे। लेकिन आखिरकार पुलिस ने सेनगुप्ता को भी गिरफ्तार कर लिया और जेल मे उनके साथ बहुत बुरा बरताव किया गया, खासतौर पर इसलिए कि मुख्यमंत्री इस बात पर बहुत नाराज थे कि उसन उन पर कुछ निजी बातो को लेकर हमला किया था।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेता अशोक दासगुप्ता को अपनी बीमार माँ को देखने के लिए हथकडी पहनाकर चार घटे की परोल पर ले जाया गया। उन्होंने बहुत कहा कि मैं राजनीतिक कैदी हूँ और मेरी माँ को मुझे हथकडी पहने देखकर बडी तकलीफ होगी, लेकिन पुलिस न उनकी एक न सुनी। ऐसा लगता है ऊपर स यह सख्त हिदायत दे दी गयी थी कि इमर्जेंसी मे पकडे गये कैदियो को जब भी बाहर ले जाया जाये तो उनके हथकडी जरूर डाली जाये। काफी आन्दोलन के बाद राजनीतिक कैदियो को जो रियायतें मिली थी, वे इमर्जेंसी के दौरान वापस ले ली गयी थी।

जिला अधिकारियो की ओर स प्राइवेट बसो के मालिको को भाडा बढा देने की जो इजाजत दी गयी थी उसके खिलाफ आवाज उठाने के अपराध म सगठन कांग्रेस के नेता राजकृष्ण को गिरफ्तार कर लिया गया था। बिजली तथा सिंचाई मत्री ए० बी० ए० गनी खान चौधरी खुद अपने मालदा जिले मे मीसा मत्री के नाम स मशहूर थे। जिस किसी स भी वह नाराज हो जाते थे उसे मीसा मे पकडवा देने की धमकी देते थे।

अखबारो पर सेंसरशिप को पार्टी के और निजी कामो के लिए भी इस्तेमाल किया गया। ऐसी कितनी ही मिसालें है जब कांग्रेस के नेताओ के बयान भी सिर्फ इसलिए नहीं छपने दिये गये कि सूचना मत्री सुब्रत मुखर्जी उन्हे नही छपने देना चाहते थे। सेंसर करनेवालो को साफ साफ बता दिया गया था कि मत्री के ग्रुप के खिलाफ कोई खबर न छपने दी जाय।

बिहार मे, इमर्जेंसी के दौर मे कितने ही तानाशाह उभर आये। वह जो कह देत थे वही कानून हो जाता था। कुछ तानाशाह बिलकुल ठगो की तरह रहते थे उनमे से कुछ न अपनी रगरलियो के लिए सर्किट हाउसो और डाक बगलो मे कमरे रिजर्व करा रखे थ। जिला मे जिला मजिस्ट्रेटो से भी ज्यादा उनका सिक्का चलता था। उनका हुक्म बिलकुल मुख्यमंत्री के हुक्म जैसा समझा ज ता था और सरकारी अफसरो के लिए कायदे कानून के हिसाब स काम करने की कोई गुंजाइश ही नहीं रह गयी थी।

हर कायदे कानून को शासक गुट का काम बनाने के लिए या तानाशाहा के निजी हितो को पूरा करने के लिए मनचाहे ढग से तोड-मरोड लिया जाता था। भूमि-सुधारो का गहरा असर उन्ही जमींदारो पर पडता था जिनके बारे मे यह शक होता था कि उनका झुकाव विपक्ष की ओर या कांग्रेस के दूसरे गुट की ओर है।

सरकार का प्रचारतन्त्र मुख्यमन्त्री की हवा बाँधने के लिए पूरा जोर लगाकर काम कर रहा था। सेंसरवाले ऐसी कोई बात छपने ही नही देते थे जिसमे उनकी आलोचना की गयी हो। सेंसरशिप का मतलब था कि ऐसी कोई खबर न छपने दी जाये जिससे सरकार को या कांग्रेस के शासक गुट को किसी परेशानी का सामना करना पडे। पूर्णिया और मुगेर जिलो के दगो की खबर न बिहार मे छपी और न कही और ही। भागलपुर जेल मे नजरबन्द कैदियो पर गोली चलाये जाने की खबर भी नही छपी, ये लोग उन बुनियादी सुविधाओ की माँग कर रहे थे जो जेल के कायदा की किताब मे दर्ज हैं। बन्दूक के धनी पुलिसवालों और वॉडरों ने एक दजन से ज्यादा लोगो को मौत के घाट उतार दिया।

सारे देश के भ्रष्ट और गैर-जनतान्त्रिक शासन के खिलाफ जड स एक आन्दोलन खडा करने के लिए जयप्रकाश ने इस राज्य को चुना था। जिस सम्पूर्ण क्रान्ति को फैलाने का जयप्रकाश ने बीडा उठाया था उसकी बुनियाद छात्र सघर्ष समितियो और जन सघर्ष समितियों के माध्यम से काम करने वाली युवा शक्ति और जन-शक्ति पर, और गाँवो से शुरू करके प्रशासन के हर स्तर पर कायम की गयी जनता सरकारो पर थी। इन इकाइयों के पीछे राष्ट्रीय प्रशासन की कोई समानान्तर व्यवस्था कायम करने का कोई इरादा नही था बल्कि उनका काम सिर्फ सरकार की व्यवस्था पर निगरानी रखना था।

बिहार हो या गुजरात या दिल्ली सारे भारत मे एक ही जैसा नक्शा था, बर्बर शक्ति का प्रदर्शन और जहाँ कोई रत्ती भर भी सर उठाने की कोशिश करे उसे बेरहमी से कुचल देना। हर जगह पुलिस ने विरोधियो को मीसा या डी० आई० आर० मे वारट जारी करके या वारट के बिना ही पकडा। (आडवाणी को गिरफ्तारी के नौ घटे बाद गिरफ्तारी का आदेश दिखाया गया था।)

विरोधियो की बडे पैमाने पर गिरफ्तारी और अखबारो का गला घोट देने की जो योजना बनायी गयी थी, उसे बडी मुस्तैदी से और बडी तेजी के साथ पूरा कर लिया गया। एक बूद भी खून बहाये बिना सत्ता पर कब्जा कर लिया गया था।

सारे देश मे लोग अधाधुध पकडे जा रहे थे। गिरफ्तारी के वारट पर इसके अलावा और कुछ नही लिखा होता था कि अमुक आदमी को जनहित मे' गिरफ्तार किया जा रहा है। उन पर न तो कानूनी कोई अपराध करने का आरोप लगाया जाता था और न ही उन पर कोई मुकदमा चलाया जाता था। ज्यादातर राज्यो मे एफ० आई० आर० (प्रथम सूचना रिपोर्ट) का, जिसकी बुनियाद पर गिरफ्तारी की कारवाई शुरू की जाती है एक बँधा-टका नमूना तैयार करके साइक्लोस्टाइल करा लिया गया था और उसकी कापियाँ हर जिले के थानो को भिजवा दी गयी थी कि जहाँ जरूरत पडे उन्हें भर लिया जाये।

इसी तरह विदेशी पत्रकारो के देश से बाहर निकालने के आदेश भी सब पहले से टाइप करके तैयार रखे गये थे। लन्दन टाइम्स के पीटर हेजेलहस्ट जिन्होने बँगला-देश के सकट के दिनो मे पाकिस्तानी सरकार के अत्याचारों के बारे मे सारी दुनिया को बताने के सिलसिले म बहुत काम किया था, न्यूजवीक के लोरेन जेंकिस और के अखबार डेली टेलीग्राफ व पीटर गिल उन पत्रकारों मे से थे जिन्हें विदेश -

के ज्वाइंट सेक्रेटरी एस० एस० सिधू के दस्तखत से यह ग्रादेश मिला, जिसमे 'राष्ट्र-पति के नाम में' यह लिखा गया था कि वे ग्रब भारत मे नही रह सकते, उन्हें चौबीस घंटे के ग्रन्दर देश के बाहर निकाल दिया जायगा ग्रौर उसके बाद वे भारत म क़दम न रखें। जेंकिंस ने लिखा था, 'फ्रैंको के स्पेन से लेकर माग्रो के चीन तक सारी दुनिया मे दस साल तक खबरें जमा करने के दौरान मैंने कभी इतनी कडी ग्रौर इतनी दूर-दूर तक फैली हुई सेंसरशिप नही देखी।'

इन सभी लोगो को देश से बाहर निकालने के लिए एक ही ढग ग्रपनाया गया—पुलिस दरवाजे पर खटखटाती थी, ग्रादेश उन्हें देती थी, उनके कागजो की तलाशी लेती थी ग्रौर घंटे भर मे वे बाहर निकाल दिये जाते थे।

विदेशो म लोग पत्रकारो के इस तरह निकाले जाने पर दग रह गये, हालाँकि उनम म बहुतो न यह कहकर ग्रपने को समझा लिया कि भारत मे जनतन्त्र तो कभी रहा नही ग्रौर ब्रिटिश ससदीय प्रणाली भारतीय स्वभाव स मेल नही खाती। उनका रवैया बहुत ऊँचाई स बात करने का था लेकिन बिना मुकदमा चलाये इतने बडे पैमाने पर लोगो की गिरफ्तारियो ग्रौर ग्रखबारो का इस तरह गला घोट दिये जान पर उन्हें सचमुच चिन्ता थी।

ग्रगर देश के ग्रन्दर सब-कुछ उसी ढग से हुग्रा था जैसा सोचा गया था, तो विदेशो की प्रतिक्रिया का भी पहले से ग्रन्दाजा था। जैसा कि पहले ही सोचा गया था, श्रीमती गाधी ने जो कुछ किया या उस पर पश्चिमी देश हक्का-बक्का रह गये। बाप ने जो कुछ बनाया था उसे बेटी ने मिटा दिया था।

लेकिन बाहर के किसी देश की सरकार ने सरकारी तौर पर कुछ भी नही कहा। उनका कहना था कि यह एक घरेलू मामला' था। भारत सरकार ने उनके इस रवैये को बहुत पसन्द किया हालाँकि पश्चिमी देशो के ग्रखबार, कुछ लोग ग्रौर सस्थाएँ, जो कडी ग्रालोचना कर रही थी, उस पर उसे काफी गुस्सा था।

जाहिर है कि उनके ग्रपने देश के ग्रन्दर जो दबाव डाला गया उसी की वजह से ग्रमरीका के प्रेसीडेंट फोर्ड ने भारत जाने का विचार ग्रनिश्चित काल के लिए छोड दिया। ग्रमरीका मे भारत के राजदूत त्रिलोकीनाथ कौल ने इसकी वजह यह बतायी कि फोर्ड पर काम का इतना बोझ है कि वह समय नही निकाल पा रहे हैं। लेकिन ग्रमरीकी ग्रधिकारियो न यह मानते हुए कि वह बहुत काम मे फँसे हुए हैं साथ ही यह भी कहा कि भारत की डॉवाडोल राजनीतिक स्थिति को देखत हुए इस यात्रा का विचार छोड देने का फसला किया गया था।

बाद मे फोर्ड ने खुद कहा, "मैं समझता हूँ कि यह सचमुच बडे दुख की बात है कि 60 करोड लोगो स वह चीज छिन गयी है जो लगभग पिछले तीस साल से उनके पास थी। मैं समझता हूँ कि कुछ समय बाद वे जनतान्त्रिक तरीके फिर लौट ग्रायेंगे, जिस रूप मे कि हम उन्हें ग्रमरीका मे जानते हैं।" इस बात से कि उन्होंने यह बात चीन जान से फौरन पहले कही थी, सरकार को एक मौका हाथ लग गया। ग्रक्खड ग्रौर नादिरशाही मिजाज के मुहम्मद यूनुस ने, जिन्हें प्रधानमन्त्री का विशेष दूत बना दिया गया था, विदेशी पत्रकारो स कहा कि इस बात पर बडी हँसी ग्राती है कि फोर्ड न यह राय एक कम्युनिस्ट देश की यात्रा पर जाने से पहले जाहिर की।

वाशिंगटन म इडियस फार डेमोक्रेसी के नाम से एक सगठन बनाया गया ग्रौर 30 जून को भारतीय दूतावास के सामने एक प्रदर्शन किया गया। कार्यकारी राजदूत गोनसाल्वेज ने 1 200 हिन्दुस्तानियों के दस्तखत के साथ दी गयी एक ग्रर्जी लेने से इन्कार कर दिया ग्रौर उलटे इन लोगो को पाकिस्तानी ग्रौर चीनी एजेन्ट कहा।

अमरीकी ट्रेड यूनियन ए० एफ० एल०-सी० आई० ओ० ने कहा, "भारत एक पुलिस राज्य बन गया है जिसमे जनतन्त्र को कुचल दिया गया है।" उसने अमरीका की सरकार से अनुरोध किया कि जब तक वहाँ की जनता के लिए फिर से जनतन्त्र की स्थापना न हो जाये तब तक के लिए वह भारत सरकार को कोई भी मदद न दे।

इंग्लैंड का, जिसके भारत के साथ भावुकता के सम्बन्ध बने हुए हैं, बहुत धक्का लगा। आखिरकार भारत ने जो रास्ता अपनाया था वह ब्रिटिश संसदीय प्रणाली का रास्ता था। अखबारों की स्वतन्त्रता की हत्या को वहाँ और भी गहराई से महसूस किया गया। ब्रिटिश सरकार का विरोध प्रकट करने के लिए प्रिंस चार्ल्स की भारत की यात्रा रद्द कर दी गयी। बी० बी० सी० जिसका नई दिल्ली का दफ्तर पहले भी एक बार बन्द करवा दिया गया था, अब पहले से ज्यादा खबरें देने लगा और भारत मे ज्यादातर लोगो को, जेलों के अन्दर भी, इमर्जेंसी के पूरे दौर म अपने देश की खबरें बी० बी० सी० के जरिये ही मिलती थी। बाद मे उसके मिलनसार सम्वाददाता मार्क टल्ली को एक बार फिर यह देश छोडना पडा क्योंकि भारत सरकार इस पर अडी हुई थी कि बी० बी० सी० भारत से जो खबरें भेजे उन पर पहले सेंसर की मजूरी ले।

लेकिन सोवियत सघ और पूर्वी यूरोप के देशो मे राय इंदिरा गाधी के पक्ष मे थी। प्रावदा को इमर्जेंसी के अच्छे नतीजे भी दिखायी देने लगे। इस अखबार ने लिखा, "अधिकारियों ने दक्षिणपथी पार्टियो के नेताओ की जो गिरफ्तारियाँ की हैं उनको जनतान्त्रिक शक्तियाँ सही समझती हैं, और सेंसरशिप लागू हो जाने से अब इजारेदारो के अखबारो को सरकार के खिलाफ मुहिम चलाने और लोगो को भडकाने का मौका नही मिलेगा।"

चीन ने भी आलोचना की, जैसा कि वह हमेशा से करता आया था, लेकिन इमर्जेंसी के खिलाफ आवाज उठाने के लिए नही बल्कि भारत सरकार को बदनाम करने के लिए।

चुनाव मे बेजा तरीके अपनाने पर श्रीमती गाधी के अदालत मे दोषी ठहराये जाने पर जुल्फिकार अली भुट्टो ने सन्तोष प्रकट किया। बाद मे उन्होने एक अखबार को बताया, "उपमहाद्वीप के दूसरे हिस्सो की इधर हाल की घटनाओ ने साबित कर दिया है कि इस डावाँडोल इलाके म पाकिस्तान ही के पाँव मजबूती से जमे हुए हैं।"

श्रीमती गाधी ने पश्चिमी देशो के खिलाफ उनका नाम लेकर तो कुछ नही कहा, लेकिन उनका गुस्सा साफ जाहिर था। उन्होने कहा कि इन देशो ने पहले ही से भारत के खिलाफ एक खराब राय बना रखी है। किसी देश का नाम लिये बिना उन्होने पश्चिमी ताकतो और पश्चिमी देशो के अखबारो को बहुत लताडा कि एक तरफ तो वे गैर जनतान्त्रिक सरकारो को सहारा देते हैं और दूसरी तरफ "जनतन्त्र की शिक्षा देने की कोशिश करते हैं।" उन्होने घुमा फिराकर अमरीका पर मक्कारी का इल्जाम लगाया कि वह बातें तो जनतन्त्र की करता है लेकिन लैटिन अमरीका में और दूसरी जगहो मे वह तरह तरह की डिक्टेटरी हुकूमतो को लगातार सहारा देता रहता है। श्रीमती गाधी ने पश्चिमी देशो की सरकारो और उनके अखबारो की चर्चा इस तरह एक साथ की मानो वे एक ही चीज हो और यह आरोप लगाया कि विदेशी ताकतें भारत के 'अडरग्राउंड' आन्दोलनो को बढावा दे रही हैं।

उन्होने कितनी ही बार कहा कि जो देश भारत की आलोचना कर रहे थे वे वही देश थे जिन्होने पाकिस्तान मे याह्या खाँ की फौजी हुकूमत का और बँगला देश के दमन का समर्थन किया था। आज यही देश चीन के करीब आने के लिए एक-दूसरे से होड कर रहे थे। "इन लोगो को चाहिए कि हमे उपदेश देने के बजाय अपने गिरेबान

मे मुँह डालकर देखें।"

उन विदेशी अखबारो को, जिनमे आलोचना करनेवाली खबरें छपती थी, आने ही नही दिया जाता था। जब से शुक्ला सूचना मन्त्री बने थे तब से सेंसरशिप और कडी हो गयी थी।

अखबारो के लिए हिदायतें[1] जारी कर दी गयी थी और किसी भी भारतीय या विदेशी अखबार म अफवाह छापने, आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित करने और कोई भी ऐसा लेख छापने पर जिससे सरकार के खिलाफ विरोध की भावना उभरने का खतरा हो, बिलकुल पाबन्दी लगा दी गयी थी। ऐसे सभी कार्टून, फोटो और विज्ञापन, जिन पर सेंसर के कानून लागू हो सकते हो सेंसर के लिए भेजना जरूरी ठहराया गया।

समाचार एजेंसियो के दफ्तरो मे अफसर तैनात कर दिये गये थे ताकि वे आपत्तिजनक' चीजो को वही जड पर काट दें। विदेशी समाचार एजेंसियाँ जो भेजती थी उनकी भी छानबीन की जानी थी और अगर उनम सोवियत सघ जसे 'मित्र देशो' के 'खिलाफ भी कोई बात होती थी तो उसे वही दवा दिया जाता था। जयप्रकाश के एवरीमन, जाज फर्नांडीज के प्रतिपक्ष, और पीलू मोदी के मार्च ऑफ द नेशन को अपना प्रकाशन बन्द कर देना पडा। जनसघ के मदरलड और आर्गनाइजर पर पाबन्दी लगा दी गयी और उनके दफ्तरो पर ताला लगा दिया गया।

शुक्ला न सजय को पूरा यकीन दिलाया था कि वह पत्रकारो को ठीक कर देंगे जबकि गुजराल यह काम नही कर पाये थे। उन्होने दिल्ली के सम्पादको की एक मीटिंग करके उनस साफ साफ कह दिया कि सरकार 'कोई बेहूदगी' बर्दाश्त नही करेगी, वह जमकर शासन करेगी।

उन्होने मुझे बताया कि किसी सम्पादकीय मे, किसी लेख म या किसी भी जगह खाली जगह छोडना भी (जो अंग्रेजो के जमाने मे सेंसरशिप के खिलाफ विरोध प्रकट करने का भारतीय अखबारो का एक आम तरीका था) बगावत समझा जायगा, उन्होने सम्पादको को गिरफ्तार करा देने की भी धमकी दी। सब लोग यह सुनकर दग रह गये लेकिन किसी ने इसके खिलाफ कुछ कहा नही। इससे भी ज्यादा भयानक बात यह थी कि उनम स कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने सेंसरशिप को उचित बताया और सरकार की तारीफ के ऐसे पुल बाँधे कि अगर शुक्ला की जगह कोई दूसरा होता तो खुद शरमा जाता।

अखबारवालो के लिए सिर्फ डडा था, कोई लालच भी नही दिया जाता था। और इस डडे को अच्छी तरह इस्तेमाल करने का पक्का बन्दोबस्त करने के लिए शुक्ला इण्डियन पुलिस सर्विस के के० एन० प्रसाद को अपने मत्रालय म ले आये, यही उनका दाहिना हाथ या डडा चलानेवाला हाथ था। उन्होंने एक अनोखा तरीका यह निकाला था कि वह टेलीफोन पर सेंसर को आदेश देते थे और सेंसरवाले अखबारो को टेलीफोन कर देते थे।

लेकिन 29 जून को सेंसरशिप लागू किये जाने के खिलाफ अपनी आवाज उठाने के लिए प्रेस क्लब म लगभग सौ पत्रकार जमा हुए जिनम कुछ सम्पादक भी थे और उन्होंने सरकार म अपील की कि सेंसरशिप उठा ली जाय। उन्होने जालंधर के हिन्द समाचार के जगतनारायण और दिल्ली के मदरलैण्ड के एम० आर० मलकानी की रिहाई की माँग की। मैंने इस प्रस्ताव की नकलें राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री और सूचना

[1] देखिये परिशिष्ट 2

मत्री के पास भेज दी।[1]

विदेशी पत्रकारो को उनकी भेजी हुई खबरो के लिए गिरफ्तार नही किया जा सकता लेकिन उन्हें देश से निकाल बाहर किया जा सकता था। सबसे पहले जो निकाले गये वह थे वाशिंगटन पोस्ट के लीविस एम० साइमस, जिन्होंने एक लेख लिखा था सजय गाधी और उसकी माँ'। उसमे और बातो के अलावा यह भी लिखा था, "भारत के लिए गम्भीर सकट की इस घडी मे प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी, जिन्हें अपने मन्त्रिमण्डल के निकटतम सहयोगियो पर भी भरोसा नही रह गया है बडे-बडे राजनीतिक फैसले करने के लिए अपने छोटे बेटे की मदद का सहारा लेने लगी हैं। परिवार के एक मित्र जो कई महीने पहले सजय और श्रीमती गाधी के साथ खाने की दावत मे शरीक हुए थे, उन्होंने बताया कि उन्होंने खुद देखा कि बेटे ने छ बार' माँ के मुह पर तमाचे मारे। वह कुछ भी न कर सकी। इस मित्र ने कहा, 'वह चुपचाप खडी तमाचे खाती रही। उसके डर के मारे उनका दम निकलता है।"

सजय ही उनकी तरफ से हर बात का फसला करता था। पार्टी मे या सरकार म उसकी कोई हैसियत नही थी, लेकिन दोनो जगह वही 'चौधरी था। देश म सारा प्रशासन-तन्त्र उसके इशारे पर नाचता था। प्रधानमत्री की कोठी से वह कैबिनेट के मत्रियो मुख्यमत्रियो और ऊँचे से-ऊचे सरकारी अफसरो को हुक्म देता था और वे चुपचाप उसका हुक्म बजा लाते थे। अक्सर तो ऐसा भी होता था कि जब वे श्रीमती गाधी के पास किसी सवाल पर बात करने जाते थे तो वह खुद कह देती थी, सजय से बात कर लीजिये।' और तब वह खुद अपनी तरफ से उन्हे आदश देता था।

लेकिन सजय लगभग हमेशा ही उन्हे बता देता था कि वह क्या कर रहा है और उसने क्या आदेश दिये हैं। इमर्जेंसी के शुरू शुरू के दिनो मे सजय और उसके कारिंदे—बसीलाल, ओम मेहता, शुक्ला और धवन—प्रधानमत्री की कोठी पर दिन भर का लेखा-जोखा करने के लिए जमा होते थे। तब तक एक और आदमी इस टोली म शामिल हो गया था—यूनुस। वह कोठी म मँडराते तो पहले ही दिन से रहे थे लेकिन कुछ अरसे तक उन्हे इस दीवानें-खास मे घुसने की इजाजत नही थी। नेहरू परिवार के साथ उनका बहुत पुराना सम्बध रहा था और नेहरू ने ही उन्हे राजदूत चुना था। उनकी राय मे श्रीमती गाधी की सारी मुसीबतो की जड हकसर थे।

इस 'इमर्जेंसी कौंसिल की मीटिंगो मे, जिनमे श्रीमती गाधी भी हिस्सा लेती थी, खुफिया विभाग की रिपोर्टों, 'रा' के अनुमानो फोन पर मुख्यमत्रियो से धवन की जमा की हुई खबरो पर चर्चा होती थी। विदेश सचार सेवा के जरिये विदेशी सवाद दाता जो खबरें भेजते थे उनकी नकलें भी उनके सामने रहती थीं।

यहीं यह तय किया जाता था किस मत्रालय या किस राज्य को, और किस अफसर के पास, क्या आदेश भेजे जायेंगे। बिलकुल वही नक्शा होता था जसे लडाई के दौरान अलग अलग मोर्चों पर फौजी कारवाई का फैसला किया जा रहा हो और हालांकि श्रीमती गाधी वहा मौजूद रहती थी लेकिन सारी कारवाई की बागडोर सजय के हाथ मे रहती थी।

धवन और ओम मेहता मे अक्सर तनातनी रहती थी, क्योंकि प्रधानमत्री के पर्सनल असिस्टेंट ओम मेहता की जागीर मे जाकर शिकार मार लाते थे। धवन अक्सर

1 इसकी और अधिक जानकारी के लिए मेरी अगली पुस्तक 'जेल मे' की प्रतीक्षा करें।

2 सजय की शादी उन्हीं के घर पर हुई थी और श्रीमती गाधी का पूरा परिवार उन्हें बुद्ध चाचा कहता था।

दिल्ली के लेफ्टिनेंट गवर्नर किशनचंद और दिल्ली पुलिस के डी० आई० जी० भिंडर के जरिये खुद अपनी मर्जी से भी कई काम करवा लेते थे। भिंडर को अपनी बारी से पहले ही तरक्की देकर इस ओहदे पर पहुँचा दिया गया था, जिस पर ओम मेहता और गृह मंत्रालय के सेक्रेटरी खुराना बहुत खीझे हुए थे। दोनों गुटों में हमेशा ठनी रहती थी खासतौर पर दिल्ली में होनेवाली कारवाइयों के सवाल पर। उनके झगड़े भी संजय ही निबटाता था और उन्हें उनके काम सौंपता था।

श्रीमती गांधी को अपने बेटे और उसके कारिन्दों पर पूरा भरोसा था। उसे वह काम का धनी समझती थी, जिसने उन्हें उस वक्त बचा लिया था जब उनके पाँव लड़खड़ा गये थे। संजय का काम अपने नाना की तरह सिर्फ दूसरों को बचाना नहीं था। वह अच्छी तरह जानता था कि उसे क्या बनना है, वह जानता था भविष्य उसी का है। श्रीमती गांधी इस बात के लिए पूरी तरह राजी थी कि वह फैसले करे—और बड़े-बड़े सवालों के बारे में ही नहीं, अफसरों की नियुक्ति और बदली, जो लोग वफादार थे उनकी तरक्की और जो नहीं थे उनको सजा—इन सब बातों का फैसला संजय के ही हाथ में था। कभी-कभी किसी बुनियादी महत्त्व की जगह पर किसी अफसर की नियुक्ति से पहले संजय उसका इण्टरव्यू लेता था। ऐसा लगता है कि वह कई ऐसे लोगों को, जो बहुत लम्बे अरसे तक उसकी माँ की सेवा कर चुके थे शुबहे की नजर से देखता था, खासतौर पर कश्मीरियों, दक्षिण भारत के लोगों और पूरब के लोगों को।

संजय उत्तर के लोगों को, खासतौर पर पंजाबियों को ज्यादा पसन्द करता था। वह जानता था कि ये लोग उसके लिए जान तक दे देने को—या कम से कम दूसरों की जान ले लेने को—हमेशा तैयार रहेंगे। जैसे-जैसे दिन बीतते गये कश्मीरी गिरोह, जो उसकी माँ के जमाने में छाया हुआ था, धीरे-धीरे पंजाबी गिरोह में बदलता गया। लेकिन अब वह सिर्फ गिरोह नहीं था ठगों का गिरोह था।

उसकी योजना उन लोगों की मदद से पूरी की गयी थी जिन पर वह इस बात के लिए पूरा भरोसा कर सकता था कि वे 'इमर्जेंसी की कारवाई' की मशीन के सारे कलपुर्जे अपनी अपनी जगह पर ठीक से फिट कर देंगे, राष्ट्रपति के दस्तखत से फरमान जारी कराके सारे पेंच कस दिये गये। अपने मूल अधिकारों की रक्षा कराने के भारतीय नागरिकों और विदेशियों के सारे अधिकार छीन लिये गये। एक और फरमान की मदद से मीसा का कानून और सख्त बना दिया गया जो लोग नजरबन्द किये जाते थे उन्हें या अदालतों को उनकी नजरबन्दी की वजह बताये बिना ही जेल में बन्द रखा जा सकता था। इसकी अपील भी किसी अदालत में नहीं की जा सकती थी।

श्रीमती गांधी का दावा था कि वह हर काम संविधान की सीमाओं में रहकर कर रही हैं और वह अपनी हर कारवाई को उचित ठहराने के लिए जनतन्त्र की बचाव की दुहाई देती थी। शासन कितना ही नादिरशाही क्यों न हो जनतन्त्र का दिखावा तो बाकी रखना ही था। जैसा कि जार्ज आर्वेल ने कहा था, लगभग सभी लोग यह महसूस करते हैं कि जब हम किसी देश को जनतान्त्रिक कहते हैं तो हम उसकी प्रशंसा करते हैं नतीजा यह होता है कि हर तरह के शासन में डिक्टेटर दावा यही करता है कि उसका शासन जनतन्त्र है।

अधिकारों पर पाबंदियाँ लागू कर देने मूल अधिकारों को ताक पर रख देने और हजारों लोगों को मुकदमा चलाये बिना जेल में ठूस देने के बाद केवल आर्वेल की उस निराली भाषा 'न्यूस्पीक' (नयी बानी) में ही, जिसमें युद्ध मंत्रालय को शान्ति मंत्रालय कहा जाता था श्रीमती गांधी यह कह सकती थी कि भारत अब भी एक जनतन्त्र है।

इण्टरनेशनल प्रेस इन्स्टीच्यूट ने श्रीमती गाधी से सेंसरशिप हटा लेने का अनुरोध किया, क्योकि वह 'दुनिया की नजरो मे भारत के नाम पर एक कलक ही साबित हो सकती है।"

सोशलिस्ट इण्टरनेशनल ने 15 जुलाई को जयप्रकाश से जहाँ वह नजरबन्द थे वही मिलने के लिए एक प्रतिनिधिमण्डल भेजने का फैसला किया जिसमे विली ब्राट, जो पश्चिम जर्मनी के चासलर रह चुके थे, और आयरलैंड के डाक तार मत्री कोनार क्रूज ओ ब्रायन भी शामिल थे। लेकिन भारत सरकार ने यह कहकर उन्हें इजाजत देने से इकार कर दिया कि यह भारत के अन्दरूनी मामलात मे सरासर हस्तक्षेप' होगा। सोशलिस्ट इण्टरनेशनल ने इसके जवाब मे कहा, अब सभी सोशलिस्ट यह महसूस करते होंगे कि भारत में जो कुछ हो रहा है वह उनके लिए निजी तौर पर एक दुखद बात है।"

पश्चिमी देशो मे सरकारी राय यह थी कि भारत मे जनतन्त्र हमेशा के लिए खत्म हो गया है और यह बात कितनी ही तकलीफदेह क्यो न हो, श्रीमती गाधी को नाराज करने से तो अच्छा यही है कि इस सच्चाई को मान लिया जाये। अमरीका के विदेशमत्री हेनरी किसिजर ने विदेश विभाग मे इस सवाल पर बहस की और वह इस नतीजे पर पहुचे कि अब भारत सरकार से निबटना ज्यादा आसान होगा। इस मीटिंग मे उनके एक सहयोगी ने कहा कि श्रीमती गाधी की नीति अब ज्यादा व्यावहारिक' होगी। किसिजर ने कहा, 'तुम्हारा मतलब है बिकाऊ।' किसी ने डिक्टेटर का भी जिक्र किया।

शायद उस वक्त भी वह यह मानने को तयार नही थी कि वह डिक्टेटर है, और अगर कोई उन्हें डिक्टेटर कहता था तो वह इसे अपना अपमान समझती थी। और देश मे बहुत से लोग ऐसे थे जो यह यकीन ही नही कर सकते थे कि नेहरू की बेटी डिक्टेटर बन सकती है उन्हें पूरा यकीन था कि एक असाधारण स्थिति से निबटने के लिए उन्होने असाधारण अधिकार अपने हाथ मे ले लिये हैं। यह दौर कुछ दिन मे बीत जायेगा।

लेकिन कम से-कम एक आदमी ऐसा था जिसने साफ शब्दो मे कहा था कि वह किधर जा रही हैं। वह जानता था कि श्रीमती गाधी जनवादी नही हैं और उसने यह बात कह भी दी थी। और इसी अपराध मे वह जेल मे बन्द था।

घोर अधकार

'मेरा हमेशा से यह विश्वास रहा है कि श्रीमती गाधी की जनतन्त्र मे कोई आस्था नही है, कि वह अपने स्वभाव और अपने विश्वास से डिक्टेटर हैं।" ये शब्द जयप्रकाश नारायण ने जेल म अपनी डायरी मे 22 जुलाई को लिखे थे।

इससे एक ही दिन पहले उन्होने इसी आशय का एक लम्बा पत्र श्रीमती गाधी को लिखा था। इसमे उन्होने कहा था

"राष्ट के निर्माताओ ने, जिसमे तुम्हारे उदात्त पिता भी शामिल थे जो नीवें डाली थी उन्ह मेहरबानी करके नष्ट न करो। तुमने जो रास्ता अपनाया है उस पर झगडे और मुसीबत के अलावा और कुछ नही है। तुम्हें उत्तराधिकार म एक महान् परम्परा उदात्त आदश और एक काम करता हुआ जनतन्त्र मिला है। अपने पीछे इन सबके टूटे हुए खण्डहर न छोड जाना। इन सब चीजो को फिर से जुटाकर बनाने मे बहुत समय लग जायेगा। इसे फिर से जुटाकर खडा कर दिया जायेगा, इसमे तो मुझे तनिक भी सन्देह नही है। जिस जनता ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से टक्कर ली है और उसे नीचा दिखाया है वह निरकुशता के कलक और अपमान को हमेशा के लिए स्वीकार नही कर सकती। मनुष्य की आत्मा कभी परास्त नही हो सकती, उसे चाहे जितनी बुरी तरह क्यो न कुचला जाये। अपनी निजी डिक्टेटरशिप कायम करके तुमने उसे बहुत गहरा दफन कर दिया है। लेकिन वह अपनी कब्र से फिर उठेगी। रूस तक मे वह धीरे धीर उभर रही है।

"तुमने सामाजिक जनतन्त्र की बात की है। इन शब्दो से मन मे कितनी सुन्दर कल्पना उभरती है। लेकिन तुमने खुद पूर्वी और मध्यवर्ती यूरोप मे देखा है कि वास्तविकता कितनी कुरूप है। नगी तानाशाही और अन्त मे चलकर रूस का प्रभुत्व। मेहरबानी करके दया करके भारत को उस भयानक दुर्भाग्य की ओर मत ढकेलो।'

गिरफ्तारी के बाद जयप्रकाश को पहले सोना ले जाया गया और फिर दिल्ली की ऑल इण्डिया मेडिकल इन्स्टीच्यूट मे लाया गया, क्योकि वह बीमार थे। जल्द ही यह बात साफ तौर पर समझ म आ गयी कि उन्ह लम्बे अरसे तक अस्पताल मे रखने की जरूरत पडेगी। लेकिन दिल्ली इसके लिए मुनासिब जगह नही थी, वह हमेशा से अफवाहो का शहर रहा है और अब भी था। यह भेद कौन नहो जानता था कि जयप्रकाश आल इण्डिया मेडिकल इन्स्टीच्यूट मे है बाहर मदान मे उत्सुक लोगा की टोलियाँ जमा होने लगी थी।

उन्ह कही और ले जाना जरूरी था। उन्ह नजरबन्द रखने के लिए चडीगढ की पोस्ट-ग्रेजुएट इन्स्टीच्यूट को चुना गया। बसीलाल ने पहरेदारी के लिए कुछ चुने हुए पुलिसवालो का बन्दोबस्त कर दिया। जयप्रकाश को भाग निकलने का मौका नही दिया जा सकता था, जिस तरह वह 1942 मे भारत छोडो आन्दोलन के दौरान जेल से भाग निकले थे।

7) खेती के काम की कम से कम मजदूरी की दर पर फिर से विचार।
8) पचास लाख हेक्टेयर नयी ज़मीन पर सिंचाई का बन्दोबस्त और ज़मीन के नीचे के पानी को इस्तेमाल करने का राष्ट्रीय कार्यक्रम तैयार करना।
9) बिजली की पैदावार बढ़ाना।
10) हथकरघा क्षेत्र का विकास और जनता के इस्तेमाल के सस्ते कपड़े की क्वालिटी और उसकी सप्लाई में सुधार।
11) शहरी ज़मीन और आगे चलकर शहरी बन सकने वाली ज़मीन के समाजीकरण को लागू करना और खाली ज़मीन की मिल्कियत और कब्ज़े पर हदबन्दी लगाना।
12) अनाप शनाप खर्च करनेवालों के मान जायदाद की कीमत आँकने के लिए खास टुकड़ियों का इन्तज़ाम और टैक्स चोरी की रोकथाम और आर्थिक अपराध करने वालों पर झटपट मुकदमा चलाकर उन्हें ऐसी कड़ी सज़ाएँ देना कि दूसरे लोग वैसे अपराध करने से डरें।
13) स्मगलरों की जायदादें ज़ब्त करने के लिए खास कानून।
14) पूंजी लगाने के कायदे-कानून में नरमी और इंपोर्ट लाइसेंसों का बेजा इस्तेमाल करनेवालों के खिलाफ कारवाई।
15) उद्योगों की व्यवस्था में मजदूरों के भाग लेने के लिए नयी योजनाएँ।
16) ट्रकों बसों आदि के लिए राष्ट्रीय परमिट योजनाएँ।
17) मध्यम वर्ग के लोगों के लिए इनकम टैक्स में छूट—8,000 रुपये तक की आमदनी पर कोई टैक्स नहीं।
18) होस्टलों में विद्यार्थियों के लिए कन्ट्रोल के दामों पर उनकी जरूरत की चीज़ें।
19) कन्ट्रोल के दामों पर किताबें और लिखने पढ़ने का सामान।
20) रोजगार और ट्रेनिंग की सुविधाएँ बढ़ाने के लिए खासतौर पर समाज के कमज़ोर हिस्सों के लिए नयी अप्रेंटिसशिप योजना।

इससे कुछ ही महीने पहले दिल्ली से थोड़ी ही दूर पर नरौरा में उन्होंने बहुत कुछ ऐसा ही तमाशा किया था जब उन्होंने गरीबों को राहत दिलाने के उपाय करके जयप्रकाश की लहर को रोकने के लिए सभी मुख्यमंत्रियों कैबिनेट मंत्रियों प्रदेश कांग्रेस कमेटियों के अध्यक्षों को जुटाया था। उस वक्त उन्होंने कहा था कि जयप्रकाश के साथ उनके मतभेद असल में 'सामाजिक न्याय और आर्थिक स्वतन्त्रता की ओर हमारे समाज को और ज्यादा आगे बढ़ने से रोकने पर तुले हुए पसमाल स्वार्थी वर्गों का और सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में जो कुछ हासिल किया गया है उसे पक्का करने और अपने चुने हुए रास्तों पर आगे बढ़ते जाने के लिए कमर बाँधे हुए मेहनतकश जनता का टकराव है।

श्रीमती गांधी अपने राजनीतिक दाँव-पेंच के लिए एक आर्थिक आड़ ज़रूर रखती थीं। 1969 में जब कांग्रेस में फूट पड़ी थी तब भी उन्होंने यही किया था, और 1971 में समय से पहले लोकसभा के चुनाव के वक्त भी उन्होंने यही किया था और दोनों ही बार वह अपनी इस चाल में कामयाब रही थीं। जनता हमेशा यही समझती रही कि उनकी लड़ाई अपनी गद्दी को बचाये रखने के लिए नहीं बल्कि देश की आर्थिक भलाई के लिए है। इस बार भी उनको यकीन था कि सरकार पर अपना कब्ज़ा बनाये रखने की उनकी चाल बीस-सूत्री कार्यक्रम की आड़ में छिप जायगी। और उस समय तो उन्हें कामयाबी मिलती दिखायी दे रही थी।

प्रचार प्रसार के सभी माध्यमो म और हर सरकारी ग़ैर सरकारी बहस म जहाँ देखो बीस सूत्री कायक्रम की ही चचा थी। हर जगह बडे बडे बोड लगाये गये थे और पोस्टर चिपकाये गये थे जिन पर कायक्रम के बीस सूत्र लिखे होते थे और साथ म श्रीमती गाधी की एक बडी सी तसवीर होती थी। बोड जितना ही बडा होता था, लोगो पर उसका उतना ही अच्छा असर पडता था। आखिरकार उन्होने खुद ही इन बोर्डों को हटवा देने का हुक्म दिया क्योकि उनके करीबी दोस्तो न उन्ह बताया कि इन बोर्डों की तसवीरो म आप 'भयानक' लगती हैं।

हर आदमी का कतव्य था कि वह बीस सूत्री कायक्रम के अनुसार काम कर, या कम-स-कम जताये तो जरूर कि वह ऐसा कर रहा है। दिल्ली प्रशासन न सभी व्यापारियो और दूकानदारो को आदेश द दिये कि वे अपना स्टाक और कीमतें तख्ती पर लिखकर दूकान म लगायें। उन्ह लगभग हर चीज पर दाम की पर्ची लगानी पडती थी। इस आदेश का सहारा लेकर अधिकारी बडी आसानी म उन दूकानदारो को सजा द सकते थे जो काग्रेस की, और बाद मे युवक काग्रेस की तिजोरियो भरन क लिए पैसा नही देते थे या जो सरकार के बताये हुए ढग स सोचन स इकार करत थ।

सजय न हक्सर से अपना हिसाब चुकान क लिए दाम की पर्चियो लगान के हुक्म का सहारा लिया। हक्सर के 80 बरस बूढ़ चाचा, जो नई दिल्ली म कनाटप्लेस के डिपाटमेंटल स्टोर पडित ब्रदस के मालिक थ, गिरफ्तार कर लिये गये क्योकि उनकी दूकान म किसी छोटी-सी चीज पर दाम की पर्ची नही लगी हुई थी और उन्हे तीन दिन तक जेल मे रखा गया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थानीय नेता अरुणा आसफअली को जाकर श्रीमती गाधी का समझाना बुझाना पडा कि वह बीच मे पडकर हक्सर के चाचा को छुडवा दें।

हक्सर की ईमानदारी की दाद देनी पडती है कि श्रीमती गाधी की सरकार की तरफ उनकी वफादारी म कभी फक नही आन पाया। लकिन यह तो सजय का, और यो तो सरकार का भी, काम करन का तरीका ही था—लोगो के दिल म दहशत बिठा देना। इतने कुकम हो रहे थे कि श्रीमती गाधी न भी अपना अलग ही एक काम करने का ढग निकाल लिया था, वह इस तरह की सारी बातो के बारे म अनजान बन जाती थीं, हालाँकि उन्हे अपने बेटे और उसके गुर्गों की ज्यादातर हरकतो का पहले स पता रहता था।

चीनी और कपडे की मिलो को सरकार के हाथो म लेने के बारे म बरुआ न जो सुझाव रखा था उसकी चर्चा चारो तरफ हो गयी थी। श्रीमती गाधी न एक बयान जारी किया कि कारखानो को अपने हाथ म लेन या कोई नये कडे कट्रोल लगान की सरकार की कोई योजना नही है।

श्रीमती गाधी न कहा कि मीसा का इस्तेमाल स्मगलरो को पकडने के लिए किया जायगा। सचमुच उनका कारोबार सारी दुनिया म फैला हुआ था और उनका सबस बडा अड्डा दुबाई मे था। वहाँ की बीमा कम्पनियो न स्मगलिंग के लिए पैसा देने और माल के पकडे जान या खो जाने क खतरे का बीमा करने के लिए वहाँ अपने दफ्तर खोल लिये थ। समुद्र के रास्त सडक के रास्त और हवाई जहाजो से आवाजाही का एक पूरा जाल फैला लिया गया था। गुजरात से लेकर केरल तक समुद्र के किनारे किनारे कितनी ही ऐसी पहचानी हुई जगह थी जहाँ स्मगलिंग का माल उतारा जाता था और वहाँ स सारे देश म खपत के केद्रो म भेज दिया जाता था। मद्रास स्मगलरो का बहुत बडा अड्डा था और बगलौर उनके लिए बिना किसी खतरे के जा छिपने के लिए बहुत अच्छी जगह थी, जहाँ वे एक दूसरे से मिल सकते थे और एक दूसरे से

सलाह मशविरा कर सकते थे। उनके अपने गोदाम थे, अपने बाजार थे, वायरलेस से खबरें भेजने का अपना बन्दोबस्त था—और उन लोगो के व्यवहार में कुछ बँधे हुए कायदे कानून थे। स्मगलरों और काले पैसे का धन्धा करनेवालो के बीच सीधा सम्पर्क था।

स्मगलरो के खिलाफ जो मुहिम चलायी जा रही थी उसकी सभी तारीफ करते थे। लेकिन श्रीमती गांधी ने खुद ही सितम्बर 1974 मे अपने एक मंत्री के० आर० गणेश को, जो बहुत अच्छा काम कर रहे थे, हटा दिया था। गणेश का कहना यह है कि ज्यादातर चोटी के स्मगलरो की राजनीति मे बडे-बडे लोगो तक पहुंच है, और उनमे से कुछ ने तो श्रीमती गांधी और उनके मुख्यमन्त्रियो के साथ किसी तरह अपनी तसवीरें भी खिचवा ली थी। गणेश को याद है कि पूरक अनुदान की मंजूरी पर बहस के दौरान, सोशलिस्ट संसद सदस्य मधुलिमये इस बात पर अड गये कि उन्हे चोटी के स्मगलरो के नाम बताये जायें। शाम का वक्त था, काफी देर हो चुकी थी। मुश्किल से गिनती के कुछ सदस्य सदन मे मौजूद थे। मैं बोल रहा था। इतने मे अचानक प्रधानमंत्री सदन मे आयी। मैंने अपना जवाब वही रोक दिया।

'कुछ समय बाद वही सवाल सदन मे फिर उठाया गया और एक बार फिर स्मगलरो के नाम बताने की लगातार मांग की गयी। मैंने तीन नाम झटपट बता दिये—बखिया, यूसुफ पटेल और हाजी मस्तान।

"बाद मे प्रधानमंत्री के एक खास आदमी ने मुझे बताया कि मुझे इस तरह लोगो के नाम नही बताने चाहिए थे। अन्दाजा लगाइये कि स्मगलर कितने ताकतवर हो गये थे! कुछ दिन बाद, जब स्मगलरो के खिलाफ मुहिम पूरे जोरो पर थी मेरे पास प्रधानमंत्री का एक चार लाइन का खत आया जिसमे मेरा ध्यान अहमदाबाद के किसी आदमी की इस 'शिकायत' की तरफ दिलाया गया था कि मंत्री विदेशी सिगरेट लाइटर इस्तेमाल करते हैं।

"जिस मुस्तैदी के साथ प्रधानमंत्री ने अहमदाबाद के किसी आदमी की यह शिकायत मेरे पास तक पहुँचा दी थी उसके बारे में कम से कम इतना तो कहना ही पडेगा कि ऐसा आमतौर पर नही होता था। इशारा मैं समझ गया।

"इस बात से इन्दिरा गांधी की एक और फटकार मुझे याद आ गयी जब उन्होंने कहा था, 'हर आदमी यही साबित करना चाहता है कि दूध का धोया और बेकसूर है, बेईमान अकेली मैं हूँ। इस तरह पार्टी कैसे चल सकती है?'"

उस वक्त श्रीमती गांधी की मजबूरियाँ कुछ भी रही हो लेकिन स्मगलरो के खिलाफ कारवाई अब बडी बेरहमी से की जा रही थी। ढेरों काला पैसा भी निकलवाया गया था और आर्थिक अपराधो के लिए कई व्यापारी भी मीसा मे पकडे गये थे। लेकिन काले पैसे का धन्धा करनेवाले सभी लोग नही पकडे गये थे खास तौर पर चोटी के लोग। और यह बात किससे छिपी थी कि किस तरह कई कांग्रेसिया आर्थिक अपराधियो को पैरोल पर छुडाने की कोशिश करके और अफसरो की बदली कराके या उनकी तरक्की दिलाकर या व्यापारियो का ठेके दिलाकर ढेरो दौलत बटोरी थी।

बीस सूत्री कार्यक्रम की बुनियाद पर शासक वर्ग के बडे-बडे नेता खुलकर राजनीतिक लफ्फाजी भी कर सकते थे। वायदो का तो कोई अन्त ही नही था—अपनी जरूरत की हर चीज हम खुद पैदा करेंगे गरीबो की हालत सुधरेगी जमीन का नये सिरे से बँटवारा होगा और न जाने क्या क्या। इन वादो की कसम हर राजनीतिक पार्टी खाती थी लेकिन उनको पूरा करना दूसरी बात थी। मिसाल के लिए जमीन के बँटवारे के बारे मे कानून तो न जाने कब का बन चुका था लेकिन केरल को छोडकर,

जहा पहले माक्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की और फिर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की मिली जुली सरकार के जमाने मे कुछ किया गया, किसी ने इस कानून को लागू करने की कोशिश भी नही की। दस साल के अन्दर, 1964 से 1974 के बीच दरिद्रता की सीमा से भी नीचे जिन्दगी बसर करनेवाले लोगो की सख्या 48 प्रतिशत से बढकर 66 प्रतिशत हो गयी थी। देहातो मे अब भी ऊँच नीच की वही सीढी बनी हुई थी—जमीदार और कमिया (काम करनेवाले), धनवानो और कगालो के बीच की खाई और चौडी हो गयी थी और दिन-ब दिन चौडी होनी जा रही थी।

इस नये कायक्रम मे काई बात नयी नही थी। एक राज्य ने कहा, 'हमे पैसा दीजिये, सब कुछ ठीक हो जायेगा, खाली बातें करने से क्या फायदा।" और तमिलनाडु का जवाब उनके हमेशा के ढग का ही था—यह राज्य बीस सूत्रो मे से उन्नीस पहले ही पूरे कर चुका था। दूसरे राज्य भी इसी तरह के दावे करने मे पीछे नही थे, लेकिन तमिलनाडु के लिए, जहाँ डी० एम० के० की सरकार थी, यह बात कहना श्रीमती गाधी की सरकार की नजरो म न सिफ ढिठाई की बल्कि उसमे भी बदतर बात थी।

यह कायक्रम तो लोगों को लालच देने के लिए था, श्रीमती गाधी के हाथ मे डडा भी था। भारत सरकार ने 4 जुलाई को 26 राजनीतिक सगठनो को गर कानूनी ठहरा दिया, जिनम से सिफ चार ही ऐसे थे जिनका कुछ असर था। ये चार सगठन थे हिंदू धम का फिर से बालबाला चाहनेवाली लडाकू सस्था राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ (आर० एस० एस०), मुस्लिम धार्मिक सगठन जमाअते इस्लामिए हिन्द, हिंदू कट्टरपथियो का एक सम्प्रदाय आनन्द मार्ग और नक्सलवादी (चरम वामपथी)। उन पर यह आरोप लगाया गया था कि "उनकी हरकतें भीतरी सुरक्षा, सावजनिक रक्षा और सावजनिक शाति बनाये रखने के रास्ते मे बाधा हैं।' बाद मे 6 अगस्त को अलग राज्य की माँग करनेवाले मीजो नेशनल फ्रट को भी इन गर-कानूनी सगठनो की फेहरिस्त मे जोड दिया गया।

गृहमत्री ने कहा कि जिन पार्टिया को गर कानूनी ठहराया गया है उनमे से कुछ साम्प्रदायिक पार्टियाँ हैं। लेकिन कुछ ही साल पहले कानून मत्रालय ने कहा था कि इस तरह की साम्प्रदायिकता की कोई कानूनी परिभाषा नही दी जा सकती। उस वक्त यह सोचा गया था कि साम्प्रदायिकता के खिलाफ राजनीतिक लडाई लडना बेहतर होगा लेकिन ऐसा लगता था कि यह नीति बदल गयी थी। ऐसे लोगो के लिए जो आसानी से साम्प्रदायिकता के आरोप पर यकीन न करते, यह कहा गया कि इन पार्टियो का 'विदेशी ताकतो से सम्बन्ध है।

इन पार्टियो पर पाबन्दी लगा देने से सरकार को मनमानी गिरफ्तारियाँ करने का मौका मिल गया। जिन लोगो को आर० एस० एस० या जमाअत से कुछ लेना-देना नही था, या जो कई साल म कोई काम नही कर रहे थे, उन्हे भी पकड लिया गया।

शेख अब्दुल्ला जिन्होने भारत सरकार से एक समझौते के बाद जम्मू-कश्मीर मे अपनी सरकार बनायी थी, इमर्जेंसी लागू किये जाने के खिलाफ थे। मुख्यमत्री की हैसियत से वह या तो यह कह देते थे कि जम्मू कश्मीर मे इसे इसलिए लागू करना पडा कि यह राज्य भी भारत का हिस्सा है, या फिर वह यह सफाई देते थे कि सविधान में इमर्जेंसी लागू करने की गुजाइश रखी गयी है।

मेरे साथ 30 सितम्बर को एक इटरव्यू के दौरान उन्होने कहा था कि 'जम्हूरियत को फिर सही रास्ते पर लाने के लिए दोनो पक्षो को आपस मे बातचीत करनी चाहिए। लेकिन अकेले मे वह दिल्ली की 'एक आदमी की सरकार' को बहुत बुरा-

भला कहते थे । वह विपक्ष की भी आलोचना करते थे कि 'बिना किसी तैयारी के वह हद से आगे निकल गया ।

शेख साहब ने गैर-कानूनी सगठनो के नेताओ को गिरफ्तार तो करवाया लेकिन कुछ दिन बाद उन्हे परोल पर रिहा करवा दिया । ये गैर-कानूनी सगठन जो स्कूल वगरह चलाते थे उन्हें भी बन्द कर दिया गया ।

शाम को निकलनेवाले दैनिक अखबार वादिए कश्मीर पर भी इमर्जेंसी के दौरान पाबन्दी लगा दी गयी । सेंसरशिप के मामले मे दूसरी जगहो के मुकाबले कुछ नरमी बरती जाती थी, यहाँ तक कि कभी कभी केन्द्रीय सरकार के सेंसर को कुछ अखबारो की 'गलतियाँ' राज्य के अधिकारियो को बतानी पडती थी ।

श्रीमती गाधी के कुछ करीबी लोगो ने शेख साहब पर दबाव डाला कि वह जयप्रकाश की निन्दा करें लेकिन उन्होने ऐसा करने से साफ इकार कर दिया । एक बार तो उन्होने एक पब्लिक मीटिंग म इस बात का जिक्र भी किया लेकिन उनकी तकरीर की रिपोर्ट केन्द्रीय सरकार के सेंसर ने छपने ही नही दी ।

श्रीमती गाधी आर० एस० एस० के मेम्बरो पर शिकजा कसना चाहती थी, लेकिन उस वक्त तक जो लोग पकडे गये थे वे तो उनका एक बहुत ही छोटा हिस्सा थे । इस पाबन्दी से कोई खास फायदा नही हुआ, ज्यादातर कार्यकर्त्ता अण्डरग्राउण्ड चले गये और उन्होंने जनता की इस उम्मीद को सहारा दिये रहने के लिए कि एक न एक दिन तो इस सरकार का तख्ता उलटेगा ही, थोडा-बहुत जितना भी बन पडा विरोध आन्दोलन सगठित करने मे मदद दी ।

अण्डरग्राउण्ड सगठन बनाने मे कुछ समय लगा । दो टोलियाँ थी, एक सोशलिस्ट नेता जार्ज फर्नांडीज की अगुवाई मे और दूसरी जनसघ के नानाजी देशमुख की अगुवाई म । दोनो के बीच थोडा बहुत तालमेल भी था लेकिन ज्यादा जोर थोडा-बहुत' पर था । अपनी तरफ से इन दोनो ही ने उस ताकत के खिलाफ, जिसे 'भारतीय फासिस्टो और रूसिया का गठजोड' कहा गया था, सत्याग्रह आन्दोलन छेडने के लिए हिदायतें जारी की । आठ पेज का एक साइक्लोस्टाइल अखबार निकाला गया जिस पर यह हिदायत लिखी रहती थी कि पढिये और दूसरो को पढाइये । इसमे सभी राजनीतिक विचारो के नेताओ से अपील की गयी थी कि वे अपने मतभेदो को भुलाकर 'भारत मे फिर से जनतन्त्र की स्थापना के सघर्ष के लिए एक हो जायें । इसमे विपक्ष या भी आगे चलकर चेतावनी दी गयी थी कि 'विचारधाराओ पर बहस या नेताओ के झगडो का यह समय नही है । हमारी एक ही मजिल है और वह है फासिज्म को हराना और उस जनतन्त्र को फिर से कायम करना जिसमे सभी को बुनियादी स्वतन्त्रताएँ हासिल रहें और कई राजनीतिक सस्थाएँ एक साथ काम कर सकें । इस अण्डरग्राउण्ड अखबार म रूस के साथ भारत के गहरे सम्बन्धो की कडी आलोचना की गयी थी 'रूसिया को जिन्होंने सबसे पहले भारत म फासिस्ट व्यवस्था का स्वागत किया था इस बात मे भी गहरी दिलचस्पी है कि भारत एक कगाल देश बना रहे जिस काम को श्रीमती गाधी बडी बेरहमी और मुस्तैदी के साथ पूरा कर रही हैं ।'

अण्डरग्राउण्ड सगठन ने एक खुफिया रेडियो स्टेशन भी कायम करने का वादा किया था और यह भी इशारा किया गया था कि उसका ट्रासमीटर 'यूरोप के किसी देश म पडा हुआ है ।' लेकिन यह रेडियो स्टेशन कभी कायम नही हो सका ।

जार्ज फर्नांडीज ने खुफिया तौर पर बाँटे गये एक पर्चे म यह सुझाव दिया कि खुफिया साहित्य तैयार करके बाँटा जाय, कानाफूसी की मुहिम चलायी जाय, हडतालें और 'बन्द' सगठित किये जायें सरकार के काम काज को ठप्प कर दिया जाये और

पुलिस और फौज के लोगो के साथ मेल जोल बढाया जाये। जार्ज फर्नांडीज ने कहा कि यह 'सविधान को अपवित्र करने, फासिस्ट डिक्टेटरशिप कायम करने, देश मे कानून का शासन खत्म करने मे हाथ बटाना" नही चाहते।

नानाजी देशमुख ने अन्दर ही अन्दर विरोध करते रहने की भावना को बढावा देने के लिए पर्चे बाँटने के लिए छोटी छोटी टोलियाँ बनाने और नारे लगाने की मुहिम शुरू करने की पैरवी की।

अण्डरग्राउण्ड सगठना की कारवाइयाँ बहुत सीमित थी फिर भी पुलिस को लगातार चौकस रहना पडता था और श्रीमती गाधी को चिन्ता लगी रहती थी। इन हलचला मे तालमेल बिठाने मे जयप्रकाश के सक्रेटरी राधाकृष्णन ने हाथ बटाया। जो अलग अलग सगठन सत्याग्रह शुरू करना चाहते थे उन्ह एक लडी मे पिरोने के लिए उन्होंने कई राज्या का दौरा किया। लेकिन इससे पहले कि बाहर कोई सगठन कायम हो पाता वह गिरफ्तार कर लिये गये। सबस बडा धक्का दक्षिणी दिल्ली की एक बस्ती पर अचानक छाप के दौरान नानाजी की गिरफ्तारी से पहुँचा। उनकी मुहिम का नाम 'ऑपरेशन टक ओवर' (सत्ता पर अधिकार) था, लेकिन उनके बाद जब सगठन काग्रेस के नेता रवीन्द्र वर्मा ने मोर्चा सँभाला तो उन्होंने उसका नाम 'आफताब' (सूरज) रखा।

इस वक्त तक 60 000 लोग गिरफ्तार किये जा चुके थे। गिरफ्तार किये जाने वाला म जयपुर की राजमाता गायत्री देवी और ग्वालियर की राजमाता भी थी। दोनो को दिल्ली के तिहाड जेल म जिस वाड मे मैं था उसी से मिले हुए वाड मे कैद कर दिया गया। गायत्री दवी के खिलाफ जो इल्ज़ाम था[1] वह विदेशी मुद्रा का झूठा हिसाब देने के बारे म था। दोनो राजमाताएँ जनाने वाड मे रडिया और चार उचक्की औरतो के साथ रखी गयी थी, जिनके बारे मे गायत्री देवी ने बाद मे कहा कि हर तरफ वही दिखायी दती थी, बिलकुल ऐसा लगता था कि बीच बाजार मे लडाका औरतो के बीच रह रहे हैं।" गायत्री देवी ने कहा 'फ्रास से मेरे एक दोस्त ने लिखकर पूछा कि मैं *तोहफे मे क्या चीज लेना चाहूँगी। जिसके जवाब मे मैंने कहा कि कान म ठूसन का* जो मोम वहाँ मिलता है वह थोडा सा भेज दो।'

अकालिया ने पजाब मे 9 जुलाई से एक मोर्चा लगाया था जिसकी शुरुआत अमृतसर मे पाच अकालिया की गिरफ्तारी स हुई थी। इमर्जेंसी के ऐलान और जनतन्त्र का गला घोटे जाने के खिलाफ यह मोर्चा इमर्जेंसी के आखिर तक चलता रहा। लगभग 45 000 सिक्ख खुशी खुशी जेल चले गये। अकालियो के चोटी के नेता, जिनमे प्रकाशसिंह बादल और गुरचरनसिंह तोहरा भी थे, मीसा मे नजरबन्द कर दिये गये। श्रीमती गाधी न, जैसा कि उनका हमेशा का दस्तूर था, इस बार भी यही सोचा कि यह सारा आन्दोलन सिफ 'बदइन्तज़ामी' की वजह से जोर पकड रहा है। इसकी वजह से वह पजाब के मुख्यमत्री जैलसिंह से बहुत नाराज थी।

दूसरी जगहा पर भी लोगो को शुरू-शुरू मे धक्का लगा था और जो कुछ हो रहा था उस पर उन्ह किसी तरह यकीन नही आ रहा था लेकिन अब लोग धीरे धीरे खुलने लगे थे। ज्यादातर अखबार 'सही रास्ते पर आते जा रहे थे। लेकिन साथ ही विरोध की हलचल भी दिखायी देती थी। मुझे 26 जुलाई को गिरफ्तार किया गया।

1 गायत्री देवी ने श्रीमती गाधी को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने कहा कि अब मुझे राजनीति से कोई दिलचस्पी नहीं है और मैं बीस-सूत्री कार्यक्रम को मानती हूँ, जिसके बाद उन्हें परोल पर रिहा कर दिया गया।

गैर-सरकारी सदस्यों के सवालों, ध्यानाकर्षण प्रस्तावों या उनकी तरफ से सुझाये गये किसी और काम के लिए वक्त न दिया जाये।

विपक्ष के सदस्यों ने—उनमे से ज्यादातर तो नजरबंद थे—इस प्रस्ताव की धज्जियाँ उड़ा दी। मार्क्सवादी सदस्य सोमनाथ चटर्जी ने कहा कि इस तरह सारे-के-सारे नियमों को एक साथ उठाकर ताक पर नही रखा जा सकता। डी० एम० के० के सदस्य एरा सेजियान ने कहा कि सदन को इस बात का अधिकार तो है कि वह अपने काम काज की व्यवस्था जिस तरह की चाहे बना ले लेकिन फिर भी उसे कुछ कायदे-कानूनों को तो मानना ही पड़ेगा। मोहन धारिया ने कहा कि संसद को इस तरह काम करने का मौका दिया जाना चाहिए कि उसके काम में कुछ फायदा हो और कायदे कानून भी ऐसे होने चाहिए कि काम में रुकावट पड़ने के बजाय सुविधा हो। एक निर्दलीय सदस्य राओमा पी० सिक्वेरा ने कहा कि यह बात समझ में नही आयी कि गैर सरकारी सदस्यों की तरफ से पेश किये गये विधेयकों पर विचार करने से क्या इकार कर दिया गया है क्योंकि इन लोगों ने तो संसद के जरूरी काम में कभी कोई बाधा नही डाली। उन्होंने कहा कि संसद की बैठक कानून बनाने के लिए नहीं बल्कि देश में जो हालात हैं उन पर बहस करने के लिए हो रही है इमर्जेंसी लागू होने के बाद विपक्ष की हर पार्टी के नेता गिरफ्तार किये गये हैं। संसद के कितने ही सदस्य न सिर्फ गिरफ्तार कर लिये गये थे बल्कि उन्हें बार-बार एक जेल से दूसरे जेल भेजा जा रहा था। सरकार का साथ देने वाली भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संसद सदस्य इन्द्रजीत गुप्ता ने भी कहा कि सरकार का प्रस्ताव तो बस एक खानापूरी है क्योंकि आदेश तो पहले ही जारी किये जा चुके हैं।

संसदीय मामलात के मंत्री के० रघुरमैया ने इसके जवाब में यह दलील दी कि सवाल-जवाब का घंटा खत्म कर देने का मतलब किसी भी तरह संसद का अपमान करना नही है। यह तो एक तरह की ऐसी पाबन्दी है जो सदन खुद अपने ऊपर लगा रहा है।

विपक्ष के विरोध के बावजूद यह प्रस्ताव लोकसभा में 301 के खिलाफ 76 वोटों में और राज्यसभा मे 147 के खिलाफ 32 वोटों से पास हो गया। इसके बाद दोनों सदनों में इमर्जेंसी की घोषणा पर संसद की मजूरी लेने के लिए एक प्रस्ताव पेश किया गया।

श्रीमती गांधी ने जगजीवनराम से यह प्रस्ताव पेश करने को कहा। उनके मन मे जो भी खींचातानी चल रही हो पर उनके भाषण में उसकी कोई झलक दिखायी नही दी। उन्होंने कहा कि 1967 के बाद से कुछ राजनीतिक पार्टियां सरकार की साख को गिराने के लिए और असंतोष की हालत पैदा करने के लिए लगातार हमले कर रही थी जो जनतन्त्र के लिए एक खतरा बनते जा रहे थे। 1969 का साल हमारे देश के इतिहास मे एक यादगार का साल था। उस साल कांग्रेस ने ही नही बल्कि पूरे देश ने तोड़ फोड़ मचाने वाली शक्तियों के खिलाफ संघर्ष करने के बारे में अन्दरूनी दुविधा को खत्म कर देने का फैसला कर लिया। 1971 के आम चुनाव के बाद विपक्ष ने चार पार्टियों का संयुक्त मोर्चा बनाने की कोशिश की और उसके बाद कई राज्यों मे, खास तौर पर गुजरात और बिहार से लूट मार और आग लगाने की बहुत सी खबरें आयी। विधानसभाओं के लिए बाकायदा चुने गये सदस्यों को उनका राजनीतिक काम काज करने से रोकने के लिए संघर्ष समितियां बनायी गयी। सरकार काम काज ठप्प करके उसे इस्तीफा देने पर मजबूर करने के लिए एक और कोशिश रेलवे हड़ताल के जरिये की गयी। देश की ऐसी शोचनीय और असाधारण स्थिति को देखते हुए इमर्जेंसी का

अखबारों पर से सेंसरशिप हटाने की माँग करने और 'हर इंसान की आज़ादी और स्वतंत्रता के हक में आवाज़ उठाने' के जुर्म में आठ गांधीवादी गिरफ्तार कर लिये गये जिनमें भीमसेन सच्चर भी थे जो गवर्नर और पंजाब के मुख्यमंत्री रह चुके थे। उन्होंने 7 अगस्त को प्रधानमंत्री को भी एक चिट्ठी लिखी थी, जिसमें उन्होंने कहा था कि 'अगर आपको हमारे विचार गलत भी लगें तो भी हम उन्हें व्यक्त करने और सब जगह जमा होने के अधिकार और अखबारों की आज़ादी की कुर्बानी नहीं करेंगे। इस बात पर बहस हो सकती है कि सरकार ने अपने हाथ में जो इतने गैर-मामूली अधिकार ले लिये हैं उनसे क्या भलाई है और क्या बुराई।

लेकिन ऐसी मिसालें इक्का-दुक्का ही थीं। डटकर टक्कर लेने की भावना कमजोर पड़ती जा रही थी। कम-से-कम पुराने लोगों में मन ही मन अन्दर ही अन्दर गुस्सा सुलग रहा हो लेकिन किसी में खुलकर सरकार के खिलाफ आवाज़ उठाने की हिम्मत नहीं थी। लोगों के दिल में डर बैठ गया था।

सबसे ज्यादा निराशा पढ़े-लिखे खाते-पीते लोगों के रवैये से होती थी। इनमें हमारे सबसे बड़े बुद्धिजीवी थे—स्कूलों कॉलेजों में पढ़ानेवाले, कानून के जानकार, सरकारी नौकर, डॉक्टर, वकील वगैरह—लेकिन इनमें से ज्यादातर ने चुप्पी साधे रहने में ही अक्लमंदी समझी। कुछ लोगों ने तो इमरजेंसी की खूबियाँ भी गिनायीं क्योंकि "इमरजेंसी लागू होने से पहले ज़िन्दगी में हर वक्त कोई-न-कोई खतरा लगा रहता था, हड़तालें, बन्द और धरने आये दिन की बात हो गये थे।' अब उन्हें चारों तरफ 'अमन चैन' नजर आता था।

कुछ लोग यह दलील भी देते थे, 'हमें हमेशा किसी मालिक की ज़रूरत रही है जो हमसे काम करवाये। पहले मुगल थे, फिर अंग्रेज आये। अब श्रीमती गांधी हैं। इसमें ऐसी बुरी क्या बात है?'

अफसरों को लोगों के इस रवैये पर कोई ताज्जुब नहीं हुआ। उन्होंने एक दिन बहुत रात गये अपनी टोली की मीटिंग में कहा, 'अगर उनके ऐश आराम पर और उनकी नौकरियों पर कोई आँच न आये तो ये लोग बदतर से बदतर पाबन्दियों को सही साबित करने का कोई रास्ता निकाल लेंगे।'

कॉलेजों यूनिवर्सिटियों के प्रोफेसर, बुद्धिजीवी लोग, डॉक्टर और वकील भी अपनी खास सुविधाओं और अधिकारों की बुनियाद पर समाज को सिर्फ खाने पीने और मौज उड़ाने की ज़िन्दगी के साँचे में ढाल लेने में नौकरशाहों, व्यापारियों और सेठ-साहूकारों से किसी तरह पीछे नहीं थे।

जबकि सारे देश में भय छाया हुआ था, संसद की बैठक कराने के लिए इससे अच्छा वक्त क्या हो सकता था। श्रीमती गांधी ने सोचा इस तरह मेरे हाथ और मज़बूत हो जायेंगे। संसद तो इमरजेंसी पर अपनी मुहर लगा ही देगी और इससे भारत में और विदेशों में उसे एक कानूनी हैसियत मिल जायेगी। उन्होंने 21 जुलाई 1975 को संसद की बैठक कराने का फैसला किया।

लेकिन वह नहीं चाहती थी कि बहुत ज्यादा अटपटे सवाल पूछे जायें। सवाल जवाब का घंटा खत्म कर देना ही ठीक रहेगा। वह पहले भी कई बार अपने मंत्रि-मण्डल के साथियों से कह चुकी थीं कि संसद की बैठक इतनी लम्बी नहीं होनी चाहिए और उसके काम करने के कायदे कानूनों को भी इस तरह बदल दिया जाना चाहिए कि मंत्री और सरकारी विभाग बहसों और सवालों के सिलसिले में इतना वक्त खराब करने के बजाय कुछ ठोस काम कर सकें। सरकार की ओर से एक प्रस्ताव रखा गया कि संसद की बैठक में सिर्फ ज़रूरी और महत्त्वपूर्ण सरकारी काम काज निपटाया जाये,

गैर-सरकारी सदस्यों के सवालों, ध्यानाकर्षण प्रस्तावों या उनकी तरफ से सुझाये गये किसी और काम के लिए वक्त न दिया जाये।

विपक्ष के सदस्यों ने—उनमें से ज्यादातर तो नजरबन्द थे—इस प्रस्ताव की धज्जियाँ उड़ा दीं। मार्क्सवादी सदस्य सोमनाथ चटर्जी ने कहा कि इस तरह सारे-के-सारे नियमों को एक साथ उठाकर ताक पर नहीं रखा जा सकता। डी० एम० के० के सदस्य एरा सेजियान ने कहा कि सदन को इस बात का अधिकार तो है कि वह अपने कामकाज की व्यवस्था जिस तरह की चाहे बना ले लेकिन फिर भी उसे कुछ कायदे-कानूनों का तो मानना ही पड़ेगा। मोहन धारिया ने कहा कि संसद को इस तरह काम करने का मौका दिया जाना चाहिए कि उसके काम में कुछ फायदा हो और कायदे कानून भी ऐसे होने चाहिए कि काम में रुकावट पड़ने के बजाय सुविधा हो। एक निर्दलीय सदस्य राफ्रोमो पी० मिक्वेरा ने कहा कि यह बात समझ में नहीं आयी कि गैर सरकारी सदस्यों की तरफ से पेश किये गये विधेयकों पर विचार करने से क्या इन्कार कर दिया गया है क्योंकि इन लोगों ने तो संसद के जरूरी काम में कभी कोई बाधा नहीं डाली। उन्होंने कहा कि संसद की बैठक कानून बनाने के लिए नहीं बल्कि देश में जो हालात हैं उन पर बहस करने के लिए हो रही है इमर्जेंसी लागू होने के बाद विपक्ष की हर पार्टी के नेता गिरफ्तार किये गये हैं। संसद के कितने ही सदस्य न सिर्फ गिरफ्तार कर लिये गये थे बल्कि उन्हें बार-बार एक जेल से दूसरे जेल भेजा जा रहा था। सरकार का साथ देने वाली भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संसद सदस्य इन्द्रजीत गुप्ता ने भी कहा कि सरकार का प्रस्ताव तो बस एक खानापूरी है क्योंकि आदेश तो पहले ही जारी किये जा चुके हैं।

संसदीय मामलात के मंत्री के० रघुरमैया ने इसके जवाब में यह दलील दी कि सवाल-जवाब का घंटा खत्म कर देने का मतलब किसी भी तरह संसद का अपमान करना नहीं है। यह तो एक तरह की ऐसी पाबन्दी है जो सदन खुद अपने ऊपर लगा रहा है।

विपक्ष के विरोध के बावजूद यह प्रस्ताव लोकसभा में 301 के खिलाफ 76 वोटों से और राज्यसभा में 147 के खिलाफ 32 वोटों से पास हो गया। इसके बाद दोनों सदनों में इमर्जेंसी की घोषणा पर संसद की मंजूरी लेने के लिए एक प्रस्ताव पेश किया गया।

श्रीमती गांधी ने जगजीवनराम से यह प्रस्ताव पेश करने को कहा। उनके मन में जो भी खींचातानी चल रही हो पर उनके भाषण में उसकी कोई झलक दिखायी नहीं दी। उन्होंने कहा कि 1967 के बाद से कुछ राजनीतिक पार्टियाँ सरकार की साख को गिराने के लिए और असन्तोष की हालत पैदा करने के लिए लगातार हमले कर रही थीं, जो जनतन्त्र के लिए एक खतरा बनते जा रहे थे। 1969 का साल हमारे देश के इतिहास में एक यादगार का साल था। उस साल कांग्रेस ने ही नहीं बल्कि पूरे देश ने तोड़ फोड़ मचाने वाली ताकतों के खिलाफ संघर्ष करने के बारे में अन्दरूनी दुविधा को खत्म कर देने का फैसला कर लिया। 1971 के आम चुनाव के बाद विपक्ष ने चार पार्टियों का संयुक्त मोर्चा बनाने की कोशिश की और उसके बाद कई राज्यों में, खास तौर पर गुजरात और बिहार में लूट मार और आग लगाने की बहुत सी खबरें आयीं। विधानसभाओं के लिए बाकायदा चुने गये सदस्यों को उनका राजनीतिक काम काज करने से रोकने के लिए संघर्ष समितियाँ बनायी गयीं। सरकार काम काज ठप्प करके उसे इस्तीफा देने पर मजबूर करने के लिए एक और कोशिश रेलवे हड़ताल के जरिये की गयी। देश की ऐसी शोचनीय और असाधारण स्थिति को देखते हुए इमर्जेंसी का

ऐलान करना जरूरी हो गया।

काग्रेसी ससद सदस्यो ने अपने भाषणा मे लगभग यही सारी बातें कही। विपक्ष के नेताम्रा ने भी कुछ भाषण किये। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के ए० के० गोपालन ने कहा

अचानक यह घोषणा इसलिए नही की गयी कि भीतरी सुरक्षा के लिए सचमुच कोई खतरा पैदा हो गया था, बल्कि इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले की वजह स और गुजरात के चुनावा मे काग्रेस की हार की वजह से की गयी। मेरी पार्टी ने जो यह चेतावनी दी थी कि पिछले तीन साल से देश एक पार्टी की नादिरशाही डिक्टेटरशिप की तरफ बढ रहा है, वह अचानक इस नयी इमर्जेंसी के ऐलान से सही साबित हा गयी है। इसस ससदीय जनतन्त्र को हटा कर एक पार्टी की डिक्टेटरशिप कायम कर दी गयी है जिसमे सारी ताकत एक ही नता के हाथ मे आ गयी है। स्थिति मे अचानक मोड और जनतन्त्र से डिक्टेटरशिप मे यह अचानक परिवतन सत्ता शासक पार्टी के ही हाथ मे रखने के मकसद से सकट से बाहर निकलने का रास्ता खोजने के लिए लाया गया है।

राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ और आनन्द माग की तरफ जिन्हे अब गैर-कानूनी ठहरा दिया गया था, सरकार का रवैया उसकी सुविधा के हिसाब से समय समय पर बदलता रहा है। 1965 मे भारत पाक लडाई के दौरान उस समय के प्रधानमत्री लालबहादुर शास्त्री ने शहर की पहरेदारी के लिए सारी दिल्ली राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ को सौंप दी थी।

इमर्जेंसी लागू होन के बाद स सरकार ने जो कदम उठाये हैं उनसे पता चलता है कि हमले का रुख जनता के खिलाफ है। जनता को जो जनतान्त्रिक अधिकार मिले हुए थे उनका नामोनिशान मिटा दिया गया है। कानून की नजर मे भी अब सभी लोग बराबर नही रह गये हैं।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के हजारो कार्यकर्ताओ की अधाधुध गिरफ्तारी से अब यह धोखे की टट्टी भी बिलकुल हट गयी है कि इमर्जेंसी को सिर्फ दक्षिणपथी प्रतिक्रियावादी पार्टियो के खिलाफ इस्तेमाल किया जा रहा है। जनता के पीछे पुलिस छोड दी गयी है। केरल मे जेलो के अन्दर भी और बाहर भी कितने ही राजनीतिक नेताओ और कार्यकर्ताओ का बुरी तरह पीटा गया है। जनता म दहशत फलाने की कोशिशो की पूरी तरह निन्दा करना जरूरी है।

जो कोई भी धनवान स्वार्थी वर्गो के खिलाफ या जनतन्त्र की रक्षा के लिए सघष करने की हिम्मत करता है उसके सर पर गिरफ्तारी का खतरा मँडराता रहता है। य गिरफ्तारियाँ सिर्फ ट्रेड यूनियना और जनवादी आन्दोलना को कुचलने के लिए की जा रही हैं।

जयप्रकाश नारायण की अगुवाई म जो आन्दोलन चल रहा है उसने चुनावा म ताकत आजमाने की प्रधानमत्री की चुनौती स्वीकार कर ली थी। लेकिन गुजरात के चुनावो का नतीजा देखने के बाद प्रधानमत्री के ही हाथ पाँव फूल गये। सभी राज्या मे गुटबाजी की लडाइया का जो बाजार गम था वह बढ़ते-बढ़ते अब केन्द्र तक भी पहुँच गया है और यह बात किसी से छिपी नही है कि इलाहाबाद वाले फसले और सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बाद खुद काग्रेसी ससदीय दल म इन्दिरा गाधी के नेतृत्व को जबरदस्त चुनौती दी गयी। सत्ता पर काग्रेस की इजारेदारी के लिए और पार्टी म तथा सरकार म इन्दिरा

गांधी की स्थिति के लिए जो खतरा पैदा हो गया था, वही जनतन्त्र को कुचल देने की फौरी वजह थी।

इन्दिरा-कांग्रेस से निकाल दिये गये मोहन धारिया ने कहा

26 जून 1975 का दिन, जिस दिन इमर्जेंसी का ऐलान किया गया था, जिस दिन मेरे साथी, कितने ही राजनीतिक कार्यकर्त्ता और नेताओ को बडी बबरता से जेल के सीखचो के पीछे बन्द कर दिया गया था, जिस दिन अखबारो की आजादी और नागरिक स्वतन्त्रताओ को नौकरशाहो के हवाले कर दिया गया था, भारतीय जनतन्त्र के लिए और हमारे देश के इतिहास का सबसे मनहूस दिन माना जायेगा।

सबसे पहले शुरू मे ही मैं इस भयानक कारवाई की निन्दा करना चाहता हूँ। मुझे इसमे जरा भी शक नही है कि इसकी सारी जिम्मेदारी प्रधानमन्त्री और उनके कुछ साथियो पर है। मैं पूरे मन्त्रिमडल को दोषी इसलिए नही ठहरा रहा हूँ क्योकि मैं जानता हूँ कि कैबिनेट को भी इसकी खबर कारवाई शुरू कर दिये जाने के बाद दी गयी थी।

बाक़ायदा यह प्रचार किया जा रहा है कि विपक्ष की पार्टियो की वजह से, दक्षिणपथी प्रतिक्रियावादी ताकतो की वजह से, उग्रपन्थियो की वजह से आर्थिक कायक्रम पूरा नही किया जा सका। क्या यह बात सच है? आर्थिक कार्यक्रम को पूरा किया जा सकता था, 1971 के चुनाव के वक्त और 1972 मे भी हमारे मैनिफेस्टो मे जनता से जो वायदे किये गये थे उन्ह पूरा किया जा सकता था।

जनता का इतना भारी समथन पाने के बाद हमे किसने इन्ह पूरा करने स रोका था? हमारे ही पाँव लडखडा गये और हमारे देश म आज जो हालत है वह हमारी ही पदा की हुई है।

जहाँ तक आर्थिक कायक्रमो का सवाल है, यह कहा जा रहा है कि वे प्रधानमन्त्री के कायक्रम हैं। शासन करनेवाली पार्टी के कायक्रम, सरकार के कायक्रम—यह बात तो मेरी समझ म आती है। लेकिन आखिर किसी आदमी को इस तरह आसमान पर चढा देने का क्या मतलब है? यह भी हमार देश में डिक्टेटरशिप कायम करने का तरीका है। हमे इस बात को नहीं भूलना चाहिये।

आज हमारे देश की जो हालत है वह बिल्कुल साफ है। चूकि विपक्ष की पार्टियाँ ज्यादा गठे हुए ढग से एक-दूसरे के निकट आ गयी हैं अब वे सिफ पुराना गठजोड नही रह गयी है इसलिए शासक पार्टी का भविष्य अचानक खतरे मे पड गया है। गुजरात के चुनावो ने यह बात अच्छी तरह साबित कर दी है कि पसे ताकत और निजी साख सभा का पूरा जोर लगाने के बाद भी श्रीमती गाधी के लिए अब यह मुमकिन नही होगा कि वह जनतान्त्रिक चुनावो के जरिये सत्ता हासिल कर सकें या उसे अपने कब्जे मे रख सकें। जनता को यह यकीन दिलाने के लिए कि श्रीमती इन्दिरा गाधी का प्रधानमन्त्री बना रहना बिलकुल जरूरी है बडी बडी मीटिंगें और रैलियाँ जुटा-कर वफादारी की शानदार नुमाइशें की गयीं सुप्रीम कोट के फसले की तनिक भी परवाह किये बिना खुले शब्दो मे यह एलान किया गया भारत इन्दिरा है, और इन्दिरा ही भारत है। (India is Indira, and Indira is India)

डी० एम० के० के एरा सेजियान ने कहा

मैं ग़द्दार नहीं हूँ, मैं इसी देश का वासी हूँ। पिछले तरह-चौदह साल से मैं आप ही लोगों में से एक रहा हूँ। इस पक्ष के एक मम्बर के रूप में अपनी तुच्छ हैसियत के मुताबिक मैंने भी सदन की मदद करने की कोशिश की है और अपने संसदीय जनतन्त्र के काम में मदद दी है। मुमकिन है कि अवसर ऐसा हुआ हो कि हमारी राय वही न रही हो जो आपकी थी लेकिन एक बात के बारे में सभी की राय एक थी कि इस देश में और सदन में जनतन्त्र का काम चलता रहना चाहिये। उस वातावरण को अब क्या हो गया है? ऐसा क्या हो गया है कि हम लोग एक दूसरे के सामने मोर्चा जमाये हुए हैं, एक-दूसरे से टक्कर ले रहे हैं कि आप हम ग़द्दार कह रहे हैं और हम उन लोगों के पलड़े में रख रहे हैं जो राष्ट्र विरोधी हैं? अध्यक्ष महोदय, दो वर्ग बन गये हैं। जो लोग इमर्जेंसी के पक्ष में हैं उन्हें तो आर्थिक कार्यक्रमों का समर्थन करनेवालों के पलड़े में रखा जाता है, जो इमर्जेंसी के पक्ष में नहीं हैं उन्हें आर्थिक कार्यक्रमों के विरोधियों के पलड़े में रखा जाता है। मैं कार्यक्रम के बीस सूत्रों का समर्थन करता हूँ और अगर आप चाहें तो मैं उनमें एक-दो और जोड़ भी सकता हूँ।

जब बैंकों का कारोबार सरकार ने अपने हाथ में ले लिया था, जब रजवाड़ों का गुज़ारा बन्द कर दिया गया था तब हमने पूरी तरह उसका साथ दिया था। उस वक्त आपका बहुमत नहीं था—लगभग 532 मम्बरों में से आपके कुल 240 थे—फिर भी हमने आपका तख्ता नहीं उलटा। हमने इन्दिरा गांधी को गिरा देने की बात सोची भी नहीं। हमने पूरी तरह उनका साथ दिया क्योंकि हम विश्वास करते थे कि बैंकों का कारोबार सरकार के हाथों में ले लिये जाने का कार्यक्रम ठीक है रजवाड़ों का गुज़ारा बन्द कर दिये जाने का कार्यक्रम ठीक है। इस तरह, जब भी कोई अच्छा कार्यक्रम रखा गया, हमने उसका साथ दिया। फिर भी मैं बता दूं कि 1971 में जब मीसा का कानून सदन में पेश किया गया तो हमने उसका विरोध किया हालांकि हमारा दोस्ताना एका था।

हो सकता है कि जयप्रकाश ने फौज को भड़काया हो, मुमकिन है कि उन्होंने पुलिस को उकसाया हो और हो सकता है कि उन्होंने जो कुछ कहा उससे देश को नुक्सान पहुँचने का ख़तरा हो। इस बात में मैं पूरी तरह आपके साथ हूँ कि इस तरह के उकसावों की कड़ी सज़ा दी जानी चाहिये। आप उन्हें अदालत के कटघरे में खड़ा करके यह क्यों नहीं कहते कि उन्होंने राजद्रोह का सबसे गम्भीर अपराध किया है? सारी दुनिया के सामने उनको बेनकाब कीजिये, सबूत पेश कीजिये, यह बात सोलह आने साबित कर दीजिये कि उन्होंने एक भयानक अपराध किया है। वह कितने ही बड़े क्यों न हों अब तक उन्होंने कितने ही शानदार काम क्या न किये हों और वह कितने ही लोकप्रिय क्यों न हों अगर उन्होंने देश के खिलाफ देश की जनता के खिलाफ कुछ किया है तो उन्हें अदालत के सामने पेश कीजिये उनका अपराध साबित कीजिये और जो भी सज़ा हो सके उन्हें दीजिये। आज दिन भर हम सब लोग बस यही बात कहते रहे हैं। अगर कुछ संगठन ऐसे हैं जो इस देश की जनता के हितों के खिलाफ काम करते रहे हैं तो उनके खिलाफ कड़ी कारवाई कीजिये, कड़ी से-कड़ी कारवाई कीजिये, लेकिन कानूनी ढंग से, जनतान्त्रिक ढंग से। आज़ादी

हासिल करना बहुत मुश्किल होता है। अगर वह आपसे छिन जाय, तो उसे दुबारा हासिल करना और भी मुश्किल होता है। डडे के जोर से काम लेना कुछ बातो के लिए तो सहूलियत पदा कर सकता है, कभी कभी ऐसा लगता है कि यह मजिल तक पहुँचने का छोटा रास्ता है। कभी कभी तो मुझे ऐसा लगता है कि हम लोग यहा तक महसूस करते हैं कि पार्लियामेंट की जरूरत ही क्या है। जो फैसला एक आदमी कर सकता है उसके लिए क्या जरूरी है कि 500 आदमी यहा आयें? यही हिटलर भी सोचता था। यही कोशिश मुसोलिनी ने भी की थी। लेकिन उनके तरीके चल नही पाये क्योकि जनतत्र मे अगर सरकार कोई गलती करे तो उसकी रोकथाम की जा सकती है, लेकिन अगर डिक्टेटरशिप मे सरकार कोई गलती करे तो उसकी कोई रोकथाम नही की जा सकती, क्योकि जसा कि कहा जाता है, ससदीय जनतन्त्र अब भी सरकार चलाने का सबसे कम असतोषजनक तरीका है।

इसलिए दूसरे पक्ष से मेरी अपील यह है मुमकिन है मैं ऐसी अपील आपसे दुबारा न कर सकू। हो सकता है कि हममे से सभी को ऐसे ही अवसर फिर न मिल सकें—इस समय देश मे जो वातावरण है उसमे शायद वह न मिले। पहले तो हम लोग जो कुछ यहाँ कहते थे वह लिख लिया जाता था और बाहर लोग उसे कम से कम पढ तो सकते थे। लेकिन आज मैं जो कुछ यहा कह रहा हूँ वह यहाँ के मेरे मित्रो के लिए ही है। भले के लिए या बुरे के लिए भलाई के लिए या बुराई के लिए हम इस सदन के सदस्य रहे हैं। जनता ने हमे देश मे ससदीय जनतन्त्र चलाने के लिए चुना है। भले ही हम बहुत थोडे है, आपका बहुमत है। मैं बहुमत के फसले के आगे सर झुकाता हू लेकिन अगर वह सभी कायदे कानूनो को पूरा करने के बाद, अच्छी तरह बहस करने के बाद, दोनो पक्षो को ध्यान मे रखकर लिया गया हो। हो सकता है कि सौ बार मे से नब्बे बार हम गलत रास्ते पर हो लेकिन कम-से कम उन दस मौको का तो आप फायदा उठाइये जब हमने देश की भलाई की कोई बात कही हो।

बीसवी शताब्दी के एक सबसे अच्छे सविधान का, एक सबसे उदार सविधान का, वाइमार रिपब्लिक (जर्मनी) के सविधान का जो हाल हुआ उसके बाद अब जनतन्त्र सिर्फ सविधान का, सिर्फ कानून का सवाल नही रह गया है। हिटलर ने कोई ऐसा काम नही किया जो सविधान के खिलाफ रहा हो। सविधान मे जो कायदे-कानून बताये गये थे उन्हे भी उसने नहीं तोडा। लेकिन उसी सविधान का सहारा लेकर वहा डिक्टेटरशिप उभर आयी। यह बात कहकर मैं प्रधानमत्री को और हिटलर को एक ही पलडे मे नही रखना चाहता।

इसलिए मेरी अपील यह है अगर ससदीय जनतन्त्र से आपका मतलब उसकी बाहरी शक्ल सूरत से, सविधान मे बताये गये कायदे कानूनो से है, तो उससे इस देश मे जनतन्त्र नही चल सकता। सिर्फ बाहरी शक्ल सूरत से काम नही चलने का, यह भी देखना होगा उसके अन्दर असलियत क्या है उसकी भावना क्या है। विपक्ष को सिर्फ बर्दाश्त कर लेने की नही बल्कि उसके लिए सम्मान की भावना होनी चाहिए, विपक्ष की राय को सचमुच महत्त्व देने की भावना होनी चाहिए। जब तक हमारे देश मे इस बात का मौका नही दिया जायेगा कि बिना किसी डर के सरकार की आलोचना

की जा सके, बिना हिंसा के सरकार को बदला जा सके—यही जनतन्त्र का असली निचोड है—तब तक उसकी बाहरी शक्ल सूरत भले ही बनी रहे लेकिन उसका असली सार नही मिल सकता। अगर आप समझते हैं कि मैंने हिंसा की कोई कारवाई की है तो बेशक मुझे अदालत के सामने ले जाकर खडा कर दीजिये और मुझे कडी-से कडी सज़ा दीजिये।

हमें इस बात पर गर्व था कि हमारा जनतन्त्र दुनिया म सबसे बडा जनतन्त्र है। जिन दिनो आज़ादी की लडाई चल रही थी, जब हम लोग कॉलेजो और स्कूलो म पढते थे, तब हम भी गाधीजी की तरफ से लडे थ, अग्रेजो के जमाने मे पुलिस ने जो लाठिया चलायी थी उनके निशान अब भी बाकी हैं। मैंने उस जमाने मे जो बहुत-सी बातें दर्ज कर ली थी उनमे महात्मा गाधी की लिखी हुई भी एक बात थी। उसम कहा गया था 'सच्चा स्वराज्य इस तरह नही आयेगा कि कुछ लोगो के हाथो म सत्ता आ जाये, बल्कि वह तब आयेगा जब सभी लोग इस लायक हो जायें कि अगर उस सत्ता को बजा तरीके से इस्तमाल किया जाये तो वे उसका डटकर मुकाबला कर सकें। मतलब यह कि स्वराज्य तभी हासिल होगा जब आम जनता को शिक्षा देकर उनम यह भरोसा पैदा किया जाये कि वह सत्ता का सही रास्ते पर चला सकती है उसे अपने काबू म रख सकती है।"

हम सभी लोग इसी स्वराज्य के लिए लडे थे। हम सभी ने मुसीबतें झेली। लेकिन उस दिन को याद कीजिये जब मानव इतिहास के सबसे बहुमूल्य जीवन को, उस आदमी को जिसने इस देश मे हमे आज़ादी का विचार दिया था किसी सिरफिरे ने गोली मारकर ख़त्म कर दिया। उस सबसे गम्भीर सकट की घडी म भी जवाहरलाल नेहरू ने बोलने की आज़ादी नही छीनी थी। जिस आदमी ने पागलो की तरह यह मान लिया था कि उसने महात्मा की बर्बर हत्या की थी उस पर भी खुली अदालत म मुकदमा चलाया गया था।

इसलिए राष्ट्रपिता के नाम पर, उस आज़ादी के नाम पर जिसके लिए वह लडे और मुसीबतें झेली वही कानून हर मामले म लागू किया जाना चाहिए। मैं एक एक से अपील करता हूँ कि अगर आप समझते हैं कि आप सही रास्ते पर चल रहे है तो खुशी स आगे बढते रहिये। काश मैं जो समझता हूँ वह गलत हो। जब आपके कोई साथी गिरफ्तार कर लिए जायें और अगर आपके मन म ज़रा भी शक हो जैसा कि मेरे मन म है, किसी तरह की आशका हो जैसी कि मेरे मन म है तो जाकर उनसे पूछिये कि उन्हे क्यो गिरफ्तार किया गया है उन्हे जेल म क्यो डाल दिया गया है और उन्होंने स्मगलरो के अपराध से भी बडा कौन सा अपराध किया है। बहुत से स्मगलर अभी तक आज़ाद घूम रहे हैं। उनमे से बहुत से अभी तक समाज विरोधी हरकतें कर रहे है लेकिन फिर भी आज़ाद घूम रहे हैं। कानून का हाथ उन तक नही पहुँचा है। लेकिन दोस्तो मैं आपसे एक बार फिर हाथ जोडकर यही कहूँगा, बार बार यही कहूँगा कि याद रखिये कि अगर किसी आदमी से उसकी आज़ादी छीन ली जाती है तो वह दिन दूर नही है जब हमम से हर आदमी की आज़ादी छिन जायगी।

अहमदाबाद के संसद सदस्य पी० जी० मावलंकर ने कहा

मेरी भावना और मेरा आरोप यह है कि यह इमर्जेंसी झूठी है, कि सुरक्षा के लिए कोई खतरा नहीं है, कि यह सारा खतरा कोरी कल्पना है, और यह संविधान में दिये गये अधिकारों का सरासर बेजा इस्तेमाल है और यह कि यह संविधान से हासिल किये गये अधिकारों के साथ धोखेबाजी है और इसलिए इस सम्मानित सदन को उसे मंजूरी नहीं देनी चाहियें।

संसद का सबसे पहला काम हर आदमी की आजादी को बरकरार रखना है और वह अपने इस काम को इस तरह पूरा करती है या उसे पूरा करना चाहिए कि वह सरकार से इस बात की मांग करे कि जिस सरकार या जिस कैबिनेट को वह बनाती है वह काफी वजहें बताकर यह साबित करे कि जब तक उसे और ज्यादा कानूनी अधिकार नहीं दिये जायेंगे तब तक वह अपना कर्त्तव्य पूरे नहीं कर सकती। लेकिन मंत्री महोदय ने कल प्रस्ताव पेश करते समय, और प्रधानमंत्री ने आज बहस के दौरान बीच में बोलते हुए हमें इस बात की काफी वजह नहीं बतायी है कि उन्हें इतने बहुत से गैर मामूली अधिकारों की जरूरत क्या है जिनके खिलाफ कोई दाद-फरियाद भी नहीं है। इसलिए मेरा कहना है कि संविधान की धारा 352 में राष्ट्रपति को जो अधिकार दिया गया है उस अधिकार के साथ कुछ शर्तें भी जुड़ी हुई हैं और उस अधिकार को तभी इस्तेमाल किया जा सकता है जब उस धारा में बतायी गयी परिस्थितियां मौजूद हों।

मैं खास तौर पर यह सीधा सवाल पूछना चाहता हूँ 24 जून को तीसरे पहर और 25 जून की शाम के बीच ऐसी कौन-सी बात हुई कि हमारी सरकार को संविधान में इमर्जेंसी का एलान करने की जो गुंजाइश रखी गयी है उसका सहारा लेने की जरूरत पड़ गयी। यह भीतरी इमर्जेंसी है या एक आदमी की इमर्जेंसी है? यह देश की इमर्जेंसी है या शासक पार्टी की इमर्जेंसी है? यह कानून के शासन के खात्मे की शुरुआत है। उसी दिन से संविधान को बड़ी चालाकी से और लगातार संविधान की हर उस चीज का नष्ट कर देने के लिए इस्तेमाल किया गया है जिसकी हम कद्र करते थे, खास तौर पर उसकी मूल अधिकारों की प्रस्तावना का।

सचमुच मुझे यह कहते हुए बहुत अफसोस होता है कि भारत का पहला गणतन्त्र मर चुका है। संविधान की आड़ लेकर डिक्टेटरशिप कायम कर दी गयी है, और इसीलिए मैं कहता हूँ कि हमारे पनपते हुए देश और जनतन्त्र के लिए 26 जून का दिन सबसे अभागा और सबसे मनहूस दिन है।

अध्यक्ष महोदय, इमर्जेंसी लागू होने के बाद से जो सत्ताईस या कितने दिन बीते हैं, उन्हें न सिर्फ व्यक्ति की आजादी पर अंकुश लगाने और उसमें कतरब्योंत करने के लिए बल्कि उसे जड़ से ही खत्म कर देने के लिए इस्तेमाल किया गया है। बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियाँ हुई हैं—नेताओं की सदन के सदस्यों की विधायकों की, दाना ही तरफ के हमारे साथियों की गिरफ्तारियाँ हुई हैं सभी पार्टियों के लोगों की गिरफ्तारियाँ हुई हैं और इतना ही नहीं दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादियों के खिलाफ लड़ने की आड़ में कितने ही वामपंथियों, मार्क्सवादियों और दूसरे प्रगतिशील लोगों को जेल में डाल दिया गया है। अध्यक्ष महोदय, मैं पूछता हूँ कि इनमें से बहुत-से लोगों का अपराध क्या था? यही न कि सच्चाई को उन्होंने जिस तरह देखा उसी तरह बयान

कर दिया। इसलिए मुझे खुशी है कि इन लोगों को जेल भेज दिया गया है। हम सब लोग जेल चले जायें।

स्वतन्त्र भारत के नागरिक हम सभी का जिस शर्मनाक तरीके से अपमान कर रहे हैं उस तरह से तो कभी अंग्रेजों ने भी भारत का नहीं किया था। इसलिए मैं समझता हूँ कि इस सदन पर इस बात की खास तौर पर जिम्मेदारी आ जाती है कि वह इस बात का पक्का प्रबन्ध करे कि जिन लोगों को नजरबन्द किया गया है जिन नेताओं को गिरफ्तार किया गया है उनके साथ जेल में ठीक बरताव हो।

इसके बाद मैं अखबारों की आजादी और मौजूदा सेंसरशिप के सवाल पर आता हूँ। यह सेंसरशिप अनोखी और बेमिसाल है। अंग्रेजों के जमाने में भी, उनकी हुकूमत के बदतरीन जमाने में भी, जबकि अंग्रेज दूसरा महायुद्ध लड़ रहे थे और एक के बाद एक हर लड़ाई में उनकी हार हो रही थी, उन्होंने कभी पराधीन भारत पर भी ऐसी सेंसरशिप नहीं थोपी थी जैसी कि स्वतन्त्र भारत के शासक हमारे ऊपर थोप रहे हैं।

चूंकि मैं सामाजिक न्याय में विश्वास करता हूँ, समाजवाद में विश्वास रखता हूँ वैसे मैं किसी पार्टी में नहीं हूँ इसलिए मैं चाहता हूँ कि फौरन कुछ आर्थिक कार्यक्रम पूरे किये जायें। हम जानना चाहते हैं कि सरकार को इन कार्यक्रमों को पूरा करने से किसने रोका ? अन्त में मैं जगजीवनराम से पूछना चाहता हूँ, कि आज हम जहाँ पहुँच गये हैं वहाँ से वापस लौट आने का कोई रास्ता है ? या हम एक पार्टी की हुकूमत और उसके बाद एक आदमी की हुकूमत की तरफ आगे बढ रहे हैं ? क्या यह खुली डिक्टेटरशिप की शुरुआत नहीं है ? क्या जनतन्त्र के ढांचे के टूटे हुए टुकड़ों से सरकार ईंट ईंट जोड़कर एक निरंकुश शासन की इमारत नहीं खड़ी कर रही है ?

श्रीनगर के शमीम अहमद शमीम ने कहा

जनतन्त्र आपके लिए बहुत तकलीफदेह तरीका है। लोग आपके खिलाफ बातें करते हैं, लोग आपका विरोध करते हैं लेकिन जनतन्त्र की बुनियादी खूबी यही है कि आखिर में जीत बहुमत की ही होती है। लेकिन ऐसा लगता है कि आजकल जिन लोगों का बहुमत है उन्होंने यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है कि अल्पमत का रोड़ा भी रास्ते में क्या रहने दें। यह सदन विपक्ष के कई नाटक देख चुका है। लेकिन यह सदन इस बात का भी गवाह है कि यहाँ से उसी चीज को मंजूरी दी गयी है जिसके साथ बहुमत था। इसकी क्या वजह है कि विपक्ष ने जो कुछ किया उसके बावजूद वही कानून आज आपको कांटे की तरह खटकने लगा है ? एक बेतुकी दलील यह दी जाती है कि इमर्जेंसी की वजह से लोग ज्यादा मुस्तैदी से काम करने लगे हैं सरकारी नौकर 10 बजे दफ्तर आने लगे हैं, रेलें ठीक वक्त से चलने लगी हैं वगैरह-वगैरह। इसमें यह मतलब छिपा हुआ है कि यह संसदीय रास्ता जिस पर हम पिछले सत्ताईस साल से चलते आये हैं हमारा वक्त खराब करने के अलावा और कुछ नहीं करता, इसमें यह मतलब भी छिपा हुआ है कि यह जिस्म के एक बेकार हिस्से की तरह है इसमें यह मतलब भी छिपा हुआ है कि जिस दिन से आपने इमर्जेंसी लागू की है उस दिन से हर चीज में बेहद सुधार हो गया है। इस दलील में तुक क्या है ? आप कहते हैं कि हम संसदीय जनतन्त्र

का यह ढोंग नही चाहिए, इससे कौम की तरक्की मे रुकावट पडती है।

और फिर अखबारो की आजादी का सवाल ले लीजिये। आपने अखबारो पर सेंसरशिप लागू कर दी है। वे सूरमा जो अखबारो की आजादी और देश की आजादी के लिए लड चुके हैं आज सेंसरशिप को सही साबित करने की कोशिश में यह कह रहे हैं कि फलाँ अफवाह को फलाने दिया गया होता तो मुल्क का पूरा ढाँचा ढह गया होता। इंदिरा गाधी ने कल अपनी तकरीर मे कहा था कि उनको यह बताया गया था कि आर० एस० एस० के दफ्तर से जो तलवार बरामद हुई थी वह लकडी की थी और इसके बाद उन्होंने कहा था कि या तो आपके पास तलवार है या तलवार नही है। यही बात अखबारो की आजादी पर भी लागू होती है। या तो अखबारो की आजादी होती है या फिर नही होती। ऐसा नही हो सकता कि सिर्फ ऐसे अखबार हो जो बस वही बातें छापें जो आप चाहते है। जनतत्र का असली निचोड यह है कि दोनो तरफ की बातें जनता के सामने रख दी जायें और जनता की समझ पर भरोसा रखकर उसे इस बात का फसला करने का मौका दिया जाये कि क्या सही है और क्या गलत। आप जानते हैं कि 1971 में अखबार आपके बारे मे क्या लिखते थे, फिर भी जनता ने आपको वोट दिया। अखबार जो कुछ लिखते थे उसकी बुनियाद पर उन्होने फसला नही किया। 'झूठ और सच' से कोई फर्क नही पडा। फिर ऐसा क्या हो गया है कि आज विपक्ष की तरफ से फलायी जाने वाली किसी अफवाह के महज शुबहे से पूरी सरकार हिल जाती है? अगर इस कानून को, कानून मे कुछ हेर-फेर करने के इस सुझाव को नेकनीयती के साथ रखा गया होता तो मैं इसका साथ देता। लेकिन यह बदनीयती के साथ रखा गया है। आपने इस मुल्क की जनता के खिलाफ जंग का ऐलान कर दिया है। आप यह कानून महज जजो और अदालतो को बदनाम करने के लिए बनवाना चाहते हैं और सारी दुनिया जानती है कि इसके पीछे असली वजह क्या है। आपको अदालता पर कोई भरोसा नही है, आपको जजो पर कोई भरोसा नही है।

मेरा मोरारजी देसाई से बहुत सी बातो पर मतभेद है, वह इस सदन मे जो कुछ कहते हैं उसका एक लफ्ज भी मुझे अच्छा नही लगता, यह सदन गवाह है कि जिस दिन उन्होने इस सदन मे विपक्ष की तरफ से बोलने की जिम्मेदारी सभाली थी उसी दिन मैंने खडे होकर कहा था, 'उन्हे मेरी तरफ से बोलने का कोई हक नही है।' मैं कह चुका हूँ कि मेरे दिल मे जय-प्रकाश के लिए जो भी इज्जत थी, जब उन्होने जनसघ के इजलास की सदारत की तो मैंने उनकी इस बात को ठीक नही समझा। जिस वक्त से उन्होने जन सघ के इजलास मे शिरकत की और बिहार की विधानसभा तोड देने की माग की उसके बाद से मैंने किसी बात पर उनका साथ नही दिया। लेकिन इतना मैं आपको बता दू कि मै इस बात को कभी नही मानूगा कि वह स्मगलर हैं। फिर उन्हे किसलिए गिरफ्तार किया गया है। मोरारजी के बारे मे ऐसा लगता है कि उनकी वजह से मुल्क की सलामती के लिए खतरा पैदा हो गया था, वह स्मगलर थे। इसीलिए उनको गिरफ्तार कर लिया गया है।

आज आपने इमर्जेंसी की आड मे किया क्या है? इमर्जेंसी के बारे मे मैं यह मानता हू कि हालात ऐसे थे कि सचमुच कोई सख्त कदम उठाना जरूरी हो गया था। लेकिन आपने ये कदम उठाये किसके खिलाफ हैं? आपने

ये कदम पूरी कौम के खिलाफ उठाये हैं। आपने मेरे खिलाफ सख्त कदम उठाये हैं। आपने उन लोगो के खिलाफ सख्त कदम उठाय हैं जो आपके साथ हैं। आपने उन लोगो की आजादी को हडप लिया है जो कानून के बताये हुए रास्ते पर चलते हैं। यह कहाँ का इसाफ है कि आप किसी भी आदमी के हक महज इसलिए छीन लें कि उसने कोई ऐसा काम किया है जो आपको पसन्द नहीं है। पार्लियामेट के उन बडे-बडे सूरमाओ के सर, जो बडे-बडे हमले करते रहते थे, 1971 के चुनाव मे कलम कर दिये गये थे। उनके सर जनता ने कलम किये थे। आज भी अगर आपने देश के सामने जाकर कहा होता कि ये लोग पार्लियामेट को काम नही करने देते तो आप देखते कि जनता एक बार फिर आपको बहुमत दिला देती और इन लोगो को ठुकरा देती। लेकिन आपने ऐसा नही किया।

मुमकिन है कि यह पार्लियामेट इस मुल्क की आखिरी पार्लियामेट हो। इसका सबूत श्रीमती गाधी का वह बयान है जिसमे यह कहा गया है कि इमर्जेंसी से पहले वाले आम हालात अब फिर कभी लौटकर आनेवाले नहीं हैं। उन्होने उन हालात को आजादी का बेजा इस्तेमाल कहा है। जिस मुल्क मे इस बात का फैसला एक आदमी के हाथ मे हो कि मामूल क्या है और आजादी का बेजा इस्तेमाल क्या है और आजादी क्या है उस मुल्क के फाटक पर समझ लीजिये डिक्टेटरशिप की तख्ती लगी है। श्रीमती गाधी डिक्टेटर नही हैं लेकिन उन्होंने डिक्टेटरशिप के रास्ते पर आगे बढना शुरू कर दिया है। डिक्टटरशिप की सबसे बडी खूबी यह होती है कि शुरू शुरू मे बहुत सोच-समझकर और बहुत उम्दा उसूल ढाल जाते हैं। उन्हे बहुत खूबसूरत अलफाज मे ढाला जाता है। धीरे धीरे लोगो को उनमे मजा आने लगता है। उनको उनमे सुकून मिलता है और तब लोग यह कहने लगते हैं कि यही जम्हूरियत के उसूल हैं। ऐसा यही नही होता। रूस मे जर्मनी मे, उन दूसरे मुल्को मे जहाँ डिक्टेटरशिप है, आम तौर पर लोग जम्हूरियत के गुण गाते हैं और उसके नाम की माला जपते हैं। मैं श्रीमती गाधी को एक बात बताना चाहता हूँ। वह बहुत साफ गो औरत हैं। वह जो कुछ भी कहना चाहती हैं बहुत साफ तौर पर कहती हैं। मुझे ऐसा लगता है कि पार्लियामेटरी तरीके पर से उनका भरोसा उठ गया है। बहुत अच्छा हो अगर वह साफ साफ यह कह दें कि आज इस मुल्क मे इस तरीके के लिए कोई जगह नही रह गयी है। इसकी वजह कुछ भी हो, मैं उनमे नही जाना चाहता।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने श्रीमती इन्दिरा गाधी का साथ दिया। उसके ससद सदस्य इन्द्रजीत गुप्ता ने कहा कि इमर्जेंसी का ऐलान बिलकुल सही था और हर आदमी ने उसका समर्थन किया था। लेकिन सरकार को चाहिये कि वह सारे देश को उन सारी बातो की जानकारी दे जिनकी वजह से उसे यह कदम उठाने पर मजबूर होना पडा। उन्होने कहा कि कुछ पार्टिया न जो मोर्चा बनाया था वह जयप्रकाश नारायण की अगुवाई मे पिछले डेढ साल से कई राज्यो मे ऐसे तरीको से सत्ता पर कब्जा करने की कोशिश कर रहा था जो पूरी तरह सविधान के अनुकूल नही थे। सच तो यह है कि इन सारी घटनाओ का एक अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि के साथ बहुत सीधा सम्बन्ध है। अमरीका अपनी चाल चल रहा है।

उन्होंने कहा, प्रस्ताव पेश करनेवाले ने बहुत ठीक कहा था कि कुछ अखबार

सत्ता पर कब्जा करने की इस साजिश मे बहुत आगे बढकर हिस्सा ले रहे हैं। अगर इजारेदारों के अखबारो को खुली छूट दी गयी होती तो अब तक बीस-पच्चीस दिन के अन्दर उन्होंने देश मे तबाही मचा दी होती। सेंसरशिप दक्षिणपंथी ताकतो को कमजोर करने और जनतान्त्रिक ताकतो के हाथ मजबूत करने के लिए लगायी गयी थी।

लोकसभा में बहस के दौरान बीच मे बोलते हुए श्रीमती गांधी ने जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर 'कानाफूसी की मुहिम' चलाने का आरोप लगाया और यह शिकायत की कि सरकार के खिलाफ जो 'झूठी बातें' फैलायी गयी थी उनके खिलाफ अखबारो ने कुछ नही कहा। उन्होंने कहा कि अब भी इसके बारे मे 'कानाफूसी की एक बहुत बडी मुहिम चल रही है कि 'कौन अपने घर मे कैद कर दिया गया है, किसने भूख हडताल कर रखी है और कौन मर गया है।' इस बात पर जोर देते हुए कि विपक्ष की पार्टियाँ हिंसा के साथ बँधी हुई हैं उन्होंने अखबारो में छपी हुई खबरों का हवाला दिया कि जयप्रकाश ने 1967 मे कहा था कि वह 'फौजी डिक्टेटरशिप की बात सोच रहे हैं' और उन्होंने सुझाव दिया था कि उस साल चुनाव की वजह से जो राजनीतिक अस्थिरता पैदा हो गयी थी उसे देखते हुए राष्ट्र को चाहिए कि वह इस खाली जगह को भरने के लिए फौज की मदद का सहारा ले।'

आगे चलकर उन्होंने कहा कि गुजरात मे विधायको के बच्चो को मार देने की धमकी देकर उन्हें विधानसभा से इस्तीफा देने पर मजबूर किया गया और जिस वक्त कांग्रेस का एक विधायक अस्पताल मे पडा था तो छात्रों ने उसे उठाकर खिडकी के बाहर फेंक देने की धमकी दी थी। 'आनन्द मार्ग जैसे अपराधी संगठनो के मुस्टंडे' अब भी लोगो की हत्या करने की साजिशें कर रहे थे। जब पश्चिम बंगाल में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की सरकार थी तब लोग सूरज डूबने के बाद सडक पर निकल नही सकते थे। उन्होंने अपना भाषण जारी रखते हुए कहा, "अब मनमानी आजादी और राजनीति के नाम पर कुछ भी करने की छूट के वे दिन फिर कभी नही लौटने दिये जायेंगे।

"जनतन्त्र का तकाजा है कि हर आदमी अपने ऊपर काबू रखे। सरकार की जिम्मेदारी है कि वह विपक्ष को काम करने का पूरा मौका दे, बोलने की आजादी और मीटिंगें करने की आजादी दे। लेकिन विपक्ष की भी जिम्मेदारी है कि वह जनतन्त्र को नष्ट करने के लिए या सरकार का काम काज ठप्प कर देने के लिए इसका फायदा न उठाये। 'सरकार का काम-काज ठप्प कर देने' के शब्द मेरे नहीं हैं ये शब्द यहाँ नई दिल्ली की और दूसरी जगहों की मीटिंगो में खुलेआम इस्तेमाल किये गये थे।"

श्रीमती गांधी की एक बात के जवाब में भारतीय लोकदल के संसद-सदस्य एच० एम० पटेल ने कहा कि जब अखबारो पर पूरी सेंसरशिप लागू कर दी गयी है तो 'कानाफूसी की मुहिम' और अफवाहो के अलावा और उम्मीद ही क्या की जा सकती है।

राज्यसभा ने 22 जुलाई को 136 के खिलाफ 33 वोटों से इमर्जेंसी के ऐलान को अपनी मंजूरी दे दी। वोट ले लिये जाने के बाद सोशलिस्ट नेता नारायण गणेश गोरे ने विपक्ष की ओर से एक बयान पढा जिसमे ऐलान किया गया था कि संसद के काम करने के नियमो को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिये जाने के खिलाफ और संसद की कारवाई की रिपोर्टों पर भी अखबारो में सेंसरशिप लागू करने के लिए सरकार के फैसले के खिलाफ विरोध प्रकट करने के लिए विपक्ष के सदस्य सदन की बाकी बैठक में भाग नही लेंगे।

अगले दिन लोकसभा में भी इमर्जेंसी के ऐलान को 336 के खिलाफ 59

से मजूरी मिल जाने के बाद विपक्ष के ज्यादातर सदस्य सदन छोडकर चले आये, लेकिन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और कई छोटी छोटी पार्टियो ने, जिनमे मुस्लिम लीग, रिपब्लिकन पार्टी, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और अन्ना द्रविड मुन्नेत्र कजगम शामिल थी, बायकाट का साथ नही दिया।

दोनो सदनो ने सविधान (39वाँ सशोधन) बिल भी पास कर दिया, जिसमे यह कहा गया था कि इमर्जेंसी की घोषणा के लिए राष्ट्रपति के बताये हुए कारणो को किसी अदालत मे चुनौती नही दी जा सकी। 28 29 जुलाई को जब पन्द्रह राज्यो की विधानसभाओ ने अपनी विशेष बैठको मे इस बिल को मजूरी द दी, ता उसे 1 अगस्त को राष्ट्रपति की भी स्वीकृति मिल गयी।

इमर्जेंसी के ऐलान की मजूरी लेना कानूनन जरूरी था। लेकिन श्रीमती गाधी तो इलाहाबाद हाईकोर्ट के फसले की वजह से हरदम परेशान रहती था।

उनके घर पर जो 'इमर्जेंसी कौंसिल' बैठती थी वह कई बडे बडे वकीलो से सलाह मशविरा करने के बाद इस नतीजे पर पहुँची थी कि कानून की जो शक्ल उस वक्त थी उसमे कोई भी जज उस फसले से अलग कोई फैसला द ही नही सकता था जो जस्टिस सिनहा ने दिया था।

सबसे पहले तो इस बात का इन्तजाम करना था कि इस फैसले का उनके भविष्य पर कोई बुरा असर न पडे। श्रीमती गाधी के वकीलों ने, और पैरवी करन स इकार करने से पहले पालकीवाला ने भी उनस कहा था कि सुप्रीम कोट उन्ह चुनाव म भ्रष्टाचार का सहारा लेने के इल्जाम से बरी कर देगा। उन्ह यह भी तसल्ली थी कि सुप्रीम कोट के चीफ जस्टिस ए० एन० रे थे जिनको श्रीमती गाधी न उनकी बारी आने से पहले ही इस पद पर नियुक्त कर दिया था। उनस पहले जिन तीन जजो की बारी थी उनम से एक ने जस्टिस हेगडे ने, उस वक्त कहा था कि श्रीमती गाधी इस बात के लिए रास्ता साफ कर रही हैं कि उनके खिलाफ जा चुनाव याचिका दायर की गयी थी उसमे अगर फैसला उनके खिलाफ हो तो अपील करने का मौका रह।

फिर भी वह खतरे की काई गुजाइश बाकी नही रहने देना चाहती थी। गोखले ने इलाहाबाद वाले फैसले को रद्द कर दने के लिए एक बिल तैयार किया और उसका मसविदा सिद्धार्थशकर र और रजनी पटेल को दिखाया। रजनी पटेल बम्बई के एक प्रगतिशील थे जो सबसे बढिया स्काच ह्विस्की रायल सल्यूट के अलावा और कुछ नही पीते थे। दोनो श्रीमती गाधी के बहुत करीब थे और जब भी उन्ह किसी सलाह मशविरे के लिए उनकी जरूरत पडती थी तो वे हवाई जहाज स उडकर उनक पास पहुँच जाते थे। लेकिन सजय को ये लोग बिलकुल पसन्द नही थे और वह उनके खिलाफ कारवाई करने के लिए मौके की ताक मे था।

एक वक्त इस 'प्रगतिशील ग्रुप ने यह कानून बनवा दने का सुझाव रखा था कि अगर सजा के तौर पर किसी ससद सदस्य की पार्लियामट की सदस्यता खत्म कर दी जाय तो उसके साथ यह भी शत रहनी चाहिए कि उस पर ससद सदस्य न बन सकने की पाबन्दी उस ससद की जिन्दगी तक ही रह। इरादा यह था कि अगर सुप्रीम कोट श्रीमती गाधी की अपील रद्द कर द तो प्रधानमत्री ससद को भग करवाकर फिर चुनाव करा सकती थी। लेकिन सब लोग ऐसा नही चाहते थे। सजय चुनाव करान क सख्त खिलाफ था। यूनुस का कहना था कि पाँच साल तक चुनाव की बात सोचनी भी नहीं चाहिए।

सरकार ने इलाहाबाद हाईकोट के फसले का उसके सुनाए जान की तारीख स ही रद्द करा दने के लिए लोकसभा म 4 अगस्त को एक बिल पेश किया। चुनाव

कानून में कई हेर फेर करने के सुझाव रखे गये थे।

पहला यह कि सरकारी कर्मचारियों पर अपने सरकारी काम के सिलसिले में चुनाव की मुहिम के दौरान राजनीतिक उम्मीदवारों की मदद न करने की पाबन्दी अब नहीं रहेगी। इसका मतलब था कि श्रीमती गांधी को अपनी चुनाव की मीटिंगों के लिए मंच बनवाने और लाउडस्पीकर तथा बिजली लगाने के लिए सरकारी नौकरों की मदद लेने के अपराध से बरी कर दिया जायेगा।

दूसरा यह कि सरकारी गजट में छप जाना केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के किसी भी कर्मचारी की नियुक्ति, इस्तीफे, नौकरी खत्म किये जाने या नौकरी से हटा दिये जाने की तारीख का पक्का सबूत माना जायेगा। इसका मकसद उस दूसरे अपराध को रद्द कर देना था जिसके लिए श्रीमती गांधी को सजा दी गयी थी—यह कि एक सरकारी नौकर यशपाल कपूर ने सरकार को अपना इस्तीफा भेजने से पहले श्रीमती गांधी के चुनाव अभियान के मैनेजर की हैसियत से काम किया था।

तीसरा यह कि चुनाव के खर्चे का हिसाब लगाने के लिए और 'दूसरे कामों के लिए' नामजदगी की तारीख शुरुआत मानी जायेगी। ऐसा इसलिए किया गया था कि एक ओर तो सुप्रीम कोर्ट यह फैसला न दे सके कि श्रीमती गांधी ने अपने चुनाव के लिए 35,000 रुपये की सीमा से ज्यादा पैसा खर्च किया था और दूसरी तरफ यह कि चुनाव लड़ने का ऐलान करने की तारीख का कोई महत्त्व नहीं है।

पी० टी० आई० और यू० एन० आई० दोनों ही ने पूरा बिल और उसका महत्त्व समझाते हुए खबर भेजी थी। लेकिन सेंसर के दफ्तर के आदेश पर उन्होंने खबर को वापस ले लिया और दूसरी खबर भेजी जिसमें सिर्फ संक्षेप में बिल का निचोड़ दिया गया था और उसमें श्रीमती गांधी का कोई जिक्र नहीं था।

यह बिल एक संशोधन के साथ 5 अगस्त को लोकसभा में पास हो गया। इसमें यह भी कहा गया था कि चुनाव में भ्रष्टाचार के तरीके अपनाने की बुनियाद पर अगर किसी की सदस्यता खत्म कर दी जाये तो उसका मामला राष्ट्रपति के पास भेजा जाये और राष्ट्रपति चुनाव कमिश्नर से सलाह करके यह फैसला करे कि सदस्य न रह सकने की यह पाबन्दी लगायी जाये या नहीं और अगर लगायी जाये तो कितने अरसे के लिए। इसमें एक कसर रह गयी थी। बाद में सरकार ने संविधान में एक संशोधन करवा दिया कि राष्ट्रपति के लिए मंत्रिमण्डल की सलाह को मानना 'लाजिमी' है। उनके लिए और कोई रास्ता ही नहीं था।

सदस्य न रह सकने की पाबन्दी के बारे में तो कानून बनवाना जरूरी था लेकिन इससे भी जरूरी वह कानून था जिसमें प्रधानमंत्री के चुनाव के बारे में किसी झगड़े पर विचार करने का अधिकार चुनाव कमीशन से छीन लिया गया था। यह जताने के लिए कि यह विचार सरकार के दिमाग की उपज नहीं है, श्रीमती गांधी और उनके सलाहकारों ने कांग्रेस के एक मामूली संसद सदस्य से यह मसला उठवाया। सदस्य न रह सकने की पाबन्दी वाले बिल पर बहस के दौरान उन्होंने कहा कि जिन पदों पर चुनाव जीतकर आनेवाला आदमी ही रह सकता है, उनमें से कुछ अदालतों के दायरे से बाहर निकाल लिये जाने चाहिए।

गोखले ने इस विचार का स्वागत किया, चौबीस घंटे के अन्दर उसे कानूनी शक्ल दे दी, और 7 अगस्त को संविधान (40वाँ संशोधन) बिल पेश किया, जिसमें राष्ट्रपति, उप राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और लोकसभा के स्पीकर के चुनाव से सम्बन्ध रखनेवाले मामले निबटाने के लिए किसी भी अदालत के अधिकार क्षेत्र से [illegible] नयी संस्था की स्थापना की गयी। इसके पीछे मकसद सिर्फ इस बात का बिलकुल

बन्दोबस्त करना था कि श्रीमती गांधी पर किसी चुनाव याचिका का कोई असर न पड़ने पाये। दूसरों के नाम तो सिर्फ़ इसलिए जोड़ दिये गये थे कि सीधे-सीधे यह न लगे कि यह बिल सिर्फ़ श्रीमती गांधी के बचाव के लिए पेश किया गया है। कुछ मुख्यमंत्रियों ने नई दिल्ली टेलीफ़ोन करके यह जानने की कोशिश की कि क्या उनको भी इस मामले में प्रधानमंत्री जैसी छूट मिल सकती है। उनके मामले में विचार करने का समय नहीं था।

कांग्रेस के ज़्यादातर संसद-सदस्य हमेशा की तरह निश्चिन्त बैठे रहे और उन्होंने इस बिल के बारे में कोई एतराज़ नहीं किया। मन ही मन उन्हें यह बात ग़लत भी लग रही हो पर उन्होंने बाहर से ऐसा ज़ाहिर नहीं होने दिया। लेकिन कुछ लोगों ने इसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी। बचे खुचे विपक्ष की ओर से मोहन धारिया ने ऐलान किया, 'यह क़ानून इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले से बच निकलने के लिए बनवाया जा रहा है। इसे पास करवाने के लिए आख़िर इतनी हड़बड़ी क्यों की जा रही है? क्या इसलिए कि प्रधानमंत्री के मामले की सुनवायी 11 अगस्त को होने वाली है।"

सचमुच यह बिल बहुत हड़बड़ी में 7 अगस्त को 11 बजे लोकसभा में पेश किया गया और सारी आपत्तियों को रद्द करके और यह पाबन्दी हटवाकर कि कोई भी बिल सदन में पेश किये जाने से कम से कम एक ख़ास समय पहले सदस्यों के पास भेज दिया जाना चाहिए, सरकार की तरफ़ से उसे 11 बजकर 8 मिनट पर विचार के लिए पेश कर दिया गया। अलग अलग एक एक धारा पर बहस और नियम के अनुसार तीन बार उसके पढ़ दिये जाने के बाद 1 बजकर 50 मिनट पर यह बिल पास भी हो गया। राज्यसभा ने अगले दिन एक घंटे के अन्दर उसे मंज़ूरी दे दी। उसके ख़िलाफ़ कोई बोला ही नहीं।

जिन राज्यों की विधानसभाओं में कांग्रेस का बहुमत था उनकी बैठक 8 अगस्त को बुलायी गयी और अगले दिन इस बिल पर उनकी भी मंज़ूरी की मुहर लगवा ली गयी और 10 अगस्त को राष्ट्रपति ने उसे अपनी स्वीकृति दे दी—जिस दिन सुप्रीम कोर्ट में श्रीमती गांधी की अपील की सुनवायी होने वाली थी उससे एक दिन पहले।

लेकिन इससे पहले कि 40वें संशोधन बिल को (सरकारी हिसाब से वह 39वाँ था) क़ानून की हैसियत मिल पाती, कांग्रेस के कुछ संसद सदस्यों ने एक और कमी पूरी कर दी। उन्हें यह शक हुआ कि विपक्ष का कोई आदमी कहीं इस बिल के ख़िलाफ़ स्टे ऑर्डर न ले ले। इसलिए उन्होंने 9 अगस्त को राज्यसभा की बैठक करायी और संविधान (41वाँ संशोधन) बिल पास करा दिया जिसमें कहा गया था कि जो आदमी राष्ट्रपति, उप राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री रह चुका हो उसके ख़िलाफ़ किसी अदालत में फ़ौजदारी क़ानून के तहत कोई मुक़दमा नहीं दायर किया जा सकता। राष्ट्रपति का नाम तो यों ही लगेहाथ जोड़ दिया गया था क्योंकि संविधान की धारा 361 में यह बात पहले ही से मौजूद थी। बिल का मक़सद दरअसल प्रधानमंत्री का बचाव करना था। जब सुप्रीम कोर्ट में उनके ख़िलाफ़ दायर की गयी चुनाव याचिका की सुनवायी शुरू हो गयी तो इस बिल को चुपचाप खटाई में डाल दिया गया, मक़सद पूरा हो गया था।

अब चूंकि सारे ज़रूरी क़ानून बनवाये जा चुके थे, इसलिए सारा ध्यान सुप्रीम कोर्ट में प्रधानमंत्री की अपील की ओर दिया जाने लगा। सबसे पहले तो उसके बारे में 'ज़रूरत से ज़्यादा और प्रतिकूल प्रचार को रोकना था। चीफ़ प्रेस सेंसर हैरी डी० पनहा ने अख़बारों, समाचार एजेंसियों और दूसरे लोगों को ख़ास तौर पर यह आदेश दिया कि वे अदालत की कारवाई की कोई रिपोर्ट पहले उनके दफ़्तर से मंज़ूर करवाये

बिना न छापें। सभी अखबारों ने चूं किये बिना ही यह आदेश मान लिया, सिर्फ एक पेजी दैनिक ईवनिंग न्यूज़ ने नहीं माना और बाद में उस पर पाबन्दी लगा दी गयी।

सुप्रीम कोर्ट की कारवाई की खबर सेंसर करने के आदेश पर चीफ जस्टिस ने भी कोई एतराज़ नहीं किया, सुप्रीम कोर्ट के पूरे इतिहास में इससे पहले ऐसा कभी नहीं हुआ था। सच तो यह है कि वह इस बात के पक्ष में थे कि कारवाई में भाग लेने या उसे सुनने के लिए जो वकील आयें उनकी पहले जाँच पड़ताल कर ली जाये। इसके खिलाफ इतने ज़ोर की आवाज़ उठायी गयी कि—अदालत का बायकाट कर देने तक की धमकी दी गयी—उन्होंने फिर इसे लागू नहीं किया।

चीफ जस्टिस की अगुवाई में पाँच जजों की बेंच 11 अगस्त को अपील की सुनवायी करने के लिए बैठी।

शान्तिभूषण ने, जो बहुत चुस्त और मुस्तैद वकील थे और जिन्होंने इलाहाबाद में राजनारायण की तरफ से पैरवी की थी, सुप्रीम कोर्ट में भी यह काम संभाला। श्रीमती गांधी की पैरवी कर रहे थे अशोक सेन जो पहले कानूनमंत्री रह चुके थे। सेन ने अदालत से संविधान के 39वें संशोधन के तहत इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले को उलट देने के लिए कहा। लेकिन शान्तिभूषण ने दलील यह दी कि अदालत पहले यह फैसला कर दे कि 39वाँ संशोधन संविधान के मुताबिक ठीक भी है या नहीं। कुछ लोगों को कानून से परे रखकर 39वें संशोधन ने ऊँचे पद की बुनियाद पर आदमी-आदमी के बीच फर्क पैदा कर दिया है, उसने शासन के लिए कानून की पाबन्दी के विचार को ही नष्ट कर दिया है, और संसद का यह ऐलान कि हाईकोर्ट के फैसले का कोई मतलब नहीं रह गया है सरकार, संसद और अदालतों के अधिकारों को [illegible] दूसरे से अलग रखने के सिद्धान्त के खिलाफ है। उन्होंने यह दलील भी दी [illegible] में संसद की जो बैठक हुई थी उसकी सारी कारवाइयाँ ग़ैर-कानूनी थीं, [illegible] ही मेम्बरों को ग़ैर-कानूनी तौर पर गिरफ्तार कर लिया गया था और [illegible] वाई में हिस्सा लेने का मौका नहीं दिया गया था।

एटॉर्नी जनरल नीरेन डे ने, जो सरकार का इतना खुला समर्थन करते थे कि सरकार खुद मुश्किल में पड़ जाती थी, यह दलील दी कि चुनाव के झगड़ों पर विचार करना अदालतों का बुनियादी काम नहीं है। उन्होंने यह भी बताया कि पश्चिम के ज़्यादातर जनतान्त्रिक देशों में चुनाव से सम्बन्ध रखनेवाले सारे मामले उनकी संसद के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं। उन्होंने बहस करते हुए कहा कि 1973 में केशवानन्द भारती बनाम केरल सरकार वाले मुकदमे में सुप्रीम कोर्ट ने यह फैसला दिया था कि संसद को संविधान में संशोधन करने या उसे बदलने का अधिकार ज़रूर है लेकिन इस तरह कि उसका 'बुनियादी ढाँचा या रूपरेखा' बदले या नष्ट न हो जाये।

चीफ जस्टिस रे ने ऐलान किया कि संविधान के संशोधन के बारे में फैसला देने से पहले अदालत श्रीमती गांधी की अपील के सिलसिले में तथ्यों और दलीलों पर जिरह सुनेगी।

सुप्रीम कोर्ट की जिरह के बारे में श्रीमती गांधी को कोई चिन्ता नहीं थी। संविधान के संशोधनों में अगर कोई कसर रह भी गयी होगी तो उनके वकील उसका बन्दोबस्त कर लेंगे।

उन्हें चिन्ता थी उन बातों की जो पड़ोसी देश बंगलादेश में उस समय हो रही थीं। 14 अगस्त को शेख मुजीबुरहमान और उनके परिवार के ज़्यादातर लोगों की बड़ी बेरहमी से हत्या कर दी गयी थी। न 'रॉ' को और न ही किसी दूसरी गुप्तचर सेवा को इसकी रत्ती भर भी भनक मिल सकी थी। एक बार फिर

श्रीमती गांधी को निराश किया था। दरअसल उसी दिन से संजय ने 'रॉ' को 'ससुराली रिश्तेदारों का संघ' कहना शुरू कर दिया था। 'रॉ' के चोटी के अफ़सरों के बहुत-से रिश्तेदार उस संगठन में थे। श्रीमती गांधी ने 'रॉ' के कर्त्ता धर्त्ता रामजी काओ से बंगलादेश के बारे में पहले से कोई ख़ुफ़िया रिपोर्ट न मिल सकने पर अपनी नाराज़गी ज़ाहिर की। उन्हें परेशानी यह थी कि अगर उनके जासूस बंगलादेश के बारे में उनके काम नहीं आये तो कल भारत के बारे में भी यही हो सकता है।

सचमुच मुजीब की मौत से श्रीमती गांधी को बहुत गहरा धक्का लगा, ख़ास तौर पर इसलिए कि दोनों ही नेता अपना निरंकुश शासन कायम करने के एक जैसे रास्तों पर चल रहे थे। जब मुजीब ने संविधान को रद्द करके सारी ताकत अपने हाथ में ले ली थी, तो उस वक्त जयप्रकाश नारायण ने 11 फरवरी को दिल्ली में विपक्ष की सभी पार्टियों की एक मीटिंग की थी। उन्होंने कहा था कि शायद यह उस चीज़ का रिहर्सल है जिसका सामना कल उन्हें भारत में करना पड़ेगा, और उन्हें इसके लिए तैयार रहना चाहिए। अशोक मेहता ने जयप्रकाश नारायण की दलील को यह कहकर रद्द कर दिया था कि भारत में ऐसा नहीं हो सकता। लेकिन मोरारजी ने यह नहीं माना कि ऐसा नहीं हो सकता और कहा कि अगर ऐसा हुआ तो मैं गुजरात में आन्दोलन छेड़ दूंगा। चरणसिंह ने कहा 'वह जो भी करना चाहती हैं करें' और साथ ही यह भी कहा कि 'वह कर ही क्या सकती हैं ?' राजनारायण ने कहा, 'कम-से-कम हम दोनों को जेल में तो डाल ही सकती हैं।

जयप्रकाश नारायण ने बहस के बीच में बोलते हुए कहा कि वह लोग इस बात पर गम्भीरता से विचार नहीं कर रहे हैं। उनको पूरी संजीदगी से इस पर विचार करना चाहिए कि ऐसा हो सकता है। वह देख रहे थे कि नागरिक स्वतन्त्रताएं ख़त्म हो जायेंगी, कई पार्टियों वाली व्यवस्था ख़त्म हो जायेगी। उन्होंने कहा कि विपक्ष की पार्टियां को बाहरी इमर्जेंसी के जारी रहने के ख़िलाफ़ आन्दोलन चलाना चाहिये।

हर आदमी चाहता था कि 'कुछ किया जाये'। क्या किया जाय यह कोई नहीं जानता था लेकिन किसी ने जयप्रकाश की बात पर गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया। बाद में रोहतक जेल में जहां इमर्जेंसी के दौरान विपक्ष के ज़्यादातर नेता कैद किये गये थे कुछ लोगों को जयप्रकाश की यह चेतावनी याद आयी। कितनी सच्ची भविष्य-वाणी थी !

लेकिन इसका कोई सबूत नहीं मिलता था कि श्रीमती गांधी ने मुजीब की हत्या से कोई सबक लिया हो। लोग दबी ज़बान से इस बात की चर्चा करते थे और भारत की और बंगलादेश की घटनाओं में समानता देखते थे। इशारा यह था कि भारत में भी ऐसा हो सकता है। वजह कुछ भी रही हो लेकिन श्रीमती गांधी के चारों ओर सुरक्षा का बन्दोबस्त और पक्का कर दिया गया। सफ़दरजंग रोड के उस हिस्से पर तो, जहां उनकी कोठी थी इमर्जेंसी लगने के बाद से ही आवाजाही बन्द कर दी गयी थी लेकिन अब उनकी कोठी से मिले हुए बंगले के सामने से जानेवाली सड़क अकबर रोड पर भी आवाजाही कम कर दी गयी थी।

किसी ने तो यह सुझाव तक दिया कि 15 अगस्त को राष्ट्रीय झण्डा फहराने लाल किले श्रीमती गांधी न जायें, जैसा कि 1947 में भारत के आज़ाद होने के बाद से हमेशा होता आया था। लेकिन उन्होंने इस सुझाव को ठुकरा दिया। उन्होंने पब्लिक के सामने आना लगभग बन्द ही कर रखा था लेकिन अगर वह 15 अगस्त को नहीं गयीं तो लोगों को यक़ीन हो जायगा कि वह ख़तरे का सामना करने से डरती हैं—और उनके नाम के साथ यह कमज़ोरी पहले कभी नहीं जोड़ी गयी थी।

फिर भी 15 अगस्त को सुबह उनकी कोठी से लाल किले तक के दस किलोमीटर लम्बे रास्ते पर पुलिस का भारी पहरा था। दरियागंज मे रहनेवालो से सडक की तरफ खुलनेवाली खिडकियाँ बन्द रखने को कहा गया था। सडक के दोनो तरफ के मकानो की छतो पर पुलिस तैनात कर दी गयी थी। बिलकुल वही नक्शा था जैसा द डे ऑफ द जकाल मे था, जिसमे यह बयान किया गया था कि पुलिस ने किस तरह जनरल द गाल की हत्या की साज़िश को नाकाम किया था। कुछ ही दिन पहले 8 अगस्त को धजाराम सागवान ने, जो पहले फौज म कप्तान रह चुके थे, मुझे जेल मे एक साजिश के बारे मे बताया था। वह एक टेलिस्कोपिक राइफल लिये हुए पकडा गया था।[1]

श्रीमती गाधी जिस समय बन्द मोटर मे लाल किले जा रही थी, उस समय उन्हें इसका पता नही था। उनके दिमाग़ मे मुजीब की हत्या के अलावा कोई दूसरी बात नही थी, जिसकी वजह से उनके बोलने के ढग पर भी असर पडा। उन्होने विस्तार के साथ बताया कि उन्होंने इमर्जेंसी क्यो लगायी थी। उन्होने कहा कि इमर्जेंसी लगाकर उन्हें बहुत खुशी हुई हो, ऐसी बात नही थी। वह बहुत दिन तक टालती रही लेकिन बाद म उन्हें हालात न मजबूर कर दिया। एक असाधारण हालत पदा हो गयी थी और देश को फिर से ठीक रास्त पर लाने के लिए असाधारण कदम उठाना जरूरी हो गया था। उन्होंने अपने बाप जवाहरलाल नेहरू के य शब्द दोहराये 'आजादी खतरे मे है। अपनी पूरी ताकत लगाकर उसकी हिफाजत करो।"

ये शब्द उनको निशाना बनाकर भी कहे जा सकते थे। उन्होने विपक्ष की पार्टियो को आन्दोलन का सहारा लेने के लिए बहुत बुरा भला कहा। केन्द्रीय सरकार के खिलाफ़ बिहार और गुजरात जैसा आन्दोलन दूसरे राज्यो मे भी छेडने का नारा दिया गया था, लडको से पढाई छोड देने को कहा गया था। कई तरीको से अनुशासनहीनता फैलायी जा रही थी और कई दल, जिनमे से कुछ तो जनतन्त्र और अहिंसा मे विश्वास भी नही रखते थे, इन आन्दोलनो को चलाने के लिए मिलकर एक हो गय थे।

मानो यह जानत हुए कि ज्यादतियाँ की गयी थी, उन्होने कहा कि मैंने मुख्यमन्त्रियो को लिख दिया है कि कानूनो को लागू करने मे किसी तरह की बेइंसाफी और जोर जबरदस्ती न की जाये। कानून के रास्ते पर चलनेवाले शहरियो की हर तरह से मदद की जाये। पुलिस के और दूसरे अफसरो को जनता के साथ दोस्ती का बरताव करना चाहिए। अगर कोई गलतियाँ हुई हैं तो उन्हें बताया जाना चाहिए कि काम करने का सही तरीका क्या है। उन्होने कहा कि जिन लोगो को गिरफ्तार किया गया है उनकी देखभाल अच्छी तरह की जायेगी।

देखभाल' वाली बात ठीक नही थी। जेल म रहन-सहन की हालत बहुत भयानक थी। सरकार इस बात पर तुली हुई थी कि जो लोग नज़रबन्द किये गये थे उनके साथ आम अपराधियो से भी बदतर सलूक किया जाय। शुरू शुरू के दिनो मे जब कैदियो से मुलाकात और दूसरी सुविधाओ के बारे म कायदे बनाये जा रहे थे तो ओम मेहता ने जान-बूझकर उन्हे ज्यादा से ज्यादा सख्त बनाया था और गृह मन्त्रालय मे अफसरो की एक मीटिंग मे यह बात कही भी थी। सबसे पहली बात तो यह कि पुलिस के किसी अफसर की मौजूदगी मे दो बिलकुल सगे रिश्तेदारो के साथ महीने मे सिर्फ एक बार आधे घटे की मुलाकात की इजाज़त थी। हर कैदी को रोज़ खर्चे के लिए ढाई रुपये मिलत थे। शुरू मे नज़रबन्द कैदियो को रेडियो भी नही दिये गये थे, कुछ को तो

1 इसके पूरे ब्यौरे के लिए मेरी शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'जेल म' को प्रतीक्षा

सेंसर किये हुए अखबार तक नहीं दिये जाते थे।

चूंकि गिरफ्तार किये जानेवालों की तादाद लगभग एक लाख तक पहुँच चुकी थी, इसलिए जेल खचाखच भरे हुए थे। दिल्ली के तिहाड़ जेल में, जहाँ 1,200 कैदियों को रखने का इन्तजाम है, 4,000 से ज्यादा कैदी थे। जो थोड़ी-बहुत सुविधाएँ थीं वे इतने लोगों के लिए काफी नहीं थीं। कई जेलों में गन्दी नाली का पानी ऊपर आकर बहता रहता था, नल में पानी सिर्फ कुछ ही घंटों के लिए आता था।

लन्दन में भारत के हाई कमिश्नर बी० के० नेहरू ने लन्दन के टाइम्स अखबार में एक खत छपवाया था जिसमें भारत के जेलों की हालत बयान की गयी थी। उसमें कहा गया था 'सरकारी अधिकारी नजरबन्द कैदियों का जितना ध्यान रखते हैं और उनकी जितनी अच्छी देखभाल करते हैं वह बिलकुल वैसी ही है जैसी माँ अपने बच्चों की करती है। उन्हें रहने के लिए अच्छी जगह दी जाती है, अच्छा खाना दिया जाता है और उनके साथ अच्छा सलूक किया जाता है।" बंसीलाल ने कहा कि कैदियों का वजन बढ़ गया है।

जेलों की हालत तो बुरी थी ही, लेकिन अफसरों का रवैया उससे भी बुरा था। उनसे खास तौर पर कह दिया गया था कि वे राजनीतिक कैदियों के साथ आम अपराधियों से बेहतर सलूक न करें। कहीं कहीं यातनाएँ देने के लिए बाकायदा अलग कमरे थे। दिल्ली के लाल किले में एक बहुत आलीशान कमरे में विदेशों से मँगाकर तरह तरह की नयी-से-नयी मशीनें लगायी गयी थीं जहाँ लोगों को सच-सच बात बता देने पर 'मजबूर' किया जाता था। कैदी के चेहरे पर घंटों तेज रोशनी पड़ती रहती थी और पीछे से तरह-तरह की आवाजें आती रहती थीं, ताकि कुछ देर में वह टूट जाये। खुफिया पुलिस के अफसर बहुत देर तक उससे सवाल-जवाब करते थे और उसकी हर बात और तमाम हरकतें टेप कर ली जाती थीं।

जेलों में कुछ कैदी मर भी गये जिनमें से एक ट्रेड यूनियन नेता भैरव भारती भी थे, जो पहले मध्य प्रदेश विधानसभा के मेम्बर भी रह चुके थे। सभी राजनीतिक पार्टियों के चौदह मेम्बरों ने श्रीमती गांधी को लिखा 'जेल में एक महत्त्वपूर्ण कार्यकर्ता की मौत के बारे में अधिकारियों ने चुपचाप मामले को दबा देने की जो नीति अपना रखी है, उसे देखते हुए हम महसूस करते हैं कि सरकार को उनकी मौत की वजह के बारे में अदालती जाँच करवानी चाहिए।"

जेलों की बुरी हालत और कैदियों के साथ किये जानेवाले बुरे सलूक की खबरें विदेशों के अखबारों में छपने लगीं। एमनेस्टी इण्टरनेशनल के चेयरमैन ईवान मारिस ने कहा 'श्रीमती गांधी की सरकार तो मानव अधिकारों के सिद्धान्त की परवाह किसी, ताइवान, सोवियत संघ और कोरिया जैसे कई दूसरे पुलिस राज्यों से भी कम करती है।

जयप्रकाश और दूसरे राजनीतिक नेताओं के नाम जारी की गयी अपील को [illegible] देने के लिए लन्दन में महात्मा गांधी की मूर्ति के चरणों में एक ज्योति जलायी गयी। लन्दन के टाइम्स अखबार में 15 जनवरी को [illegible] का एक विज्ञापन 3,000 पौंड खर्च करके छपवाया गया जिसमें लिखा गया था 'आज भारत का स्वाधीनता दिवस है। भारतीय जनतन्त्र की ज्योति बुझने न पाए।' तमाम यूरोप के लगभग 500 संसद-सदस्यों और बुद्धिजीवियों ने जिनमें कुछ नोबुल पुरस्कार विजेता भी थे, उस पर दस्तखत किये थे। प्रसिद्ध दार्शनिक [illegible] उस पर इसलिए दस्तखत नहीं किये थे कि उस समय [illegible] गांधी [illegible] कर चुके थे।

[illegible] गांधी बुद्धिजीवियों की [illegible]

नेहरू के स्थापित किये हुए अखबार नेशनल हेराल्ड के सम्पादक चलपति राव से एक जवाब तैयार कराके उन्हें भिजवा दिया। यह अलग बात है कि वह उस पर दस्तखत करने के लिए बहुत बुद्धिजीवियो को नही जुटा पायी। बहुत से ऐसे लोगो को, जिन्होंने उस पर दस्तखत करने से इकार किया था, इसके लिए मुसीबतें झेलनी पड़ी। रोमिल्ला थापर, जो जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी मे इतिहास पढाती हैं, उन लोगो मे से थी जिन्होने इकार किया था। नतीजा यह हुआ कि उनका पिछले दस साल का इनकम-टैक्स का हिसाब फिर से खुलवाया गया।

सच तो यह है कि इनकम-टैक्स की फिर से जांच करवाना और सी० बी० आई० की इनकम-टैक्स शाखा की तरफ से व्यापारियो और अफसरो के घरो पर छापे डलवाना उन लोगो को ठीक करने के लिए, जो उसका हुक्म नही मानते थे, सरकार का आम तरीका हो गया था। नामी और होनहार इंजीनियर मनतोश सोधी को, जिन्हे बोकारो के इस्पात के कारखाने मे एक बहुत ऊँचे पद से उद्योग मत्रालय मे लाया गया था, सजय गाधी के कहने पर सी० बी० आई० वालो ने बहुत परेशान किया था। सोधी का कसूर बस इतना था कि ससद मे एक सवाल का जवाब तैयार करने के लिए कोई मामूली-सी जानकारी हासिल करने के लिए कुछ अफसरो को मारुति के कारखाने भेज दिया था। उस जमाने मे टी० ए० पई उद्योगमत्री थे। उन्होने मत्रिमण्डल से इस्तीफा देने की धमकी दी तब कही जाकर सोधी की जान बची।

वित्त मत्रालय के दो टुकडो मे बट जाने के बाद से इनकम टैक्स के बकाये का हौआ खडा करके लोगो को सताने की वारदातें और भी बढ गयी। इनकम टैक्स, एक्साइज और बको के कारोबार का एक अलग विभाग बना दिया गया था और प्रणव मुखर्जी के हवाले कर दिया गया था। वह अब सजय के एक दरबारी बन गये थे और उनके हर हुक्म को पूरा करने के लिए हरदम तैयार रहते थे।

वित्त मत्रालय के दो टुकडे कर दिये जाने से ढीले ढाले वित्तमत्री सी० सुब्रह्मण्यम को दिल का दौरा पड गया। जिस वक्त दक्षिणी भारत के सबसे बडे काग्रेसी नेता के० कामराज ने काग्रेस के पुराने घाघ नेताओ का साथ दिया था, जिन्होंने बाद मे सगठन काग्रेस बना ली थी, उस समय सी० सुब्रह्मण्यम ने पूरी तरह श्रीमती गाधी का साथ दिया था। सुब्रह्मण्यम ने श्रीमती गाधी को बताया था कि मारुति के कारखाने की योजना जिस तरह बनायी गयी है उस तरह वह कारखाना कभी नही बन पायेगा। उनके सामने ही उन्होने घटो सजय को यह समझाने की कोशिश की थी कि वह इस योजना म बिडला को अपने साथ ले ले, जिनका खुद अपना मोटर बनाने का कारखाना भी था। सजय को सुब्रह्मण्यम की ये खरी-खरी बातें अच्छी नही लगी थी और इस वजह स वह उनसे चिढ़ा बठा था, हालांकि बहुत बाद में जाकर सजय ने उनकी इसी सलाह पर अमल किया और बिडला को अपने कारखाने में साथ ले लिया।

इमर्जेसी को लागू हुए अभी दो महीने से कुछ ही ज्यादा वक्त गुजरा था। लेकिन इतने ही दिन मे श्रीमती गाधी की देवताओ की तरह पूजा कराने का सिलसिला शुरू हो गया था। सारे देश मे जगह-जगह उनकी तसवीरें लगायी गयी और उनका बीस-सूत्री कार्यक्रम मत्र की तरह जपा जाने लगा। सभी बडी-बडी यूनिवर्सिटियो मे 'इन्दिरा स्टडी सर्किल' सगठित किये गये और इन्दिरा ब्रिगेड मे वालटियरो की भरती तेज हो गयी।

मशहूर चित्रकार हुसन ने श्रीमती गांधी का दवी के रूप मे जो चित्र बनाया था वह सरकारी तौर पर सारे देश मे दिखाया जा रहा था। इमर्जेसी की दवी श्रीमती गाधी को दुर्गा की तरह बाघ पर नहीं बल्कि एक बिफरे हुए दहाडते शेर पर सवार

दिखाया गया था।

कांग्रेस की सरकारी पत्रिका **सोशलिस्ट इण्डिया** मे श्रीमती गांधी के बारे मे पहले से अधिक लेख छपने लगे। एक लेख का शीर्षक था "हमे श्रीमती गांधी पर पूरा भरोसा और विश्वास क्यो रखना चाहिए।" उनकी प्रशस्ति मे लेख सभी जगह छपने लगे। विदेशी पत्र पत्रिकाओ मे जो लेख छपते थे उनकी नक्लें बनवाकर दूसरे पत्र-पत्रिकाओ मे छापने के लिए बड़े पैमाने पर भेजी जाती थी। कनाडा की एक पत्रिका मे प्रकाशित लेख का शीर्षक था "प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी की समझदारी भारत की समझदारी है।"

श्रीमती गांधी ने खुद एक हिन्दी पत्रिका के लिए एक लेख लिखा था—'मेरी सफलता का रहस्य'। इसमे उन्होने बताया था कि बचपन में एक बार जब उनकी अध्यापिका ने उनसे पूछा था कि तुम बडी होकर क्या बनना चाहोगी तो उन्होंने जवाब दिया था कि 'मैं जोन ऑफ आर्क बनना चाहती हू।' इतिहास यह बात तो लिखेगा ही कि आखिरकार वह क्या बन गयी।

ज्यादातर पत्रिकाए, खास तौर पर छोटे प्रकाशन सरकारी विज्ञापनो के सहारे चलने की वजह से इसी रास्ते पर लग गये, अखबार भी या बिलकुल सरकारी गजट बन गये या श्रीमती गांधी की चापलूसी करने लगे। लेकिन **इण्डियन एक्सप्रेस** जसे कुछ दैनिक अखबारो ने सेंसरशिप का मुकाबला करने की कोशिश की तो सरकार ने उन पर तरह तरह से दबाव डालना शुरू कर दिया। इस अखबार के मालिक बहादुर मारवाडी रामनाथ गोएनका को धमकी दी गयी कि अगर वह चुपचाप घुटने नही टेक देंगे तो उनके बेटे और उनकी बहू को मीसा मे पकडवा दिया जायेगा और उनके सारे अखबार नीलाम करवा दिये जायेंगे। गोएनका को झझट से बचने के लिए इण्डियन एक्सप्रेस का बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स नये सिरे से बनाकर उसमे ज्यादातर सरकार के लोग रखने पडे। के० के० बिडला जो सजय गांधी के बहुत निकट थे, उसके चेयरमैन बना दिये गये।

स्टेट्समन को इस बात की सज़ा दी गयी कि वह अपने पहले पेज पर श्रीमती गांधी की काफी तस्वीरें नही छापता था। इस अखबार को आदेश दिया गया कि वह अपने सारे पेजो के प्रूफ मजूरी के लिए सेंसर के पास भेजा करे। ये प्रूफ जान-बूझकर सुबह आठ बजे भेजे जाते थे ताकि अखबार वक्त पर न छप सके और उसकी बिक्री गिरती जाये।

बहरहाल, अखबार कोई इतनी बडी समस्या नही थे। उनका गला पूरी तरह घोट दिया गया था। सजय का ध्यान गर कानूनी इमारतो को ढाने या दिल्ली को 'सुन्दर बनाने' के कार्यक्रम पर लगा हुआ था। राजधानी मे फुटपाथो पर दूकानें लगानेवालो पर पाबन्दी लगा दी गयी थी। जामा मस्जिद के पास के छोटे छोटे खोखे तक ढा दिये गये थे। इन दूकानदारो से, *जो बीसियो बरस से वहाँ अपना कारोबार चला रहे थे कहा गया कि वे शहर के बाहर अपनी दूकानें लगायें—लेकिन वहाँ गाहक कहा से आते।*

जामा मस्जिद से हटाये गये दूकानदार इन्दर मोहन के पास गये। वह सूचना और प्रसार मन्त्रालय मे काम करते थे और पहले भी कई बार उनकी मदद कर चुके थे। इन्दर को बताया गया कि सारा फसला सजय के हाथ मे है। इन्दर सजय के पास गये लेकिन उन्होने टका सा जवाब दे दिया। उसी दिन रात को ग्यारह पुलिसवाले इन्दर के घर मे घुस आये और उन्हें मार पीटकर घसीटते हुए बाहर ले गये। जब इन्दर ने अपनी गिरफ्तारी की वजह पूछी तो उनको बताया गया कि इसका हुक्म बहुत ऊपर से आया है। बाद मे उनको फिर बहुत बुरी तरह पीटा गया और तीन दिन बाद

एक वकील ने उ ह छुडवाया।

सजय साबित करना चाहता था कि काई भी उसके रास्ते मे न आय और यह बात उसन बहुत कामयाबी के साथ साबित कर दी। मकान और दूकानें ढाय जान का जो थोडा बहुत विरोध पहले हो भी रहा था वह भी ब द हो गया। लेकिन जब अप्रन 1976 मे तुकमान गेट के इलाके मे घर गिराने का सिलसिला शुरू हुआ तो एक बार फिर बहुत बडे पमाने पर विरोध शुरू हुआ।

करनाल, रोहतक, भिवानी और गुडगाँव मे गरीब लोगो की भुग्गी झोपडियाँ ढा दी गयी और उन्हे रहने के लिए कोई दूसरी जगह भी नही दी गयी। अकेले लखनऊ मे कोई दस हजार इमारतें गिरायी गयी होगी, मदिरो मस्जिदा तक को नही बख्शा गया।

शायद जामा मस्जिद के आस पास घर और दूकानें गिराये जाने पर जा गुस्सा था उसी के सिलसिले मे मस्जिद के इमाम न नमाज़ के वक्त अपने मुरीदो स कहा कि वे नादिरशाही हुकूमत के फरमानो को न मानें। 15 अगस्त के दिन जब श्रीमती गाधी लाल किले के फाटक पर से भाषण दे रही थी उसी वक्त लाल किले के ठीक सामन मस्जिद के ऊपर लाउडस्पीकर लगवाकर इमाम भी तकरीर करके उनसे टक्कर ल रहे थे।

इमर्जेंसी लागू होने के आठ हफ्त बाद अगस्त के महीने मे सजय ने अपनी ताकत आजमाना शुरू किया। उसन सोचा कि अब मुझम खुद इतनी ताकत है कि लोगा को उमे तस्लीम करना चाहिए और उसन कई बाता के बारे मे अपन विचार लोगो के सामने रख देना ही बेहतर समझा।

नई दिल्ली की एक पत्रिका सज के साथ एक इण्टरव्यू के दौरान उसन कहा कि वह उद्यागो के राष्ट्रीयकरण के खिलाफ है, अथत्न्त्र पर किसी तरह के नियन्त्रण के खिलाफ है। वह इस बात के पक्ष मे था कि टक्सा म कमी की जाय (जा बाद म हुई) और दश की आर्थिक हालत मजबूत बनान के लिए प्राइवेट सेक्टर को ज्यादा जिम्मेदारी सौंपी जाय। उसके दक्षिणपथी विचारा को सभी जानते थे और उस कम्यु-निस्टा स नफरत थी। उसन कम्युनिस्ट पार्टी का बहुत बुरा भला कहा और गर कम्युनिस्ट पार्टियाँ भी जिस तरह काम कर रही थी उसमे भी बहुत-सी खराबियाँ गिनायी। उसन कहा 'मैं नही समझता कि इनस ज्यादा मालदार और भ्रष्ट लोग आपका कही और मिल सकत है।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ झुकाव रखनवाले मत्री चन्द्रजीत यादव न श्रीमती गाधी स अगले दिन कहा कि पूरी काग्रेस पार्टी म इस बात पर बहुत खलबली मची हुई है। ताज्जुब की बात तो यह है कि इसके साथ ही उन्हाने यह सुझाव दिया कि सजय को खुलकर राजनीति म हिस्सा लेना चाहिए और यह भी कहा कि श्रीमती गाधी का उस पार्टी के अन्दर कोई काम सौंप दना चाहिए। श्रीमती गाधी न कहा कि उसे राजनीति से कोई दिलचस्पी नही है। उन्हाने उसकी इण्टरव्यू म कही गयी बाता की सफाई दत हुए कहा कि वह काम करता ह, सिर्फ सोचता नही है।'

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का बहुत बुरा लगा। इधर पार्टी ता सिफ इसलिए श्रीमती गाधी का भरपूर साथ द रही थी कि उनका झुकाव सोवियत गुट की तरफ था और उधर उनका बेटा न सिफ दक्षिणपथियो का रवया अपना रहा था बल्कि कम्युनिस्टा पर भी हमले कर रहा था। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के विराध का श्रीमती गाधी पर असर हुआ। समाचार न सजय के इण्टरव्यू का जा पूरा ब्यौरा अखबारा को भेजा था वह वापस ले लिया गया। सिफ इण्डियन एक्सप्रेस न उस छापा था।

सजय ने 28 अगस्त को इण्डियन एक्सप्रेस को अपनी सफ़ाई देते हुए एक बयान भेजा जिसमे कहा गया था, "एक पूरी पार्टी के खिलाफ सभी पर लागू होने वाली ऐसी बात कहने का मेरा कोई इरादा नही था। जाहिर है कि स्वतन्त्र पार्टी, जनसघ और भारतीय लोकदल म इससे भी ज्यादा मालदार लोग हैं और उनमे इससे भी ज्यादा भ्रष्टाचार है। मुझे गुस्सा इसलिए आया कि मैंने सुना है कि कुछ लोग जो अपने को मार्क्सवादी समझते हैं और यह जताते हैं कि वे दूसरो से बढकर हैं, वे बहुत पैसेवाले हैं और ईमानदार भी नही हैं।"

उस दिन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और सजय के बीच ठन गयी। श्रीमती गाधी जानती थी कि सजय को भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से चिढ है, लेकिन वह अकसर उससे कहा करती थी कि अगर वे लोग 'हमारी शर्तों पर हमारे साथ रहना चाहते हैं, तो इसम हमारा नुकसान ही क्या है?'

उनको असली चिन्ता जयप्रकाश की वजह से थी जो भारत की नैतिक अतरात्मा बन चुके थे और महात्मा गाधी के आदर्शों के सच्चे उत्तराधिकारी बन गये थे। उन्हे गाधीजी के आखिरी शिष्य और जयप्रकाश के राजनीतिक गुरु आचार्य विनोबा भावे का ध्यान आया जो उस समय 81 वर्ष के थे। वह 7 सितम्बर को नागपुर के पास पवनार म उनसे मिलने गयी। बाबा ने जयप्रकाश की गिरफ्तारी पर चिन्ता प्रकट की और कहा कि उन्हे बिना किसी शर्त के रिहा कर दिया जाये। अपना एक साल का मौन-व्रत बीच ही म भग करके उन्होने श्रीमती गाधी से कहा कि उनके जीवन की आखिरी इच्छा यही है कि उनके और जयप्रकाश के बीच मेल हो जाये।

आचार्य विनोबा भावे ने खुलेआम इसके अलावा कुछ नही कहा कि इमर्जेंसी 'अनुशासन पर्व' है। सरकार ने उनकी इस राय को नारा बना लिया, यहाँ तक कि डाक टिकटो पर लगायी जाने वाली मुहर मे भी यही नारा लिखा जाने लगा।

वह सरकार की चाल समझ गये और उन्होने पवनार म आचार्यों की सभा बुलायी। उन्होने उनसे देश की मौजूदा स्थिति पर निष्पक्ष भाव से सोच विचार करके 'सुख और शाति' लाने के लिए एक 'अनुशासन' की योजना तैयार करने को कहा।

सचमुच बडे कमाल की बात थी कि भाँति भाँति के लोगो के इस समुदाय म, जिनम वाइस चासलर, जज समाजसेवक और लेखक सभी थे सबकी राय एक थी। तीन दिन की बातचीत के बाद 1,000 शब्दो का जो बयान जारी किया गया उसमे हर बात साफ-साफ और दोटूक ढग से कही गयी थी और बीच का रास्ता अपनाया गया था। इसम अब तक जो कुछ हुआ था उसके लिए किसी को दोष नही दिया गया था। एक तरफ तो उसम इमर्जेंसी लागू होने के बाद से उद्योग अर्थतन्त्र और शिक्षा के क्षेत्र मे जो कई 'रचनात्मक' सुधार हुए थे उनकी सराहना की गयी थी। दूसरी ओर इसी बयान म यह भी कहा गया था कि अहिंसा और सर्वधर्म सम्भावना मे विश्वास रखनेवाले बहुत से सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्त्ताओ को अनिश्चित काल के लिए नजरबन्द कर दिया जाना देश के कल्याण के लिए कोई अच्छी बात नही थी।

आचार्यों के इस बयान पर श्रीमती गाधी इतना झलायी कि श्रीमन्नारायण को, जो आचार्य विनोबा भावे का सदेश लेकर दिल्ली आये थे, एक हफ्ते तक मिलने का कोई वक्त ही नही दिया गया। विनोबा ने श्रीमती गाधी से कोई झगडा नही किया बल्कि उन्होने 'मौजूदा झगडे का जल्द ही कोई हल निकालने के लिए आचार्यों और बुद्धिजीवियो की जो एक और बडी मीटिंग बुलायी थी उसको रद्द कर दिया।

कुछ बुद्धिजीवियो ने विरोध प्रकट करने का एक और रास्ता अपनाया। वे राजघाट मे गाधीजी की समाधि पर 2 अक्टूबर को गाधी जयन्ती के दिन जमा हुए

और वहाँ उन्होंने इमर्जेंसी के खिलाफ नारे लगाये। विरोध प्रकट करनेवालो मे 85 वर्ष के बूढ़े गांधीवादी जे० बी० कृपलानी भी थे। उन्हे पहले तो गिरफ्तार कर लिया गया था, लेकिन बाद म छोड दिया गया। केरल म गाधी जयन्ती के दिन दूर दूर के गाँवो तक मे पोस्टर लगाये गय जिनमे जनता से कहा गया था कि 'अन्याय और अत्याचार के सामने वह कायरता न दिखाये।'

उस दिन एक घटना ने श्रीमती गाधी को दहला दिया। एक आदमी, जिसके पास चाकू था, सिक्योरिटी वालो की नजर स बचकर राजघाट की प्रार्थना-सभा मे उनके पास आकर बैठ गया। रेल उपमंत्री हृष्ट-पुष्ट शफी कुरेशी न उसे पकड लिया। उन्होंने इसकी जाँच का हुक्म दे दिया लेकिन साथ ही उनकी रक्षा के लिए सिक्योरिटी के बन्दोवस्त मे अब 2,000 आदमी तनात कर दिये गये।

गाधी जयन्ती के दिन कामराज की मृत्यु भारत के लिए सबसे बडा धक्का था।

इमर्जेंसी स कामराज को सबसे ज्यादा दु ख पहुचा था। वह कई बार कह चुके थे कि श्रीमती गाधी डिक्टेटर बनने के रास्ते पर आगे बढ रही हैं लेकिन उन्होने कभी यह सोचा भी नही था कि वह सचमुच डिक्टेटर बन जायेंगी। जसा कि मरने से लगभग एक साल पहले उन्होने मुझसे कहा था, उनको डर यह था कि अगर आर्थिक और राजनीतिक एकता लाने मे देर की गयी ता उत्तर और दक्षिण एक-दूसरे से अलग हो जायेंगे। इमर्जेंसी से यह समस्या टल भले ही गयी हो पर वह हल नही हुई थी। दरअसल, मरने से कुछ ही दिन पहले कामराज ने अपने कुछ घनिष्ठ मित्रो को बताया था कि इमर्जेंसी के दौरान उनके लिए करने का कुछ रह ही नही गया था, जयप्रकाश और श्रीमती गाधी के बीच समझौता कराने का काम भी वह नही कर सकते थे क्योंकि श्रीमती गाधी किसी पर भरोसा ही नही करती थी।

जयप्रकाश स उन्होंने एक बार कहा था कि उन्हें श्रीमती गाधी पर रत्ती भर भरोसा नही रह गया है। चूंकि कामराज डी० एम० के० और अन्ना डी० एम० के० दानो ही के विरोधी थे इसलिए उनके वास्त दाँव-पेंच करने की भी ज्यादा गुंजाइश नही रह गयी थी। जसा कि जयप्रकाश ने 3 अक्तूबर को अपनी डायरी मे लिखा, "वह जानते थे कि श्रीमती गाधी जसे छल-कपट करनेवाले नेता को अन्ना डी० एम० के० के साथ समझौता कर लेने मे कोई सकोच नही होगा, और इससे वह बहुत डरते थे। इसलिए, फिलहाल तो उनका रवैया यही था कि अगला चुनाव 'अकेले अपने बल पर' लडा जाये।'

श्रीमती गाधी को इस बात की बहुत जरूरत थी कि दक्षिणी भारत उनका साथ दे। वह जानती थीं कि उत्तर म लोग इमर्जेंसी मे बहुत नाराज हैं। कामराज के मरने के बाद उन्होंने यह 'साबित' करने के लिए एडी चोटी का जोर लगा दिया कि दोनो के बीच जो अनबन थी वह दूर हो गयी थी और दोना एक-दूसरे के बहुत निकट आ गय थे। यह बात सच नही थी लेकिन कामराज से पूछने कौन जाता? श्रीमती गाधी ने कहा कि कामराज तमिलनाडु की सगठन कांग्रेस को उनकी कांग्रेस के साथ मिला देने के लिए तैयार थे। यह सच है कि इमर्जेंसी स पहले कामराज इस बात के लिए राजी थे कि पूरे देश मे सगठन कांग्रेस और कांग्रेस मिलकर एक हो जायें, लेकिन इस शर्त पर कि हर राज्य मे सगठन कांग्रेस के नेताओ को बडी कांग्रेस मे कोई पद दिया जायेगा'।

तमिलनाडु म लोगों पर इस बात का गहरा असर पडा कि कामराज के दाह-संस्कार मे भाग लेने के लिए वह खास तौर पर हवाई जहाज से मद्रास गयी थी, और

कुछ लोग यकीन भी करने लगे कि उन्होने कामराज के कांग्रेस म चले ग्रान की जो बात कही थी वह सच थी, ग्रौर ग्रगर वह कुछ दिन ग्रौर जिन्दा रहत तो ऐसा हो भी जाता। बाद मे जब लोकसभा के चुनाव हुए तो लोगा के इस ढग से सोचन स उन्हे बहुत मदद भी मिली। फसला

दिल्ली के तिहाड जेल म उस दिन रात को जेल का सुपरिटेण्डेण्ट तीन सौ अफसरो ग्रौर कदियो को लेकर दनदनाता हुग्रा वाड न० 15 म घुस ग्राया ग्रौर उसने नजरबन्द कदियो को डराने धमकान की कोशिश की। उसन सोचा कि इन नजरबन्द कदियो की सीधी सादी मांगो का 'जवाब देने के लिए गाधी जयन्ती स ग्रच्छा ग्रौर कौन दिन हो सकता है। इन लोगो की मांगें बहुत सीधी थी—पाखाने पेशाब के लिए बहतर सुविधाएँ दी जायें इलाज का बेहतर इतजाम हो ग्रौर खाने, कपडे ग्रौर मुलाकात के मामल म जेल के कायदे कानूनो पर ग्रमल किया जाये, ग्रौर ग्रदालत म या ग्रस्पताल ले जाते वक्त उनको हथकडी न डाली जाये। तिहाड जेल के नजरबन्द कदियो न 3 ग्रक्तूबर को भी ग्रपनी भूख हडताल जारी रखी। चरणसिंह राजनारायण ग्रौर नानाजी देशमुख न इन मांगो म उनका साथ दिया।

सरकार कुछ नरम पडी ग्रौर उसने नजरबन्द कदियो की कुछ मांगें मान ली। लेकिन नजरबन्दी के कायदे ग्रौर भी सख्त कर दिय गये। 18 ग्रक्तूबर को एक बार फिर मीसा के कानून मे हेर फेर किया गया ग्रौर सरकार के लिए ग्रब यह जरूरी नही रह गया कि वह इस कानून के तहत की गयी गिरफ्तारियो की वजह किसी को बताये ग्रदालतो को भी नही। यह ग्राडिनेंस पिछली तारीख 29 जून स लागू कर दिया गया ताकि जो लोग इस वक्त भी जेला म बन्द थे वे ग्रपनी गिरफ्तारी के खिलाफ ग्रदालतो म कोई फरियाद न कर सकें। यह कदम 13 सितम्बर को मेरी रिहाई के बाद उठाया गया था जब दिल्ली हाईकोट ने यह फैसला सुनाया था कि सरकार ग्रदालत को इस बात के बारे म सतुष्ट नही कर पायी है कि कुलदीप नयर को ग्रातरिक सुरक्षा कानून के ग्रनुसार कानूनी ढग स नजरबन्द किया गया है।' ब्रिटिश समाचार एजेंसी रायटर की खबरें भेजने की लाइन 9 ग्रक्तूबर को काट दी गयी क्योकि उसने सेंसर के नियमा को 'तोडकर यह खबर ग्रौर कुछ ग्रौर खबरें भेज दी थी। लाइन दुबारा वापस लगवाने म तीन महीने लग गये।

मीसा मे ग्रौर ज्यादा सख्ती ग्रौर रायटर की लाइन काट दिये जाने स विदेशा म यह भावना ग्रौर बढ गयी कि भारत तेजी स खुली डिक्टेटरशिप की तरफ बढ रहा है। ग्रमरीका म वाशिंगटन म भारतीय राजदूत टी० एन० कौल की कोठी के पास भारतीय छात्रो न स्वतत्रता का माच करके प्रदशन किया। कौल ने मौका बमौका इमर्जेंसी के पक्ष मे सफाई दी थी ग्रौर यहाँ तक धमकी दी थी कि भारत ने ग्रपन ढग का जो जनतन्त्र बनाया है उस न मानने पर ग्रमरीका को एक दिन पछताना पडगा। उन्हान भारत सरकार के शिक्षा मत्रालय को लिखा कि जो छात्र इमर्जेंसी के गुण नही गात थ उनकी छात्रवत्तिया बन्द कर दी जायें। उन्होन कुछ छात्रा के पासपोट भी रद्द कर दिय क्योकि वे 'भारत को बदनाम करन पर तुले हुए थे।

शिकागो म जीवन के सभी क्षेत्रा के लगभग सौ लोगा ने जिनम वकील, डाक्टर इजीनियर व्यापारी ग्रौर छात्र सभी थे गाधीजी की एक बहुत बडी 10 फुट लम्बी ग्रौर 6 फुट चौडी तसवीर लेकर प्रदशन किया। तसवीर म गाधीजी जजीरा स जकडे हुए थे जिसका मतलब यह दिखाना था कि ग्रगर वह जिन्दा होते तो वह भी जेल म होते।

चह्वाण 9 ग्रक्तूबर को शिकागो म थ, उन्हे बडी मुसीबत का सामना करना

पडा। उनके भाषण मे कई बार लोगो ने शोर मचाया, 'मुर्दाबाद' के नारे लगाये गये। जब यह ऐलान किया गया कि मत्री महोदय सिर्फ लिखकर पूछे गये सवालो का जवाब देंगे तो दर्शको ने बहुत हुल्लड मचाया। इससे पहले 'यूथाव' की एक मीटिंग म उन्होंने कहा था कि "भारत मे जनतन्त्र न सिर्फ यह कि मरा नही है बल्कि अब उसमे पहले से ज्यादा जान और चुस्ती आ गयी है।"

जेनेवा स गिरजाघरो की विश्व परिषद ने 23 अक्तूबर को श्रीमती गाधी से 'जनता का स्वतन्त्र रूप से अपने विचार व्यक्त करने का जनतान्त्रिक अधिकार लौटा देने' का अनुरोध किया। परिषद के जनरल सेक्रेटरी न एक पत्र मे इस बात पर भी 'दुख प्रकट किया कि राजनीतिक लोगो को मुकदमा चलाये बिना कैद कर रखा गया है और जोर देकर यह बात कही कि इमर्जेंसी के दौरान सरकार ने जो अधिकार अपने हाथ मे ले रखे हैं वे 'मानव अधिकारो मे बहुत गम्भीर कटौती का सबूत हैं। श्रीमती गाधी ने इसके जवाब मे कहा कि सविधान मे जिस तरह बताया गया है कि 'कौन-सा काम किससे पहले किया जाये उस क्रम स' इमर्जेंसी पूरी तरह मेल खाती है। उन्होने कहा कि प्रस्तावना म सामाजिक और आर्थिक न्याय की बात पहले कही गयी है और राजनीतिक न्याय की बात बाद मे।

यह बात बहुत से लोगो को ठीक नही लगी लेकिन अब उनके पाँव और भी मजबूत हो चुके थे। इलाहाबाद हाईकोर्ट ने 12 जून को चुनाव के दो अपराधो की बुनियाद पर उनके खिलाफ जो फैसला दिया था उसे सुप्रीम कोर्ट न 12 जून को सभी जजो की एकमत राय से उलट दिया। हाईकोर्ट ने श्रीमती गाधी पर जो यह पाबन्दी लगायी थी कि वह छ साल तक किसी ऐसे पद पर नही रह सकती जिसके लिए चुनाव जीतना जरूरी हो वह भी रद्द कर दी गयी।

पाँच जजो की बेंच का यह फैसला मुकदमे के तथ्यो की बुनियाद पर नही बल्कि चुनाव कानून मे अगस्त मे ससद मे जो हेर फेर किया गया था उसकी बुनियाद पर दिया गया था। इस तरह श्रीमती गाधी दण्ड से बिलकुल मुक्त हो गयी।

सुप्रीम कोर्ट ने तीन जजो के खिलाफ पाच जजो की राय म ससद मे अगस्त के किये गये उस विशेष सशोधन का वह हिस्सा भी रद्द कर दिया जिसमे प्रधानमत्री के चुनाव के बारे मे कोई फैसला देने का अधिकार अदालतो स छीन लिया गया था। इस फैसले से राजनारायण की यह बात सही मान ली गयी कि किसी को इतनी व्यापक छूट का अधिकार देना सविधान की भावना के खिलाफ है।

इन पाँच जजो म से एक जज एम० एच० बेग ने जिन्हे उनकी बारी आने स पहले ही सुप्रीम कोर्ट का चीफ जस्टिस बना दिया गया था, इस मुकदमे म दोनो पक्षो की ओर से पेश की गयी बातो की खूबियो और खामियो की छानबीन की, क्योकि उनका कहना यह था कि मामले का फैसला उस कानून की बुनियाद पर होना चाहिये जो हाईकोर्ट के फैसले के वक्त लागू था। वह इस नतीजे पर पहुँचे कि हाईकोर्ट जिन नतीजो पर पहुँचा था वे बेबुनियाद थे। जस्टिस बेग ने कहा कि ऐसा लगता है कि 'विद्वान जज महोदय को शायद इस बात का जरूरत से ज्यादा आभास था कि वह इस देश के प्रधानमत्री के मुकदमे का फैसला कर रहे हैं।" इसलिए उनको (जस्टिस बेग को), जैसा कि उन्होने अपने फैसले मे बताया भी इस बात की बडी फिक्र थी कि इस बात का असर उनके फैसले पर न पडने पाये। फिर भी जब सबूतो को परखने का वक्त आया तो उन्होने कहा "मुझे ऐसा लगता है कि उन्होने सबूतो का खरापन परखने के लिए एक जैसी कसौटियाँ इस्तेमाल नही की, और इस तरह चुनाव याचिका दायर करनेवाले (राजनारायण) को उस बहुत भारी जिम्मेदारी से छुटकारा दे दिया, जो

उस पक्ष पर होती है जो भ्रष्ट तरीके अपनाने का आरोप लगाकर मतदाताओं के फ़सले को चुनौती देता है। "

श्रीमती गांधी की पार्टी ने इस जीत पर बड़ी खुशियाँ मनायी और कहा, "जनतन्त्र के रास्ते की पूरी तरह जीत हुई। यह फैसला जनतान्त्रिक ताक़तों की जीत है।" लेकिन उनके विरोधियों ने बहुत कटुता के साथ यह कहा कि अदालत के फसले की बुनियाद इस बात पर रखी गयी थी कि संसद ने श्रीमती गांधी की पार्टी की माँग पर चुनाव के कानून को बिलकुल नये सिरे से एक नये ही साँचे में ढाल दिया था और उन्हें यह नया कानून बनने से बहुत पहले की तारीख से ही बरी कर दिया था।

इस फ़ैसले के कुछ ही समय बाद सरकार ने चीफ जस्टिस से अनुरोध किया कि सुप्रीम कोर्ट के उस पिछले फैसले पर भी फिर से विचार किया जाय जिसमें संविधान के बुनियादी ढाँचे में हेर फेर करने के संसद के अधिकार पर कुछ हदें लगा दी गयी थीं। अलग अलग हाईकोर्टों में सरकार के कई कानूनों और अधिनियमों के खिलाफ लगभग 300 रिट इस बुनियाद पर दायर थे कि ये कानून संविधान के बुनियादी ढाँचे से मेल नहीं खाते। नमूने के लिए आन्ध्र प्रदेश का एक मुकदमा लिया गया। एटॉर्नी-जनरल नीरेन डे ने यह दलील दी कि 1973 वाले फैसले में यह बात साफ-साफ नहीं बयान की गयी थी कि संविधान की बुनियादी विशेषताएँ क्या हैं और उस पर फिर से विचार किया जाना चाहिए ताकि संसद को यह मालूम हो सके कि उसकी हैसियत क्या है। पालकीवाला ने आरोप लगाया कि 'किसी भी भारतीय अदालत के सबसे ऐतिहासिक फ़ैसले' पर उस फसले के सुनाये जाने के दो ही साल के अन्दर फिर से विचार कराने की कोशिश करके सरकार ने 'भद्दी किस्म की जल्दबाज़ी' का सबूत दिया है।

सुनवाई के तीसरे दिन के बाद चीफ जस्टिस ने अचानक तेरह जजों की बेंच भंग कर दी। उन्हें पता चल गया था कि ज्यादातर जज फैसले पर दुबारा विचार करने के पक्ष में नहीं हैं। यह सरकार की हार थी—कई महीने में पहली बार।

धुन के पक्के वकीलों ने अपने काम का दायरा और बढ़ा लिया। उन्होंने नजरबन्द कैदियों की रिहाई के लिए और जेलों की हालत सुधारने के लिए हजारों रिट दायर किये।

शान्तिभूषण बंगलौर में कर्नाटक के हाईकोर्ट में आडवाणी, अटलबिहारी वाजपेयी, संगठन कांग्रेस के एस० एन० मिश्रा और सोशलिस्ट नेता मधु दण्डवते की पैरवी कर रहे थे। इमर्जेंसी लागू होने के वक्त ये लोग कर्नाटक में थे। शान्तिभूषण ने कहा, "हम पूरी इमर्जेंसी को और सरकार की तरफ से उठाये गये कदमों को चुनौती दे रहे हैं और इस बात को भी कि ये सारे कदम किस तरह श्रीमती गांधी के कहने के मुताबिक उस गम्भीर खतरनाक साज़िश के हिस्से हैं जिसकी वजह से इमर्जेंसी लागू करने की जरूरत पड़ी।"

दो और वकील, जिन्होंने नजरबन्द कैदियों के मुकदमे फीस लिये बिना लड़कर बहुत नाम कमाया था वे थे वी० एम० तारकुंडे, जो पहले बम्बई हाईकोर्ट के जज रह चुके थे और बम्बई के ही साली सोराबजी। तारकुंडे ने 'सिटिज़ंस फार डमोक्रेसी' नामक एक संस्था को भी सक्रिय किया। इस संस्था ने बुनियादी अधिकार वापस किये जाने की माँग करने के लिए कई मीटिंगें कीं। उसने 12 अक्तूबर को अहमदाबाद में एक सम्मेलन किया जिसमें एम० सी० छागला ने जो बम्बई के चीफ जस्टिस रह चुके थे, सुप्रीम कोर्ट के भूतपूर्व चीफ जस्टिस जे० सी० शाह ने, तारकुंडे मीनू मसानी और कई दूसरे वकीलों ने भाषण दिये।

कनवेंशन का उदघाटन करते हुए छागला ने कहा, "आज जो लोग जेल में हैं उनमे से ज्यादातर को यह भी नहीं मालूम है कि वे वहाँ क्यो हैं और वे अपनी सफाई में कुछ कह भी नही सकते क्योकि जहाँ किसी चीज़ को बदला न जा सकता हो वहाँ सफाई देने का सवाल ही पैदा नही होता। वे और किसी अदालत के सामने भी नहीं जा सकते क्योंकि वे सब चीजें तो अब बन्द हो गयी हैं।"

उनके इस भाषण की वजह से बडौदा के साप्ताहिक अखबार भूमिपुत्र और महात्मा गाधी के कायम किये हुए नवजीवन ट्रस्ट के प्रेस को बड़ी मुसीबत का सामना करना पडा। भूमिपुत्र के प्रेस पर ताला डाल दिया गया। मामला हाईकोट तक गया और उसके जजो ने सेंसर के आदेशो के कुछ हिस्सो को गैर कानूनी ठहराया। यह फैसला भी तब तक नही छपने दिया गया जब तक कि खुद हाईकोट ने इसको छापने की आज्ञा नही दे दी। इसके साथ ही हाईकोट ने यह भी कहा कि 'किसी नागरिक की आजादी के पक्ष मे किसी अदालत का कोई भी फैसला किसी को नुकसान नही पहुँचा सकता।"

नवजीवन ट्रस्ट के प्रेस ने, जहाँ से अंग्रेजों के खिलाफ अपनी लडाई के दिनो मे महात्मा गाधी अपने अखबार यग इण्डिया और हरिजन छपवाते थे, भूमिपुत्र के मुकदमे के बारे मे एक छोटी-सी किताब छापी। पुलिस ने प्रेस पर छापा मारकर उस पर ताला डाल दिया और उसे छ दिन तक बन्द रखा। प्रेस ने गुजरात हाईकोट से फरियाद की। एक वक्त ऐसा आया जब नवजीवन ट्रस्ट के प्रेस के सामने यह सुझाव रखा गया कि उस प्रेस मे जो कुछ भी छपे अगर पहले सेंसर से उसकी मजूरी ले लेने के लिए प्रेस तैयार हो जाये तो सरकार उसके खिलाफ कोई कारवाई नही करेगी। प्रस के मैनेजर जितेन्द्र देसाई ने कहा कि आजादी के बाद ऐसा पहली बार हुआ है कि स्वतन्त्र भारत की सरकार ने एक ऐसी सस्था पर ताला डलवा दिया है जिसे गाधीजी ने देश की आजादी हासिल करने के लिए कायम किया था।

कांग्रेस के कुछ वकीलो ने 8 9 नवम्बर को कर्नाटक राज्य वकील सम्मेलन का आयोजन किया। प्रचार यह किया गया था कि यह सम्मेलन गरीबो को कानूनी मदद देने के सिलसिले मे किया जा रहा है। राज्य सरकार ने इसके लिए 1,00 000 रुपये की मजूरी भी दी थी लेकिन सम्मेलन करनेवालो की असली मशा थी इमर्जेंसी के पक्ष मे एक प्रस्ताव पास करना। बहुत से ऐसे वकीलो को, जो खुलेआम कांग्रेस के खिलाफ थे, डेलीगट नही बनाया गया। 1,800 मे से केवल 600 वकीलो ने इस सम्मेलन म हिस्सा लिया। फिर भी जब श्रीमती गाधी को सुप्रीम कोट मे अपनी अपील मे काम याब होने की बधाई देने का प्रस्ताव सम्मेलन मे रखा गया तो पता यह चला कि केवल 10 वोट उसके पक्ष मे थे और 590 खिलाफ थे।

यह सच है कि यह कर्नाटक की एक अकेली घटना थी, लेकिन सारे देश मे वकीलो के तेवर बहुत बिफरे हुए थे। वकालतखानो मे वे इमर्जेंसी की और उसके साथ जुडी हुई हर चीज़ की खुलेआम निन्दा करते थे।

कुछ वकील इस नतीजे की परवाह किये बिना कानून के शासन के लिए लडते रहे। कितने ही जजो ने भी, जिनमे से ज्यादातर हाईकोट के थे, सत्ताधारियों के समझाने-बुझाने की कोई परवाह नही की। मिसाल के लिए, श्रीमती पद्मा देसाई ने अपने ससुर मोरारजी देसाई से मुलाकात के लिए अदालत मे अर्जी दी, लेकिन मीसा मे नजरबन्द कैदियो की नजरबन्दी की शर्तों के बारे मे जो नियम बनाये गय थे वह कहीं देखने को मिलते ही नहीं थे। दिल्ली के गजट मे व छपे जरूर थे लेकिन उसकी सब 'खत्म हो गयी थी'। दो उत्साही जजो, जस्टिस रगराजन और जस्टिस

सामने इस अर्जी की सुनवाई हुई और उन्होंने पूरे आग्रह के साथ यह बात कही कि सरकार के खुफिया हुक्म कानून पर हावी नहीं हो सकते और उन्होंने नजरबन्द कैदियों के साथ मुलाकात और पत्र-व्यवहार के बारे में इन नियमों की रुकावट डालने वाली धाराओं को रद्द कर दिया। श्रीमती सत्या शर्मा की अर्जी पर, जिनके पति एस० डी० शर्मा ने भी भीमसेन सच्चर की अर्जी पर दस्तखत किये थे, यह फ़ैसला दिया गया कि इमर्जेंसी के दौरान भी हर सरकारी कारवाई को किसी कानून की बुनियाद पर जायज साबित करना जरूरी है। इलाहाबाद के चीफ जस्टिस के० बी० अस्थाना ने, एक प्रोफेसर की नजरबन्दी के बारे में शक जाहिर करते हुए कहा कि किसी गिरफ्तारी को जायज साबित करने के लिए सिर्फ सरकार के कठमुल्लापन के ऐलान ही काफ़ी नहीं हैं।

बम्बई में जस्टिस जे० आर० विमदलाल और जस्टिस पी० एस० शाह ने महाराष्ट्र के नजरबन्दी की शर्तों वाले आदेश में से खुराक, मुलाकात और इलाज से सम्बन्ध रखनेवाली सारी शर्तें रद्द कर दीं। उन्होंने कहा, "नजरबन्द कैदी आम अपराधी जैसा नहीं होता है और नजरबन्द करने के अधिकार का मतलब दण्ड देने का अधिकार नहीं है" और यह कि "किसी भी नजरबन्द कैदी पर जो भी पाबन्दियाँ लगायी जायें वे कम से-कम होनी चाहिये, बस इतनी जितनी कि उसे नजरबन्द रखने के लिए काफी हों।"

महाराष्ट्र के ऐक्टिंग चीफ जस्टिस वी० डी० तुलजापुरकर ने पुलिस के उस हुक्म को रद्द कर दिया जिसके जरिये संविधान में नागरिक स्वतन्त्रताओं और कानून के शासन की समस्याओं पर विचार करने के लिए बुलायी गयी वकीलों की एक प्राइवेट मीटिंग पर पाबन्दी लगा दी गयी थी। उन्होंने कहा, "कोई भी सरकार जो खुली बहस में इमर्जेंसी की शान्तिपूर्ण और रचनात्मक आलोचना को भी दबा देती हो, कोई भी सरकार जो सिर्फ खुशामदियों और चापलूसों के लिए स्वतन्त्रताएँ बाकी रखती है और कोई भी सरकार जो अपने पुलिस के सबसे बड़े अफसरों को इस बात की इजाजत देती है कि वे उसके नागरिकों को अपने उन कामों के लिए भी, जो आम तौर पर किये जाते हैं, जिनके पीछे कोई छिपा हुआ उद्देश्य नहीं होता है और जिनमें कोई खतरा नहीं होता है, पहले इजाजत लेने पर मजबूर करके अपमानित और बेइज्जत करती है, उसे इस बात का कोई नैतिक अधिकार नहीं है कि वह सारी दुनिया के सामने यह ढिंढोरा पीटे कि इस देश में जनतन्त्र बाकी है।"

लेकिन ऐसी मिसालें इक्का-दुक्का ही थीं। कम से कम 400 मुकदमे ऐसे थे, जिनमें मधु लिमये का मुकदमा भी शामिल था जिनमें मुद्दई को अपनी बात कहने तक का मौका दिये बिना ही, एकतरफा सुनवाई करके यह कहकर खारिज कर दिया गया कि उसे वापस ले लिया गया है। सुप्रीम कोर्ट के स्टे ऑर्डर बड़ी बेरहमी के साथ ऐन उस वक्त दिये जाते थे जब छात्र-कैदियों का परीक्षा देने का मौका निकल चुका हो। बम्बई के मेयर का चुनाव भी लगभग टल ही गया था।

जाहिर है कि सरकार की कारवाइयों से वकीलों ने अपना रास्ता नहीं छोड़ा। 7 अप्रैल को, जिस वक्त कि इमर्जेंसी की लहर सबसे ऊँची थी और सबसे खतरनाक हो चुकी थी, दिल्ली के हाईकोर्ट के बार एसोसिएशन ने संजय गांधी के चहेते डी० डी० चावला को हराकर प्राणनाथ लेखी को चुना जो उस वक्त तिहाड़ जेल में तनहाई की कैद काट रहे थे। जिला बार एसोसिएशन ने भी कांग्रेसी उम्मीदवार के खिलाफ एक और बागी वकील कँवरलाल शर्मा को चुना।

यह संजय के लिए खुली चुनौती थी। उसने जिला कोर्ट और सेशन कोर्ट के

वकीलों के, लगभग एक हजार वकीलों के, वकालतखाने तोड़ देने का हुक्म दे दिया। जिस वक्त बुलडोजर इन इमारतों को ढा रहे थे, उस वक्त चारों ओर पुलिस का पहरा था।

चूंकि उस दिन छुट्टी थी इसलिए कोई वकील वहां था नहीं। लेकिन खबर फैली तो सारे वकील बौखलाकर अपना सामान बचाने के लिए भागे भागे वहां पहुंचे। उन्हें बड़ी बेरहमी से खदेड़ दिया गया, और कुछ के पीछे तो पुलिस इतनी बुरी तरह पड़ी कि वे लगभग एक महीने तक छिपे रहे। अगले दिन बार एसोसिएशन के मेम्बरों का एक दल इसके खिलाफ अपनी आवाज उठाने के लिए चीफ जस्टिस टी० वी० आर० ताताचारी से मिला। तेतालीस वकीलों को, जो एक ही बस पर सफर कर रहे थे, फौरन गिरफ्तार कर लिया गया—24 को मीसा में और 19 को डी० आई० आर० में। केन्द्रीय सरकार के गृह और आवास राज्यमंत्री एच० के० एल० भगत ने एक और डेलीगेशन से कहा कि शायद डी० डी० ए० के साथ 'किसी रंजिश की वजह से' ही उनके वकालतखाने ढाये गये हैं। ओम मेहता ने एक तीसरे दल को यह यकीन दिलाया कि अब और कोई तबाही नहीं होगी।

लेकिन अगले इतवार को भी डी० डी० ए० ने 200 और वकीलों के कैबिन तोड़ डाले। बाकी बचे हुए लगभग 500 वकालतखाने छुट्टियों के दौरान बड़ी बेरहमी से वहां से हटा दिये गये। शाहदरा और पार्लियामेंट की फौजदारी की अदालतों में भी सरकार की तरफ से इसी तरह की गुण्डागर्दी की गयी। कुल मिलाकर अट्ठावन वकील जेल में ठूस दिये गये। उनमें से सिर्फ एक अशोक सापरा को रिहा किया गया। वह पुलिस के डी० आई० जी० (जेल) का बेटा था और उसे रात के वक्त चुपचाप छोड़ दिया गया था।

लेकिन वकीलों की बात और थी। बाकी लोग इमर्जेंसी को कमोबेश जिन्दगी का ढर्रा समझने लगे थे। कुछ तो 'शांति और अनुशासन' के गुण भी गाते थे। कॉलिजों-यूनिवर्सिटियों में छात्र भी, जिनसे जयप्रकाश को बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं, कमोबेश चुप हो गये थे।

ऐसा नहीं है कि उन्होंने विरोध किया ही नहीं था। दिल्ली की जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी में छात्रों ने अगस्त में एक दिन की और सितम्बर में तीन दिन की हड़ताल की। दूसरी यूनिवर्सिटियों की तरह यहां भी खुफिया पुलिसवालों की भरमार थी। जब पन्द्रह छात्रों को जो यूनिवर्सिटी में भरती किये जाने के लिए हर तरह से योग्य थे दाखिला देने से इंकार कर दिया गया तो छात्र यूनियन के प्रेसिडेंट ने इसके खिलाफ आवाज उठायी। वाइस चान्सलर ने उसे यूनिवर्सिटी से निकाल दिया। दिल्ली यूनिवर्सिटी में 500 अध्यापक और छात्र गिरफ्तार किये गये जिनमें एक युवक नेता अरुण जेटली भी था। दिल्ली के कुछ छात्रों को उनके स्कूलों से दो साल के लिए निकाल दिया गया था। हाईकोर्ट ने उन्हें फिर से स्कूल में वापस लेने का हुक्म दिया। कुछ पुलिस इंसपेक्टरों ने कॉलिजों और यूनिवर्सिटियों में नाम लिखवा लिया था।

नई दिल्ली के नेशनल स्टेडियम में 19 नवम्बर को एक विरोध प्रदर्शन हुआ। इसमें सबसे आगे आगे चौदह से सत्रह वर्ष की उमर तक के चौबीस लड़के थे। उनमें से दो लड़कों ने झपटकर माइक्रोफोन ले लिया और जोर से चिल्लाये, "इंदिरा, हम तेरी जेलों को भर देंगे, पर तेरे अत्याचार के आगे कभी सर नहीं झुकायेंगे।"

लेकिन विरोध के इन छुटपुट प्रदर्शनों के बाद छात्र और अध्यापक दोनों ही एक ऐसी जिन्दगी बिताने लगे जो उन्हें पसन्द तो नहीं थी लेकिन क्या करते, वह एक नंगी हकीकत थी।

उन्ही दिनो अण्डरग्राउण्ड से एक पर्चा बाँटा गया था, जिसमे भारत की दशा फसला बहुत सही सही बयान की गयी थी

सब कुछ ईश्वर के हाथ मे है। ऐसा लगता है कि देश की ऐसी दुदशा इससे पहले कभी नहीं थी। स्वाथ बेहद बढ गया है। अब कोई पार्टी नहीं रह गयी है। एक आदमी की हुकूमत है। बाकी सब लोग अब उसके हाथ के खिलौने हैं। आम लोगो और सरकार के छोटे बडे अफसरो की जबान पर ताला लग गया है और उनम कुछ भी करन की ताकत नही रह गयी है। जनता कराह रही है।

लेकिन उसकी बात सुननेवाला और उसे बचानेवाला है कौन ? शायद किसी ने कभी सोचा भी नही था कि ऐसी भी हालत हो सकती है। लोगो की चेतना इमर्जेंसी के डर के नीचे दबकर रह गयी है। लेकिन ऐसा लगता है कि अब इंदिरा गाधी को इस बात का एहसास होता जा रहा है कि उन्होंने क्या हालत पैदा कर दी है। रोज नये नये आर्डिनेंस जारी किय जा रहे हैं। अब वह खुद और उनका बेटा सजय गाधी अकेले ही सरकार चला रहे हैं। अब सरकार की बागडोर गुण्डो के हाथ मे है। देश इस मुसीबत से कस उबरेगा, यह कोई नही जनता।

लाखो लोग जेलों म हैं। उनके परिवारवालो की हालत दिन ब दिन बिगडती जा रही है। बहुत से लोगो की नौकरियाँ छिन गयी हैं। कितने ही लडको की पढाई छूट गयी है। यूनिवर्सिटिया और कॉलिजो के बहुत-से अध्यापक इस समय जलो मे बन्द हैं। बूढो नौजवानो और बच्चो तक को डराया धमकाया जा रहा है। अब खुला पुलिस राज है। उनकी बेरहमी और उनके जुम अब बर्दाश्त के बाहर होत जा रहे हैं।

कोई आर्थिक लाभ भी तो नही हुए थ। श्रीमती गांधी अभी तक यह नही साबित कर पायी थी कि भारत जसे गरीब देशो को दरिद्रता की दलदल स बाहर निकलने के लिए रहमदिल निरकुश शासको की जरूरत होती है। सच तो यह है कि देश म आर्थिक बदइन्तजामी की शुरुआत 1966 म उनकी सरकार बनते ही हो गयी थी, जब उन्होंने रुपये का भाव घटा दिया था।

अगर हम थोक कीमतो के मामले मे बुनियाद 1950 51 के साल को बनायें जिस साल से योजनाओ का दौर शुरू हुआ था और यह मान लें कि उस साल कीमतो का स्तर 100 था, तो उसके बाद के पन्द्रह वर्षों मे वह 148 तक पहुच गया था यानी 48 फीसदी बढ गया था। 1966-67 से जिस साल श्रीमती गांधी ने शासन की बाग डोर अपने हाथों म सँभाली थी 1974 75 तक थोक कीमतो का स्तर 148 से बढ़कर 351 तक पहुँच गया था। मतलब यह कि उनके शासन के नौ वर्षों के दौरान कीमतें 137 फीसदी स ज्यादा बढी थी।

दूसरी तरफ 1950-51 म देश म 20 अरब 16 करोड रुपये के नोट चल रहे थे, 1965-66 म यह रकम बढ़कर 45 अरब 30 करोड रुपये तक पहुँच गयी थी यानी लगभग पन्द्रह साल मे दुगने म कुछ अधिक। लेकिन 1965 66 और 1974 75 के बीच यह रकम 115 अरब रुपये हो गयी। किसी भी पैमाने स नापन पर यह बहुत तेज रफ्तार थी।

जहाँ तक कारखाना की पदावार का सवाल था 1966 मे वह 153 प्वाइट तक

पहुँच चुका था। (इसी पैमाने पर 1951 मे यह उत्पादन 55 प्वाइंट पर था।) मतलब यह कि औद्योगिक उत्पादन हर साल लगभग 6 5 फीसदी की रफ्तार से बढ रहा था। 1965 66 और 1974 75 के बीच वह 208 प्वाइंट तक पहुँचा, जिससे यह पता चलता है कि हर साल औद्योगिक उत्पादन सिफ 4 फीसदी से भी कम की रफ्तार से बढ रहा था। और सो भी तब जबकि लगातार फसल अच्छी होने की वजह से काफी राहत मिल गयी थी।

1950 51 मे बचत कुल राष्ट्रीय आमदनी की केवल 5 7 फीसदी थी, इतने नीचे स्तर स बढकर 1965 66 मे वह 13 3 फीसदी तक पहुच गयी थी। लेकिन 1965 66 और 1974 75 के बीच यह दर लगातार गिरती ही गयी और फिर कभी पहलेवाले स्तर तक नहीं पहुँच सकी। वह 11 से 13 प्रतिशत के बीच घटती-बढती रही। सबसे ज्यादा पूजी 1966 67 मे लगायी गयी जब कुल राष्ट्रीय आमदनी का 15 3 फीसदी फिर पूजी के रूप मे लगा दिया गया था। इसके बाद के वर्षों मे यह दर लगातार गिरती ही गयी। 1968 69 मे तो वह गिरत गिरते 10 2 फीसदी तक पहुच गयी और 1974 75 म भी वह इससे बहुत अधिक नही थी।

बहुत ही कम बचत, सीमित नयी पूजी सुस्त उद्योग, प्रचलित मुद्रा मे तेजी से बढती और 1973-75 मे सूखे के वर्षों के दौरान खेती की पैदावार में बेहद कमी का नतीजा आर्थिक सकट के अलावा और हो ही क्या सकता था। 1974 और 1975 मे देश को आर्थिक सकट का सामना करना ही पडा। ऐसा लगता था कि उनकी आर्थिक मजबूरियाँ ऐसी थी कि इमर्जेंसी जैसी कोई चीज लागू किये बिना श्रीमती गाधी का काम नहीं चल सकता था।

श्रीमती गाधी को सहारा इस बात से मिला कि 1975 76 मे जितनी अच्छी फसल हुई उतनी उससे पहले कभी नही हुई थी। उस साल 12 करोड 8 लाख टन अनाज पैदा हुआ था जबकि उससे पहलेवाले साल 1974-75 मे कुल पदावार 9 करोड 98 लाख टन हुई थी। फिर स्मगलरो के खिलाफ मुहिम चलायी गयी थी, जिसकी वजह से स्मगलिंग के धधे म न सिफ जोखिम बढ गया था बल्कि वह महँगा भी पडने लगा था। हाजी मस्तान और यूसुफ पटेल जसे चोटी के स्मगलरा सहित 288 स्मगलर गिरफ्तार कर लिये गये थे और 177 की जायदादें जब्त कर ली गयी थी। 1 जुलाई को एक ऑर्डिनेंस जारी किया गया जिसके अनुसार अब यह जरूरी नही रह गया कि जो लोग विदेशी मुद्रा की बचत और स्मगलिंग की रोकथाम के कानून मे पकडे जायें उन्ह उनकी गिरफ्तारी की वजह बतायी जाये। अगर देश के हित मे उन्ह नजरबन्द रखना जरूरी समझा जाय तो उनका मामला सलाहकार बोड के सामने भेजने की भी जरूरत नही थी। (गायत्री देवी इसी कानून मे पकडी गयी थी।)

सरकार ने रुपये के भाव को किसी विदेशी मुद्रा के भाव के साथ 'बाँधकर न रखने का भी फसला किया ताकि विदेशो मे रहनेवाले हिंदुस्तानी अपना पैसा सरकारी रास्तो स भेज सकें क्योंकि काले बाजार में भी भाव कुछ बेहतर नहीं था। अब इस तरह हर साल 80 करोड रुपये के बजाय 2 अरब रुपया आने लगा।

मीसा के डर की वजह से कारखानो मे भी शान्ति थी। कोई हडताल करने का मौका नही दिया जाता था और अगर कोई हडताल होती भी थी तो पुलिस बीच मे पडकर उस 'तय' करा देती थी। इसमे ट्रेड यूनियन तो नही खुश थे लेकिन मिल मालिक बहुत खुश थ। ट्रेड यूनियनवाले या भी कुछ करने मे डरते थे। जिस वक्त बोनस कानून रद्द किया गया और मालिको के लिए यह जरूरी नही रह गया कि नुकसान होते हुए भी व लाजिमी तौर पर तनख्वाह का 8 33 फीसदी बोनस दें, उस

बहुत जरूरी है।

हालांकि यह पत्र 10 मार्च 1975 को लिखा गया था, लेकिन उसमें 'कर्तव्य और जिम्मेदारी' की बात कही गयी थी—वही बात जो इमर्जेंसी के दौरान श्रीमती गांधी अपने हर भाषण में कहती थी।

उनके इस पत्र से लोग ताज्जुब से चौंक पड़े और लोगों में खलबली मच गयी। कुछ दिन तक सेक्रेटेरियट के बरामदों में यह अफवाहें गूंजती रही कि कुछ बुनियादी परिवर्तन और सुधार होनेवाले हैं। प्रधानमंत्री के आदेशों के अनुसार हर विभाग और हर मंत्रालय में इसके बारे में दौड़ धूप होने लगी। कई कबिनेट के मंत्रियों और मुख्य-मंत्रियों ने इसके जवाब में प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर शासन की समस्याओं के बारे में उनकी 'दूरदर्शिता और गहरी समझ बूझ' के लिए उनकी प्रशंसा करने के बाद—यह रस्म तो उन्हें पूरी करनी ही पड़ती थी—कुछ और विचार और सुझाव अपनी तरफ से रखे।

श्रीमती गांधी ने किसी भी पत्र का जवाब नहीं दिया, उन्होंने उनको पढ़ा तक नहीं। सारे खत उनके सेक्रेटेरियट और कबिनेट सेक्रेटरी के पास भेज दिये गये। इसके बाद किसी ने उनके बारे में कुछ भी नहीं सुना।

लेकिन जब उन्होंने 25 अप्रल को एक दूसरा खत लिखकर उन्हें सभी स्तरों पर प्रशासन को चुस्त करने के बारे में अपने पिछले खत की याद दिलायी तो कबिनेट के सभी मंत्री और मुख्यमंत्री दंग रह गये। उन्होंने इसके साथ 'प्रशासन की कार्य कुशलता में सुधार' के बारे में एक लम्बा चौड़ा चौदह पन्ने का नोट भी नत्थी कर दिया जिसे एस० पी० सिंह और एल० के० झा ने तैयार किया था, जो ऊँचे सरकारी पदों से रिटायर हो चुके थे। उन्होंने एक बार फिर मंत्रियों से प्रशासन को सुधारने और निजी तौर पर ध्यान देने के लिए कहा और प्रशासन को चुस्त और फुर्तीला बनाने के लिए उनसे और सुझाव मांगे। एक बार फिर सेक्रेटेरियट में उनके इस खत की चर्चा होने लगी। हर मंत्री ने अपने बड़े बड़े अफसरों के साथ कई कई बार मीटिंगें की और हर सेक्रेटरी ने अपने सभी अफसरों के साथ उन पर पूरा भरोसा करके बातचीत की। हर पन्द्रह दिन में एक बार इस सिलसिले में की गयी कारवाई की रिपोर्ट कबिनेट सेक्रेटरी को भेजनी थी। नतीजा वही रहा—सरकार की मशीनरी टस से मस नहीं हुई काम काज के वही लम्बे चक्करदार तरीके और कर्मचारियों में वही जात पांत का भेद-भाव।

लेकिन इमर्जेंसी का सहारा लेकर सरकार ने केन्द्र के 200 अफसरों को और राज्यों में और भी बहुत सारे अफसरों को रिटायर कर दिया। 1960 के बाद से यह कानून चला आ रहा था कि पचास साल की उम्र के बाद निकम्मे कर्मचारियों की छँटनी की जा सकती है। जो अफसर कोई गैर कानूनी काम करने से इंकार करते थे उनको सजा देने के लिए इस वक्त यह कानून बहुत काम आया।

श्रीमती गांधी अपने बेटे और उसके गुर्गों के साथ मिलकर शासन करके बहुत संतुष्ट थी। एक तरफ तो कीमतों में कुछ ठहराव आ गया था और नये नोट छापते जाने की जरूरत लगभग बिलकुल खत्म हो गयी थी और दूसरी ओर प्रशासन भी 'कहना मानने लगा था। इन बातों की वजह से श्रीमती गांधी और संजय का अपने ऊपर भरोसा बढ़ गया। अब वे लोग कुछ जोखिम भी मोल ले सकते थे।

यही वह वक्त था जब श्रीमती गांधी ने कुछ दिन के लिए जयप्रकाश को छोड़ देने की बात सोची। उनके स्वास्थ्य के बारे में जो खबरें आ रही थीं वे कुछ अच्छी नहीं थीं। अगर उन्हें कुछ हो गया तो लोग चुप नहीं बैठेंगे। वे श्रीमती गांधी को और उनकी सरकार को कभी माफ नहीं करेंगे।

वक्त लगभग सभी ट्रेड यूनियन चुप बठे रहे। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने कुछ शोर मचाया लेकिन सिर्फ अखबारो मे।

कारखानो मे शांति और 'कुछ कर दिखाने' की सरकार की कोशिशो की वजह से कारखानो को अपनी बेकार पडी हुई क्षमता को भी इस्तेमाल करने मे मदद मिली। इसका एक और नतीजा हुआ—भरमार। ज्यादातर मिल मालिक शिकायत करने लगे कि उनका माल खरीदने के लिए काफी ग्राहक ही नही हैं और माल जमा होता जा रहा है। सरकार ने इसके बारे मे कुछ नही किया, उसको सिर्फ यह फिक्र थी कि ताला बन्दी या बैठकी न होने पाये। और किसी चीज का कोई महत्त्व नही था।

इसके लिए क्या इमर्जेंसी की जरूरत थी? सच तो यह है कि जो भी काम याबी मिली थी उसका ज्यादातर हिस्सा कारोबारी ढग से सोचनेवाले उद्योग मत्री टी० ए० पई की उन कोशिशो का नतीजा था जो उन्होने 1974 मे मत्री बनने के बाद से की थी। स्मगलरो के खिलाफ भी 1974 से ही मुहिम चलायी जा रही थी, जब गणेश वित्त मत्रालय मे राज्यमत्री थे।

इमर्जेंसी का नौकरशाही के निकम्मेपन और सुस्ती पर कोई खास असर नही हुआ। श्रीमती गाधी ने केन्द्रीय मत्रालयो और राज्यो की सरकारो को कमजोर करके बहुत-सी ताकत अपने सेक्रेटेरियट के हाथो मे सौप दी थी। उनका सेक्रेटेरियट मत्रियो और मत्रालयो के साथ लगे हुए स्पेशल असिस्टेंटो, आई० ए० एस० के अफसरो और प्राइवेट सेक्रेटरियो के जरिये रक्षा मत्रालय मे एस० के० मिश्रा वाणिज्य मत्रालय मे एन० के० सिंह और सूचना मत्रालय मे वी० एस० त्रिपाठी जसे लोगो के जरिये—सरकार की पूरी मशीनरी को अपनी मुट्ठी मे रखता था। धीरे धीरे उनके हाथो मे असली ताकत आती गयी और वे पालिसियाँ बनाने लगे। सजय उनको उनका पहला नाम लेकर पुकारता था।

सच पूछा जाये तो श्रीमती गाधी को प्रशासन को सुधारने मे कभी सजीदगी से दिलचस्पी थी ही नहीं। पहले तो उन्होने यह बहाना बनाकर इस काम को टाला कि मोरारजी की अध्यक्षता मे प्रशासन सुधार कमीशन ने कुछ सिफारिशें की थी, जिनकी छानबीन भारत सरकार के सेक्रेटरियो ने अभी नही की है। जब इस धीमी रफ्तार की आलोचना की गयी तो उन्होंने इन सिफारिशो को अन्तिम रूप देने के काम पर तीन मत्रियो की एक टोली को लगा दिया—मोहन कुमार मगलम डी० पी० धर और टी० ए० पई। कई लम्बे चौडे पेपर और सुझाव तयार किये गये लेकिन सबको उठाकर ताक पर रख दिया गया।

यह समझा जाता था कि इस पूरी व्यवस्था को बनाये रखने और चलाने के लिए उनका सेक्रेटेरियट, अलग अलग मत्रालयो मे काम करनेवाले स्पेशल असिस्टेंट और 'रों के लोग काफी हैं। लेकिन जनता के सामने अपने भाषणो म और फाइलो पर अपनी छुटपुट टिप्पणियो म वह सरकारी काम-काज की धीमी रफ्तार मे अपनी दिलचस्पी दिखाती रही और उस पर चिन्ता प्रकट करती रही।

उन्होने सभी मुख्यमत्रियो और कबिनेट के मत्रियो को सभी स्तरो पर प्रशासन को चुस्त बनाने के लिए एक पत्र लिखा। उन्होने कहा, "हम बहुत कठिन दौर से गुजर रहे हैं। कुदरती बात है कि जिन लोगो के हाथ म सरकार का काम-काज चलाने की जिम्मेदारी है उनसे जनता ज्यादा उम्मीद रखती है। आलस, लापरवाही या अनुशासन हीनता की कोई गुजाइश नही है। हर आदमी को अपना काम पूरी मुस्तदी के साथ करना चाहिये। हर दर्जे के सरकारी नौकरों के अधिकार हैं। लेकिन कर्तव्य और जिम्मेदारी के बिना अधिकार का सवाल ही पदा नहीं हो सकता। कारगर नेतृत्व

बहुत जरूरी है।

हालाँकि यह पत्र 10 मार्च 1975 को लिखा गया था, लेकिन उसमे 'कतव्य और जिम्मेदारी' की बात कही गयी थी—वही बात जो इमर्जेंसी के दौरान श्रीमती गाधी अपने हर भाषण मे कहती थी।

उनके इस पत्र से लोग ताज्जुब से चौंक पडे और लोगो मे खलबली मच गयी। कुछ दिन तक सेक्रेटेरियट के बरामदो मे यह अफवाह गूजती रही कि कुछ बुनियादी परिवर्तन और सुधार होनेवाले हैं। प्रधानमत्री के आदेशो के अनुसार हर विभाग और हर मत्रालय मे इसके बारे मे दौड धूप होने लगी। कई कैबिनेट के मत्रियो और मुख्य-मत्रियो ने इसके जवाब मे प्रधानमत्री को पत्र लिखकर शासन की समस्याओ के बारे में उनकी 'दूरदर्शिता और गहरी समझ बूझ' के लिए उनकी प्रशसा करने के बाद—यह रस्म तो उन्हे पूरी करनी ही पडती थी—कुछ और विचार और सुझाव अपनी तरफ से रखे।

श्रीमती गाधी ने किसी भी पत्र का जवाब नही दिया, उन्होने उनको पढा तक नही। सारे खत उनके सेक्रेटेरियट और कैबिनेट सक्रेटरी के पास भेज दिये गये। इसके बाद किसी ने उनके बारे मे कुछ भी नही सुना।

लेकिन जब उन्होंने 25 अप्रल को एक दूसरा खत लिखकर उन्हे सभी स्तरो पर प्रशासन को चुस्त करने के बारे मे अपने पिछले खत की याद दिलायी तो कैबिनेट के सभी मत्री और मुख्यमत्री दग रह गये। उन्होने इसके साथ 'प्रशासन की काय कुशलता मे सुधार' के बारे मे एक लम्बा चौडा चौन्ह पन्न का नोट भी नत्थी कर दिया, जिसे एल० पी० सिंह और एल० के० झा ने तैयार किया था, जो ऊँचे सरकारी पदो से रिटायर हो चुके थे। उन्होने एक बार फिर मत्रियो से प्रशासन को सुधारने और निजी तौर पर ध्यान देने के लिए कहा और प्रशासन को चुस्त और फुर्तीला बनाने के लिए उनसे और सुझाव माँगे। एक बार फिर सेक्रेटेरियट मे उनके इस खत की चर्चा होने लगी। हर मत्री ने अपने बड बडे अफसरो के साथ कई-कई बार मीटिंगें की और हर सेक्रेटरी ने अपने सभी अफसरो के साथ उन पर पूरा भरोसा करके बातचीत की। हर पन्द्रह दिन मे एक बार इस सिलसिले मे की गयी कारवाई की रिपोट कैबिनेट सेक्रेटरी को भेजनी थी। नतीजा वही रहा—सरकार की मशीनरी टस से मस नही हुई, काम काज के वही लम्बे चक्करदार तरीके और कमचारियो म वही जात पाँत का भेद भाव।

लेकिन इमर्जेंसी का सहारा लेकर सरकार ने केन्द्र के 200 अफसरो को और राज्यो मे और भी बहुत सारे अफसरो को रिटायर कर दिया। 1960 के बाद से यह कानून चला आ रहा था कि पचास साल की उम्र के बाद निकम्मे कमचारियो की छँटनी की जा सकती है। जो अफसर कोई गैर कानूनी काम करने से इकार करते थे उनको सजा देने के लिए इस वक्त यह कानून बहुत काम आया।

श्रीमती गाधी अपने बेटे और उसके गुर्गों के साथ मिलकर शासन करके बहुत सतुष्ट थी। एक तरफ तो कीमतो मे कुछ ठहराव आ गया था और नये नोट छापते जाने की जरूरत लगभग बिलकुल खत्म हो गयी थी और दूसरी ओर प्रशासन भी 'कहना मानने लगा था। इन बातो की वजह से श्रीमती गाधी और सजय का अपने ऊपर भरोसा बढ गया। अब वे लोग कुछ जोखिम भी मोल ले सकते थे।

यही वह वक्त था जब श्रीमती गाधी ने कुछ दिन के लिए जयप्रकाश को छोड देने की बात सोची। उनके स्वास्थ्य के बारे मे जो खबरें आ रही थी वे कुछ अच्छी नही थी। अगर उन्हे कुछ हो गया तो लोग चुप नही बैठेंगे। वे श्रीमती गाधी को और उनकी सरकार को कभी माफ नही करेंगे।

एक वक्त तो जयप्रकाश की हालत इतनी नाजुक हो गयी थी कि उनके अंतिम संस्कार की भी तैयारी कर ली गयी थी। अखबारों ने उनका शोक समाचार भी तैयार कर लिया था। न जाने क्या विद्याचरण शुक्ल ने यह आदेश दिया था कि जयप्रकाश के बारे में जो कुछ लिखा जाये उसमे इस बात का कोई जिक्र न किया जाये कि उनके और नेहरू के बीच दोस्ती थी।

उनका स्वास्थ्य तो खराब था ही, इसके अलावा श्रीमती गांधी को यह भी पता चला था कि जयप्रकाश बहुत निराश हो चुके हैं और जनता के साथ और देश के साथ जो कुछ भी हुआ था उसके लिए अपने को दोषी समझते थे। उनके नजदीकी सेक्रेटरी पी० एन० धर ने, जिन्होंने हक्सर के बाद यह पद संभाला था, सलाह मशविरा करने के बाद गांधी अध्ययन संस्थान (इंस्टीच्यूट ऑफ गांधी स्टडीज) के सुगतदास गुप्ता को जयप्रकाश से मिलकर उनके विचार मालूम करने के लिए भेजा। धर का कहना यह था कि जयप्रकाश और श्रीमती गांधी किसी 'गलतफहमी' की वजह से एक-दूसरे से अलग हटते गये हैं और उस गलतफहमी को 'दूर किया जा सकता है'। दास गुप्ता को ऐसा लगा कि जयप्रकाश पिछली बातों के बारे में सोच विचार करने की मुद्रा में हैं। सच बात तो यह है कि अपनी गिरफ्तारी के बाद पहली बार जयप्रकाश को दास गुप्ता से इस बात की एक पूरी तसवीर मिली कि देश में क्या हुआ था और उससे उन्हें बहुत दुःख हुआ।

जयप्रकाश बाढ़ पीड़ितों की मदद करने के लिए पटना भी जाना चाह रहे थे। ऐसा कर सकने के लिए उन्होंने 27 अगस्त को एक महीने के लिए परोल पर छोड़ दिये जाने की प्रार्थना भी की थी। इसके जवाब में श्रीमती गांधी ने कृषि मंत्रालय के सेक्रेटरी बलबीर वोहरा को उन्हें विस्तार के साथ यह बताने के लिए भेजा था कि पटना के लोगों को राहत पहुँचाने के लिए क्या-क्या किया जा रहा है। लेकिन उन्होंने गाँवों के बारे में कुछ नहीं बताया जिससे जयप्रकाश को बड़ी चिंता हुई।

लेकिन 17 सितम्बर को जो पत्र लिखा, उसमें उन्होंने केवल बाढ़ का जिक्र नहीं किया था। उन्होंने कहा था, 'न सिर्फ यह कि बिहार में बाढ़ की स्थिति बिगड़ गयी है, बल्कि देश के दूसरे हिस्सों में भी बाढ़ आयी है। ऐसे वक्त में किसी के कोई आंदोलन या संघर्ष छेड़ने का सवाल ही पैदा नहीं होता। अगर यह मान भी लिया जाये कि राजनीतिक इमर्जेंसी की कभी कोई जरूरत भी थी तब भी वह तो अब खत्म हो चुकी है और अब उसकी जगह इंसानों की मुसीबत की एक इमर्जेंसी आ गयी है, जिसका मुकाबला करने के लिए सारे देश को मिलकर जोर लगाना चाहिए।'

श्रीमती गांधी ने इस खत में जितना कहने की कोशिश की गयी थी उससे कहीं ज्यादा उसका मतलब लगाया। इसमें तो कोई शक नहीं है कि जयप्रकाश बहुत निराश थे। लेकिन देश को डिक्टेटरशिप से बचाने का उनका पक्का इरादा किसी भी तरह कमजोर नहीं हुआ था। श्रीमती गांधी को उनका 'भ्रम टूट जाने के बारे में जो खबरें मिलती रही थीं उनसे भी उन्होंने जरूरत से ज्यादा मतलब निकाला। उन्होंने जयप्रकाश को पहले तीस दिन के परोल पर छोड़कर उनकी हरकतों को देखने का फैसला किया।

संजय उनके छोड़े जाने के खिलाफ था लेकिन परोल पर छोड़ दिये जाने में उसे कोई खास हर्ज दिखायी नहीं दिया क्योंकि उस हालत में जयप्रकाश को राजनीति से दूर रहना पड़ेगा। लेकिन जयप्रकाश ने सरकार को यह बात साफ-साफ बता दी थी कि वह फिर सक्रिय रूप से श्रीमती गांधी का विरोध शुरू करने का इरादा रखते हैं।

जयप्रकाश 12 नवम्बर को रिहा किये गये। सरकार ने इसके बारे मे एक छोटी-सी खबर अखबारो मे छपने की इजाजत दे दी। सरकार ने यह भी नही बताया कि उन्हे किन शर्तों पर पैरोल पर छोडा गया है। उनके राजनीतिक साथियो का कहना था कि उन्हे इलाज के लिए छोडा गया है। डॉक्टरो की राय थी कि वह 'गुर्दे मे खराबी' की वजह से बहुत कमजोर हो गये हैं।

श्रीमती गाधी देखना चाहती थी कि इसके बाद उनका—और जनता का—क्या रवैया होता है। बहरहाल, इस वक्त पलडा तो उनका भारी था ही।

सुरग का छोर

जयप्रकाश ने जनता के चेहरे पर भय छाया हुआ देखा। चडीगढ म उनका स्वागत करने भी बहुत लोग नही आये थे। दो दिन बाद जब वह इडियन एयरलाइस के हवाई जहाज से चडीगढ से दिल्ली पहुँचे तो यहाँ भी हवाई अड्डे पर थोडे ही स लोग थे और उनक नाम भी खुफिया पुलिसवालो ने दज कर लिये थे। गाधी शाति प्रतिष्ठान पर भी जहा वह ठहरे थे, बराबर कडी नजर रखी जा रही थी।

अगर श्रीमती गाधी समझती थी कि वह बदल गये हैं तो यह उनकी भूल थी। वह नाइजेरिया के उस कवि और नाटककार वाले सोयिका की तरह थे जिसने दो साल जेल म काटने के बाद अपने ऊपर उसके असर के बारे मे कहा था, 'आप वहाँ से बाहर निकलत समय भी उन्ही सब चीजा पर विश्वास रखते हैं जिन पर वहाँ जाने से पहले रखते थे, लेकिन पहले के मुकाबले मे ज्यादा पक्का विश्वास।'

जयप्रकाश ने सुमत से कहा था कि जो कुछ हुआ है उसके बाद धर मुझसे यह उम्मीद तो नही रखते होगे कि मैं श्रीमती गाधी का साथ दूगा या उनका हाथ बटाऊँगा। अगर चुनाव करान का ऐलान कर दिया जाता है तो मैं सरकार के साथ टकराव खत्म कर देने की पैरवी करूँगा। दिल्ली पहुँचने के कुछ ही दिन के अन्दर जयप्रकाश ने एक प्रेस कान्फ्रेंस की जिसमे सिफ विदेशी सवाददाता मौजूद थे। भारतीय सवाददाता वहाँ जाते हुए इसलिए डरते थे कि वे नजर मे आ जायेंगे। प्रेस कान्फ्रेंस मुश्किल से पन्द्रह मिनट चली होगी, लेकिन जयप्रकाश ने यह बात बिलकुल साफ कर दी कि तबीयत कुछ सँभलते ही वह फिर नतिक सिद्धान्ता पर आधारित राजनीति मे काम करत रहगे।

जयप्रकाश न सवाददाताओ से कहा, 'श्रीमती गाधी ने इसी चीज का तो खत्म कर दिया है। हम लोग अँग्रेजो के जमाने से बहुत बदल नही हैं। श्रीमती गाधी का विरोध करनेवाली ताकतो को एकता की लडी मे पिरोने म मैं जो भी मदद द सकूगा दूगा। मध्यम वग के लोगो क हौसले पस्त हो चुके हैं। उनकी समझ मे नही आ रहा है कि क्या करें। विपक्ष के लोग जेल म हैं। अखबारो को जजीरा स जकड दिया गया है। श्रीमती गाधी के मन म सचमुच डर समा गया होगा, वह बहुत स काम डर की वजह से करती हैं।

सरकार को जा जानकारी दी गयी थी उससे यह बात बिलकुल भिन्न थी। खुफिया विभाग के लोगो न खबर दी थी कि जयप्रकाश म अब काम करने के लिए बहुत दम नही रह गया है। उन दिना धर न मुझसे कहा था जयप्रकाश बिलकुल मायूस हा चुके हैं और अब पिछली बाता का याद करत रहत हैं। लेकिन यह उनकी भूल थी। वह अब भी अपन इराद पर अटल थे।

जब गहमत्री उमाशकर दीक्षित और धर उनस बातचीत करने गये तो उन्होंने देखा कि वह जरा भी टस म मस होन का तयार नही थ। जयप्रकाश अपनी माँग पर

पर लाठीचाज भी किया।

सत्याग्रह सारे देश मे हुआ और हर राज्य मे कुछ न-कुछ गिरफ्तारियाँ जरूर हुईं। दिल्ली मे जयप्रकाश के नारा देने के बाद 29 जून को जो सत्याग्रह हुआ था उसम और इस सत्याग्रह मे फक यह था कि इस बार बहुत से लोग सत्याग्रह देखने के लिए सडको पर निकल आये थे। पहले कोई इतनी हिम्मत भी नहीं करता था कि उसे कही आस पास देखा भी जाये। सत्याग्रही जो पर्चे बांट पाते थे उन्हें लोग खुशी खुशी लेते थे। पुलिस का रवैया भी एक तरह से पहले से अलग था—वह अब पहले से भी ज्यादा बेरहम हो गयी थी, जैसे कि उसे अब लाठियाँ बरसाने मे या जिसे वह अब तक भीड समझती थी उसे तितर बितर करने के लिए जोर-जबदस्ती करने मे कोई झिझक, कोई सकोच रह ही न गया हो।

सरकार भी ज्यादा-से-ज्यादा निरकुश होती जा रही थी। हालांकि इमर्जेंसी के दौरान सभी बुनियादी अधिकार स्थगित कर दिये गये थे लेकिन सरकार ने सविधान की 19वी धारा में जिन मूल अधिकारो की गारटी दी गयी है उनमे से सात को स्थगित रखने के लिए खास तौर पर आदेश जारी किये—भाषण की स्वतन्त्रता, सभाएँ करने की स्वतन्त्रता, सगठन और श्रमिक सघ बनाने की स्वतन्त्रता, सारे भारत मे बिना किसी रोक टोक के कही भी आने-जाने और देश के किसी भी भाग म रहने का अधिकार, सम्पत्ति रखने का अधिकार, कोई भी व्यवसाय व्यापार या कारोबार करने का अधिकार।

राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद के दस्तखत से जारी किये गये आदेश मे 19वी धारा को लागू कराने के लिए अदालतो मे अपील करने पर भी पाबन्दी लगा दी गयी। सविधान म दिये गये अधिकारो पर यह एक नयी रोक लगाने की कोई वजह भी नहीं बतायी गयी। 26 जून 1975 को इमर्जेंसी लागू होन के बाद से यह चौथी रोक थी।

यह उम्मीद की जाती थी कि श्रीमती गाधी शायद लोगो को रिहा करना शुरू कर दें लेकिन उन्होने बिलकुल उलटी ही दिशा अपनायी। सत्याग्रह के बारे म जनता ने जो उत्साह दिखाया था शायद उसी की वजह से सरकार विरोध करनेवालो को बहुत चुन-चुनकर सख्ती के साथ कुचल रही थी।

जयप्रकाश की परोल 4 दिसम्बर को खत्म कर दी गयी। हालांकि उन पर से सारी पाबन्दियाँ हटा ली गयी थी फिर भी उन पर नजर रखी जा रही थी। वह जहा भी जाते थे खुफिया विभाग के लोग उनके पीछे परछाईं की तरह लगे रहते थे। जो लोग उनसे मिलने आते थे उनका हिसाब रखा जाता था उनके पत्रो की और जो कुछ भी वह कहते थे उसकी बडी गहरी छानबीन की जाती थी। शायद कोई बात निकल आये।

वरना, जसा कि जयप्रकाश न मुझसे कहा, इस वक्त श्रीमती गाधी की गुड्डी चढी हुई थी। उन्हें दुर्गा कहा जाता था और कभी कभी तो ऐसा लगता था कि उन्हें खुद विश्वास हो चला है कि उनम वह शक्ति है। वह जानती थी कि किस वक्त क्या करन से सबसे ज्यादा असर पडेगा। गाव मे वह साधारण धोती पहनती थी और लजीली बहुओ की तरह सर पर पल्ला डाले रहती थी। कश्मीर मे वह कश्मीरिया जसे कपडे पहनती थी। पजाब मे वह कुर्ता-सलवार पहनती थी और यह भी कहती थी कि वह पजाबी है क्योकि उनकी छोटी बहू सजय की पत्नी मेनका पजाब की थी। वह दावा करती थी कि वह गुजरात की बहू हैं क्योकि उनके पति फीरोज गाधी गुजराती थे। वह जानती थी कि आम लोगो पर इन सब बातो का बहुत अच्छा असर पडता है। और कुछ समय तक तो पडा भी।

ऐसा लगता था कि 'निर्देशित जनतन्त्र' का जो ढांचा उन्होंने खड़ा किया था वह अब टिका रहेगा। ऐसा लगता था कि श्रीमती गाधी ने जो राजनीतिक हल पेश किये हैं उन्हे देश मे बहुत-से लोग स्वीकार करने को तैयार हैं। बहुत-से लोग, खास तौर पर पढे-लिखे खाते पीते लोग, बिना किसी शर्मोहया के कहते थे, "हमसे कोई भी काम कराने के लिए हमेशा हम किसी न किसी मालिक की जरूरत रही है। पहले मुगल थे, फिर अंग्रेज आये और अब श्रीमती गाधी हैं। इसमे आखिर ऐसी बुराई क्या है?"

उनकी कृपादृष्टि की बदौलत सजय ने अपना राजनीतिक असर भी बढा लिया था और अपनी सदिग्ध ख्याति भी। दिल्ली आनेवाला हर मुख्यमत्री जब तक सजय से नही मिल लेता था तब तक वह अपनी यात्रा का सफल नहीं समझता था। वे सभी एक दूसरे से होड लगाकर उसे अपने राज्य मे आन का न्योता देते थे और सरकार की ओर से जुटायी गयी बडी-बडी मीटिंगो से यह साबित करने की कोशिश करते थे कि वह कितना लोकप्रिय है।

श्रीमती गाधी सचमुच समझती थी कि वह बहुत लोकप्रिय है। एक बार जब चन्द्रजीत यादव ने उनसे शिकायत की कि सजय के स्वागत के लिए जो मीटिंगें होती हैं उनमे से ज्यादातर जुटायी हुई होती हैं, तो वह बुरा मान गयी और बोली, 'कुछ लोग जलते हैं क्योंकि जनता सचमुच सजय को चाहती है।" यूनुस बार-बार यह कहकर कि लाखो लोग उसकी ओर खिचे चले आते है, श्रीमती गाधी के इस विश्वास को और पक्का कर देते थे। यूनुस ने तो खास तौर पर एक लेख भी लिखा, जो कई अखबारो मे छपा भी, जिसमे कहा गया था कि भविष्य सजय के हाथ मे है। सच तो यह है कि सजय का स्वागत करने के लिए जो भीडें जमा होती थी वे सब भाडे की होती थीं।

लेकिन जो बात श्रीमती गाधी को कभी-कभी बहुत परेशानी मे डाल देती थी वह यह थी कि मुख्यमन्त्रियो ने हवाई अड्डा पर आकर सजय का स्वागत करना शुरू कर दिया था। यह बात सिद्धार्थशकर रे ने उनसे कही भी थी। बरुआ की माफत उन्होंने उन लोगो को हिदायत भी भिजवा दी थी कि वे उनके बेटे का स्वागत करने के लिए हवाई अड्डे या रेलवे स्टेशन पर न आया करें।

लेकिन मुख्यमन्त्रियो ने इस आदेश की ओर कोई विशेष ध्यान नही दिया क्योंकि जब भी सजय किसी राज्य मे जाता था तो उसका स्वागत करने के लिए 'हमेशा की तरह बन्दोबस्त' करने के बारे मे एक गश्ती चिट्ठी गृह-मन्त्रालय की ओर से पहले ही भेज दी जाती थी। मन्त्रालय ने सजय की सुरक्षा के बारे मे भी हिदायतें दे रखी थी—जिन मीटिंगो मे वह भाषण दे, उनमे पब्लिक को पिस्तौल की मार से ज्यादा दूरी पर रखा जाये और मच के पीछे ऐसा परदा लगाया जाये जिसे गोली न बेध सके, बीच की खाली जगह मे पुलिस और सिक्योरिटी के आदमी भर दिये जायें। यह इन्तजाम उन सिक्योरिटी वालो के अलावा था जो चौबीस घटे उसके साथ लगे रहते थे।

सजय अक्सर इडियन एयर फोर्स के हवाई जहाज से राज्यो के दौरे पर जाता था। सरकारी तौर पर वह किसी मत्री का दौरा होता था लेकिन असली यात्री सजय होता था। आम तौर पर हवाई जहाज ओम मेहता के नाम से लिया जाता था। श्रीमती गाधी के जमाने से पहले गृह राज्य-मन्त्री को एयर फोर्स का हवाई जहाज इस्तेमाल करने का कभी अधिकार नही था, लेकिन ओम मेहता को यह रिआयत उन्होंने तौर पर दिलवा रखी थी। धवन, और कभी-कभी सेपन, इस बात का इन्तजाम

थे कि हवाई जहाज किसके नाम स लिया जाये। एक-दो बार ऐसा भी हुआ कि एन वक्त पर वह मत्री नही गया और सजय अकेला ही चला गया।

ज्यादातर मुख्यमत्री अपने अनुभव से अब यह जान चुके थे कि श्रीमती गाधी चाहती हैं कि वे सजय स सम्पर्क रखें। राजस्थान के मुख्यमत्री हरिदव जोशी को इस बात के लिए लताडा भी गया था कि शुरू शुरू मे उन्होने अपने राज्य के किसी मामल के सिलसिले म सजय स मिलन म आनाकानी की थी। बाद मे जब सजय एक बार जयपुर आ रहा था तो उन्होन उसके स्वागत के लिए 200 फाटक बनवाकर इसका प्रायश्चित कर लिया था। इन तयारियो पर जो अनाप शनाप पैसा खच किया गया था उस पर जनता के गुस्से को देखते हुए श्रीमती गाधी ने उसकी यह यात्रा रद्द करवा दी थी। लेकिन जोशी ने अपनी वफादारी साबित कर दी थी।

हितेन्द्र देसाई ने, जो पहले मोरारजी के बहुत करीब थे लेकिन अब काग्रेस मे चले गये थे, श्रीमती गाधी के इस इशारे को कि वह सजय से मिल लें या ही टाल दिया था। इसलिए जब तक उन्होने सजय के दरबार मे हाजिरी देना नही शुरू कर दिया तब तक उन्हे दिल्ली मे श्रीमती गाधी से मिलने के लिए हमेशा कई कई दिन तक लटके रहना पडता था।

ज्ञानी जैलसिह तो धवन को भी धवनजी कहते थे। एक बार हवाई जहाज पर चढते वक्त सजय की एक चप्पल नीचे गिर गयी। हवाई अड्डे पर जो बहुत-स लोग जमा थे उनकी तरह ही जैलसिह भी चप्पल उठाने के लिए लपके।

श्यामाचरण शुक्ला जो सेठी की जगह मध्य प्रदेश के मुख्यमत्री बन गये थे, हरदम सजय के आगे हाथ बाँधे खडे रहते थे। वह बहुत दिन राजनीति के बनवास मे काट चुके थे और यह नही चाहते थे कि फिर उनकी वही दुदशा हो। अगर श्रीमती गाधी श्यामाचरण से यही चाहती थी कि वह सजय के दरबार मे हाजिरी दिया करें तो वह यह कीमत देने के लिए हर तरह से तैयार थे।

राजनीतिक जोड-तोड सजय के लिए बायें हाथ का खेल था। उसने युवक काग्रेस के जरिये अपनी राजनीतिक ताकत बढाना शुरू किया। बरुआ ने काग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से उससे युवक काग्रेस मे नयी जान डालने के लिए कहा था और वह 10 दिसम्बर का उसमे भरती हो गया था। उसने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की ओर झुकाव रखनेवाले पश्चिम बगाल के नेता प्रियरजन दास मुशी को अध्यक्ष के पद से हटवाकर उसकी जगह एक भरोसेवाली पजाबी लडकी अम्बिका सोनी को अध्यक्ष बनवा दिया।

लेकिन सजय को सबसे बडी चिन्ता इस बात की थी कि इमर्जेंसी को एक स्थायी व्यवस्था का रूप कैसे दिया जाये। उसकी मा अक्सर उससे कहा करती थी कि इमर्जेंसी हमेशा तो लगी रह नही सकती, उसकी जगह कोई ऐसी व्यवस्था लानी होगी जो मजबूत हो, जिस पर भरोसा किया जा सके और जो हमेशा टिकी रह सके।

सजय ने फिर शुरुआत अखबारो से की। शुक्ला ने रिपोट दी थी कि कमोबेश सभी अखबार और सभी पत्रकार सीधे हो गये हैं और उनसे कोई खतरा नही रह गया है। व अब खुद अपने सेंसर बन गये हैं।

एक आर्डिनेंस जारी करवाकर आजादी से पहले के दिनो का, आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन की रोकथाम वाला कानून फिर लागू कर दिया गया और ऐसे शब्दो, चिह्नो या दृश्य अभिव्यक्तियो के प्रकाशन पर पाबन्दी लगा दी गयी 'जो भारत म या उसके किसी राज्य मे कानून के आधार पर स्थापित सरकार के प्रति घृणा या तिरस्कार या अश्रद्धा उत्पन्न करें और उसके फलस्वरूप सावजनिक उपद्रव पैदा करे

या उपद्रव पैदा करने की प्रवृत्ति को जन्म दे।" ब्रिटिश राज मे इसी कानून के तहत जिस आदमी पर 'आपत्तिजनक सामग्री' लिखने का आरोप लगाया जाता था तो उसे किसी पुराने जज के सामने पेश किया जाता था और उस इस बात का अधिकार होता था कि पत्रकारिता या सावजनिक मामलात से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियो की विशेष जूरी के सामने उसके मुकदमे की सुनवाई हो। लेकिन इस आर्डिनेंस मे फैसला करने, सजा देने और पहली अपील की सुनवाई का अधिकार सरकार को ही दिया गया था। उसके बाद ही अभियुक्त हाईकोर्ट म जा सकता था।

सरकार को मुद्रको, प्रकाशको और सम्पादको से नकद जमानत तलब करने का भी अधिकार दिया गया था और उन्हे केवल 'मजूर की गयी' सामग्री छापने के लिए जिम्मेदार ठहराया गया था। सरकार 'आपत्तिजनक' समझी जाने वाली सामग्री छापने वाले प्रेस को बन्द भी करवा सकती थी।

सरकार के लिए सुविधाजनक सम्पादको की एक टोली ने अखबारो के लिए नतिकता के मानदण्डो की एक सूची तयार की। यह अनोखी सूची थी। 3,000 शब्दो के इस प्रवचन मे एक बार भी 'अखबारो की आजादी' का उल्लेख नही किया गया था।

सरकार ने चालीस से अधिक सवाददाताओ की मान्यता भी वापस ले ली। पत्रकारो को अपने अपने अखबारो के प्रतिनिधि बने रहने की तो इजाजत दे दी गयी पर बडी बडी प्रेस कान्फ्रेसो म और ससद की बठक मे जाने की सुविधा उनसे छीन ली गयी। (मेरा नाम उन लोगो की फेहरिस्त म था जिनके बारे मे कहा गया था कि अगर वे मान्यता के लिए अर्जी दें तो उन्हें मान्यता न दी जाये।)

अखबारो की आजादी की रक्षा करन के लिए पत्रकारो और अखबारो से सम्बन्ध रखनेवाल दूसर लोगो की जो सस्था, प्रेस कौंसिल आफ इडिया, दस वष पहले बनायी गयी थी उसे तोड दिया गया। इसके लिए कृष्णकुमार बिडला ने दबाव डाला था। मारुति की मोटर बनाकर तयार कर देने के सिलसिले म बिडलावाले जो मुफ्त सलाह और दूसरी मदद दे रहे थे उसकी वजह स कृष्णकुमार बिडला सजय के बहुत निकट आ गये थे। बिडला के अखबार हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक बी० जी० वर्गीज की नौकरी खत्म कर दिये जान के खिलाफ प्रेस कौंसिल के सामने जो शिकायत पेश की गयी थी उसम के० के० बिडला को इस बात की सफाई देनी थी। शिकायत यह की गयी थी कि वर्गीज के खिलाफ जो कारवाई की गयी थी उसके पीछे 'शासक पार्टी के कुछ ऐस लोगो का हाथ था जो अखबारो की आजादी के दुश्मन थे।"

कौंसिल म जो बहस हुई थी उससे के० के० बिडला को पता चल गया था कि फसला उनके खिलाफ होगा। और हुआ भी यही, लेकिन फैसला कभी सुनाया नहीं गया। कौंसिल के सदस्यो के साथ बातचीत की बुनियाद पर उसके अध्यक्ष ने फसले का जो मसविदा तयार किया था उसस यही इशारा मिलता था कि बिडला और हिन्दुस्तान टाइम्स म उनके एक डायरेक्टर को दोषी ठहराया जाता।

फसले के मसविदे म कहा गया था कि वर्गीज को नौकरी से हटाना अखबारो की आजादी और सम्पादकीय स्वतन्त्रता का खुला उल्लघन था। बिडला और वर्गीज के बीच जो पत्र व्यवहार हुआ था उसे छपने म रुकवाने की बिडला ने जो कोशिश की थी उसकी भी प्रेस कौंसिल ने निन्दा की। फसला इसलिए नही सुनाया जा सका कि 31 दिसम्बर 1975 को प्रेस कौंसिल तोड दी गयी।

पत्रकारो को ससद की कारवाई की खबरें देने के मामले मे जो छूट थी वह भी वापस ले ली गयी। सजय डरता था कि ससद मे नागरवाला काड, इपोर्ट लाइसेंस काड और मारुति काड के बारे मे जो कुछ भी कहा जायेगा उसे

उछालेंगे। वह नहीं चाहता था कि फिर कोई तूफान उठाया जाये। मजा तो यह है कि अखबारवालों को संसद के दोनों सदनों की कारवाइयों की खबरें बिना किसी रोक टोक के देने में मदद देने के लिए संजय के पिता फीरोज गांधी ने ही एक बिल संसद में पेश किया था। एक वक्त ऐसा भी आया था, जब श्रीमती गांधी चाहती थीं कि इस बिल को बरकरार रहने दिया जाये, लेकिन संजय नहीं माना और उसने अपनी बात मनवा ली। उसने कहा कि सरकार के काम-काज में भावुकता की कोई गुंजाइश नहीं है।

अखबार एक तरह से सरकारी गजट बन गये थे। वे खुद अपने ऊपर इतनी सेंसरशिप लागू करने लगे थे कि सरकार की मंजूरी लिये बिना जयप्रकाश के स्वास्थ्य के बारे में जारी किये जानेवाले बुलेटिन भी नहीं छापते थे। फिर भी श्रीमती गांधी और उनके बेटे को संतोष नहीं था। इण्डियन एक्सप्रेस ग्रुप के अखबार अभी तक सीधे रास्ते पर आने को तैयार नहीं थे। इसका एक ही हल था कि उन्हें खरीद लिया जाये। और रामनाथ गोएनका से कहा गया कि वह अपना अखबारों का साम्राज्य बेच दें। लेकिन उनके लिए इतने जमे-जमाये कारोबार से, जिसे उन्होंने शून्य से बढ़ाकर यहाँ तक पहुँचाया था, हाथ धो लेना इतना आसान नहीं था। वह फैसला करने के लिए कुछ मोहलत लेकर इसे टाले रखना चाहते थे। उन्हें उम्मीद थी कि सरकार शायद अपना इरादा बदल दे। मोहलत तो मिल गयी, लेकिन जब गोएनका ने देखा कि सरकार अपनी बात पर अड़ी हुई है तो वह भी कुछ ढीले पड़ गये और एक शर्त पर अखबारों को बेच देने पर राजी हो गये। शर्त यह थी कि उन्हें इसकी वाजिब कीमत दी जाये और वह भी 'सफेद पैसे' में। वह जानते थे कि यह मुमकिन नहीं होगा।

गोएनका टेढ़ी खीर बनते जा रहे थे। उनको खरीदना बहुत महँगा सौदा हो रहा था। दूसरा रास्ता यह था कि बोर्ड के तेरह डायरेक्टरों को किसी तरह काबू में रखा जाये। संजय ने सोचा कि बेहतर यही होगा कि बोर्ड को ही बदलवा दिया जाये। के० के० बिड़ला को चेयरमैन बना दिया गया और कमलनाथ को, जो दून स्कूल के दिनों से संजय का दोस्त था, छः में से एक मेम्बर बना दिया गया। इस तरह बोर्ड में सरकार का बहुमत हो गया। नये बोर्ड ने पहला काम यह किया कि एडीटर इन चीफ मुलगाँवकर को जबरदस्ती रिटायर कर दिया गया। कहने को तो इसकी वजह यह बतायी गयी कि वह रिटायर होने की उम्र को पहुँच गये थे, लेकिन असली वजह यह थी कि सरकार अपने आदमी को एडीटर बनाना चाहती थी। दो और पुराने पत्रकार अजित भट्टाचार्य और मैं भी निकाले जाने वाले थे लेकिन गोएनका ने किसी तरह टलवा दिया।

सरकार को इण्डियन एक्सप्रेस के तेवर अब भी पसन्द नहीं थे। सरकार ने इस अखबार के सारे सरकारी इश्तहार बन्द करवा दिये और सभी सरकारी प्रतिष्ठानों और स्वायत्त संस्थाओं को अपने मन्त्रालय की तरफ से एक खुफिया गश्ती चिट्ठी भिजवा दी कि वे एक्सप्रेस ग्रुप के अखबारों को इश्तहार देना बन्द कर दें। हर महीने लगभग 15 लाख रुपये का घाटा होने लगा।

अखबारों पर लगभग पूरी तरह अपना शिकंजा कस लेने के बाद भी शुक्ला 'पूरे अखबार उद्योग का ढाँचा इस तरह नये सिरे से बनाने' की बात करते थे कि 'वह जनता, समाज और पूरे देश के सामने जवाबदेह रहे।' इस सबका मतलब कोई ऐसी पक्की व्यवस्था करना था जो इमर्जेंसी के दौरान मिले हुए [illegible] पर निर्भर न हो।

इस काम के लिए अंग्रेजी की दो बड़ी [illegible] एजेंसियों [illegible]
और यूनाइटेड न्यूज ऑफ इण्डिया को [illegible] दा स

हिन्दुस्तान समाचार और समाचार भारती को एक मे मिला देना जरूरी समझा गया। इस तरह सिर्फ एक जगह कंट्रोल रखने से काम चल जाता। शुक्ला ने अखबारो और समाचार एजेंसियो के मालिको को एक एजेंसी का सुझाव मान लेने पर राजी करने के लिए उनके खिलाफ जोर जबरदस्ती और दबाव डालने के अपने वही पुराने हथकण्डे इस्तेमाल किये। बाद मे सबको मिलाकर समाचार के नाम से एक एजेंसी बन भी गयी। कुछ डायरेक्टरो और चोटी के कर्मचारियो की अडगेबाजी को खत्म करने के लिए उन्होंने ऑल इण्डिया रेडियो के लिए उनकी खबरें लेना बन्द करके जिससे उन्हें काफी आमदनी होती थी, इन एजेंसियो को बिलकुल अपाहिज कर देन की कोशिश की।

जनवरी 1976 के पहले हफ्ते मे बतायी गयी सरकार की योजना यह थी कि एजेंसी की गवर्निंग कौंसिल के चेयरमन और पन्द्रह मेम्बरों को राष्ट्रपति नियुक्त करेगा। लेकिन राष्ट्रपति को यह भी अधिकार दे दिया गया था कि अगर 'उसे पूरा यकीन हो कि एजेंसी कारगर तरीके से काम नही कर रही है तो वह गवर्निंग कौंसिल से इसके लिए उचित उपाय करने को कह सकता है।"

सरकार जानती थी कि वह जो कदम उठाने जा रही है उसका मतलब अखबारो की आजादी पर अंकुश लगाना ही समझा जायेगा। इसलिए उसने यह समझाना शुरू किया कि वह अखबारो के साथ जो कुछ भी कर रही है वह सिर्फ इसलिए कि वे 'पूंजीपतियो के चंगुल से सचमुच छुटकारा पा सकें।' एजेंसी की बाकायदा स्थापना 1 फरवरी को हुई।

इधर अखबारो को नये सिरे से सगठित करने का काम चल रहा था, उधर सजय ने अपना ध्यान सरकार के ढाचे को नये सिरे से बनाने की अधिक महत्त्वपूर्ण समस्या पर केन्द्रित किया। वह अपनी माँ से हमेशा कहता रहता था कि अगर मेरा बस चले तो मैं 'पूरी सरकार को बदल दू।' इसी सिलसिले मे उसने यह माग भी रखी थी कि मन्त्रिमण्डल के 54 मन्त्रियो मे से एक चौथाई को हटाकर उनकी जगह युवक काग्रेस के मेम्बरो को दी जाये। केन्द्रीय सरकार मे जो लोग ऊँचे-ऊँचे पदो पर तनात थे उनके बारे मे उसने छानबीन शुरू भी कर दी थी। अफसरो को 1 सफदरजग रोड बुलाया जाता था, सजय और धवन उनका इण्टरव्यू लेते थे और इसके बाद या तो उन्हें अपने पदो पर बने रहने दिया जाता था या फिर हटा दिया जाता था।

लेकिन यह काफी नही था। सजय चाहता था कि कैबिनेट मे और राज्यो मे उसके आदमी रहे। इसी तरह से इस बात का पूरा यकीन हो सकता था कि वह जो आदेश देगा उनका पूरी तरह पालन किया जायेगा। उसने बसीलाल को, जो सोलह आने वफादार और उसके अपने आदमी थे, कैबिनेट मे पहुँचा दिया। कैबिनेट मे उनका काम था सख्त लाइन अपनाना—बिलकुल वैसी ही जैसी कि घराना चाहता था। बसीलाल रक्षामत्री बनना चाहते थे और बन भी गये। इसकी वजह बिलकुल साफ़ थी।

लेकिन वह यह भी नही चाहते थे कि उनकी अपनी जागीर हरियाणा से उनका नाता बिलकुल ही टूट जाय। इसलिए उनके बाद जब बनारसीदास गुप्ता वहाँ के मुख्य-मत्री बने (उन्हें भी इसके लिए खुद बसीलाल ने ही चुना था), तो उनसे कह दिया गया कि 'असली मुख्यमत्री बसीलाल ही रहेगे और उन्हें उनकी बात सुननी होगी'।

श्रीमती गाधी ने अस्सी बरस के बूढे मत्री उमाशकर दीक्षित को हटा देने की सजय की इच्छा भी पूरी कर दी। उनके लिए यह बहुत बडा फैसला था क्योकि 1971 के चुनाव के वक्त से पार्टी के खजाची की हैसियत से दीक्षितजी ने श्रीमती गाधी की तरफ करोडो रुपये जमा किये थे और बाटे थे। इधर कुछ दिनो से श्रीमती गाधी उनसे नाराज़ थी क्योकि उनकी बहू सरकार के कामकाज मे दखल देने लगी थी।

श्रीमती गांधी ने दीक्षितजी के बेटे की बदली दिल्ली के बाहर करवा दी थी ताकि हर बात में अपनी टाँग अड़ानेवाली उनकी बहू से पीछा छूटे, लेकिन वह दीक्षितजी का हाथ बँटाने के लिए यहीं रह गयी। श्रीमती गांधी को ऐसी बहुओं से निबटने का पहले भी अनुभव था। कुछ समय पहले जब कमलापति त्रिपाठी दिल्ली लाये गये थे, उनकी 'बहूजी' के पर भी श्रीमती गांधी ने कतर दिये थे।

दीक्षितजी के मंत्रिमण्डल से हटा दिये जाने पर दूसरे मंत्री सहम गये। कुछ ही दिन बाद दीक्षितजी तो कर्नाटक के गवर्नर बनाकर भेज दिये गये, लेकिन दूसरे मंत्री सोचने लगे कि अगर आज दीक्षितजी के साथ यह हो सकता है तो कल उनके साथ भी हो सकता है। वे और भी तावेदार बन गये।

उन्होंने एक और पुराना हिसाब भी चुका लिया। उन्होंने स्वर्णसिंह को कैबिनेट से निकाल दिया। वह इस बात को भूली नहीं थीं कि इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले के बाद उन्होंने पूरे एक दिन टालमटोल करने के बाद उस बयान पर दस्तख़त किये थे जिसमें उनके प्रति पूर्ण विश्वास का ऐलान किया गया था। इस तरह उन्हें ढिल्लों को हटाकर उनकी जगह बलिराम भगत को स्पीकर बना देने में बड़ी मदद मिली। विदेश मंत्रालय के राज्यमंत्री के पद से हटा दिये जाने के बावजूद बलिराम भगत उनके स्वामिभक्त सेवक बने रहे थे। सिक्ख होने के नाते ढिल्लों बड़ी आसानी से स्वर्णसिंह की जगह ले सकते थे।

श्रीमती गांधी पी० सी० सेठी को उर्वरक तथा रसायन मंत्री बनाकर ले आयीं। मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री की हैसियत से वह 'घराने' के बहुत निकट आ गये थे। दीक्षितजी के चले जाने के बाद सेठी से पैसा वसूल करने के लिए किसी को तो पार्टी का खजांची बनाना ही था और सेठी ने यह काम बड़ी ख़ूबी से सँभाल लिया।

केन्द्र में अपने मोहरे बिठाकर संजय को सन्तोष नहीं हुआ। वह राज्यों में भी अपने ही मुख्यमंत्री चाहता था। उसने सबसे पहले उत्तर प्रदेश की सफ़ाई करने का बीड़ा उठाया और हेमवतीनन्दन बहुगुणा को वहाँ के मुख्यमंत्री की कुर्सी पर से हटा दिया। इस परिवर्तन के लिए माँ और बेटा दोनों राज़ी थे। बहुगुणा नज़रों से इसलिए उतर गये थे कि उनके हौसले बहुत बढ़ते जा रहे थे। माँ बेटे को शक था कि वह अपनी साख एक बहुत बड़े राष्ट्रीय नेता की हैसियत से जमाने की कोशिश कर रहे थे, जो आगे चलकर प्रधानमंत्री बन सकता था। उत्तर प्रदेश विधानसभा के 1974 वाले चुनाव में कांग्रेस की जीत के बाद (उसे 425 सदस्यों के सदन में 216 सीटें मिली थीं) उन्होंने मतदाताओं को धन्यवाद देने के लिए एक पोस्टर छपवाया था जिसमें उनकी तसवीर थी। यह इस बात का काफ़ी सबूत था कि वह अपने को सामने रखने और बड़े बन जाने की तमन्ना रखते थे—श्रीमती गांधी की टक्कर पर, जो ख़ुद भी उत्तर प्रदेश की ही थीं। दरअसल उनको हटाने का फ़ैसला जून 1975 में ही कर लिया गया था लेकिन इमर्जेंसी की वजह से यह फ़ैसला टल गया था। कुछ लोगों का कहना था कि अगर इलाहाबाद हाईकोर्ट के फ़ैसले का मसला न अटका होता तो वह पहले ही हटा दिये गये होते। ख़याल यह था कि वह असर डालकर फ़ैसला बदलवा सकते हैं।

उसके बाद तो उन्हें और भी अच्छा बहाना मिल गया था। यशपाल कपूर ने, जो श्रीमती गांधी की तरफ़ से उत्तर प्रदेश के मामलात की देखभाल करते थे, यह 'खोज' की थी कि बहुगुणा ने संजय और उसकी माँ को 'नष्ट' कर देने के लिए एक 'यज्ञ' करने का काम चार तान्त्रिकों को सौंप रखा है। उनमें से दो ने तो यह बात 'क़बूल' भी कर ली थी। मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री पी० सी० सेठी की मदद से यशपाल कपूर ने उन दोनों का वहाँ पता लगवाकर उन्हें मीसा में गिरफ़्तार भी करवा दिया था।

(बहुगुणा ने मुझे बताया कि यह सारा किस्सा 'बिलकुल बे बुनियाद' है और 'जिन तान्त्रिकों की ये लोग बातें करते हैं' उनका कही कोई नाम-निशान नहीं है। मुमकिन है कि बूढे वैद्यजी को, जो कमलापति त्रिपाठी समेत उत्तर प्रदेश के बहुत-से नेताओ का इलाज कर चुके हैं, तान्त्रिक समझ लिया गया हो।)

श्रीमती गाधी ने बहुगुणा से इस्तीफा देने को कहा और उन्होने 29 नवम्बर को इस्तीफा दे दिया। मुख्यमत्री का पद छोडने के बाद बहुगुणा ने श्रीमती गाधी से मिलने की कोशिश की लेकिन इसमे कामयाब नही हो सके। उन्होंने कभी मिलने का वक्त ही नही दिया। उन्हें अपनी बात कहने का मौका भी नही दिया गया क्योकि उनके हर बयान के लिए पहले सेंसर की मजूरी लेना जरूरी था।

बहुगुणा की जगह सजय ने नारायणदत्त तिवारी को बिठा दिया। कुछ ही दिन मे इनको नई दिल्ली तिवारी कहा जाने लगा क्योकि वह भाग भागकर बार बार दिल्ली जाते रहते थे। केन्द्र मे उत्तर प्रदेश के जितने नेता थे वे सब उनको मुख्यमत्री बनाने के खिलाफ थे लेकिन सजय वहाँ अपना आदमी चाहता था जिसकी आड मे वह उत्तर प्रदेश पर शासन कर सके। जब भी वह लखनऊ आता था या लखनऊ से चलने लगता था तो वहाँ का पूरा मन्त्रिमण्डल उसे सलामी देने के लिए हाजिर रहता था।

श्रीमती गाधी अपनी सरकार के बारे मे नयेपन की भावना पैदा करने के लिए आयेदिन जो इस तरह के परिवतन करती रहती थी उससे किसी को भी कोई फायदा नही होता था। लेकिन इस बार केन्द्र और राज्यो मे जो परिवतन किये गये थे वह एक मकसद से किये गये थे—जो वफादार थे उन्हे इनाम देने के लिए और जिनकी वफादारी के बारे मे शक था उन्हें सजा देने के लिए। बहरहाल, यह तो कामचलाऊ हल था, कोई पक्का बन्दोबस्त करना जरूरी था।

उनके मन मे सविधान को बदलने की धुन समायी हुई थी। सविधान मे जो कायदे-कानून बनाये गये थे उनकी वजह से 'रोडा अटकानेवाले छोटे-छोटे गिरोहो को गडबडी फैलाने और सकट पदा करने के लिए बेहद मौका मिल गया था। श्रीमती गाधी यह महसूस करती थी कि सरकार से तो यह उम्मीद की जाती है कि वह 'यह करे, वह करे,' लेकिन विपक्ष का जो भी जी मे आय करने की छूट है। इसीलिए वह इस बात पर जोर देने लगी कि नागरिको के कत्तव्यो की एक सूची होनी चाहिए, जिनका पालन न करने पर सजा दी जानी चाहिए।

उनके लिए यह बात महत्त्व तो रखती थी लेकिन बुनियादी नहीं थी। उनका ध्यान इससे भी बडी किसी चीज पर केन्द्रित था। क्या यह बेहतर नहीं होगा कि वह शासन की राष्ट्रपति प्रणाली अपना लें, कुछ उस तरह की जैसी फ्रास मे है—फ्रास की वह हमेशा से बहुत बडी प्रशसक थी। ससदीय तरीके से काम बहुत धीमे होता है, और कभी कभी तो उसमे कोई नतीजा नही निकलता,' और उसमे जो आदमी चोटी पर होता है उसे खुलकर अपनी मर्जी से काम करने का कभी मौका नहीं मिलता।

सजय इसी बात को बिलकुल दो टूक ढग से कहता था। उसका कहना था कि राष्ट्रपति प्रणाली सारी ताकत एक आदमी के हाथ मे सौंप देती है और उस पर ससद या मन्त्रिमण्डल की कोई रोक नही होती, और न ही उसके खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पास किया जा सकता है। वह इसके पक्ष म था कि सविधान को फिर से बनाने के लिए—उसे बिलकुल बदल देने के लिए एक नयी कान्स्टीच्युएट असेम्बली (सविधान सभा) बनायी जाये।

बीच-बीच म गोखले और कुछ दूसरे लोग कानून की प्रणाली में बुनियादी सुधार की बातें करते रहते थे। लेकिन उन्होने यह कभी नही बताया था कि उनके मन

मे क्या बात है।

सच तो यह है कि कुछ 'प्रगतिशील लोगो' की राय सविधान को इस तरह बदल देने के पक्ष मे थी कि वह समाज की जरूरतो को और ज्यादा हद तक 'पूरा कर सके'। ये लोग नही चाहते थे कि सम्पत्ति को मूल अधिकार माना जाये, न ही वे यह चाहते थे कि सविधान की व्याख्या करने की आड मे अदालतें ससद की सर्वोच्च सत्ता मे किसी तरह की कतर ब्यात करें।

लेकिन ये 'प्रगतिशील लोग' भी इस बात के खिलाफ थे कि सविधान में बडे पैमाने पर कोई बुनियादी परिवर्तन किये जायें। वे नही चाहते थे कि चौतरफा परिवतन के द्वार खोल दिये जायें और देश की सविधान सभा मे भाग लेनेवाले सभी दृष्टिकोणो को ध्यान मे रखकर बहुत सोच-समझकर तैयार किये गये इस सविधान को बुनियादी तौर पर बदला जाये।

और वे श्रीमती गाधी को घेरे रहनेवाले लोगो के इस तरह के इशारो के तो कट्टर विरोधी थे कि राष्ट्रपति प्रणाली अपना लेने से देश का शासन बेहतर ढग से चलाया जा सकता है। सत्ताधारियो के निकट के लोगो की दलीलो मे जो यह एक इशारा छिपा रहता था कि इमर्जेंसी की बदौलत जो 'अनुशासन' और 'शान्ति' हमे नसीब हुई है उसे 'राष्ट्रपनि प्रणाली जसी किसी चीज' के जरिये ही मजबूत किया ज सकता है।

सविधान के बारे मे जो कुछ सोचा जा रहा था उसे ठोस रूप लन्दन मे भार के हाई-कमिश्नर बी० के० नेहरू ने दिया, जो श्रीमती गाधी के करीबी रिश्तेदार भ। थे। उन्होने फ्रास जैसे सविधान का सुझाव दिया, जिसमे सबसे ऊपर प्रधानमत्री की जगह राष्ट्रपति हो। बी० के० नेहरू चाहते थे कि श्रीमती गाधी भारत की द'गाल बन जायें।

बम्बई से रजनी पटेल ने इस रूपरेखा मे और रग भरा और फिर एक नोट तैयार करके एक खुफिया दस्तावेज की तरह लोगो मे बाँटा गया। कोई यह नहीं कहना चाहता था कि ये विचार उसके हैं और किसी को इसकी चिन्ता भी नही थी। लेकिन यह नोट भी बहुत-कुछ 1969 मे ए० आई० सी० सी० के बगलौर अधिवेशन के वक्त, जब काग्रेस के दो टुकडो में बट जाने के सिलसिले की शुरुआत हुई थी, श्रीमती गाधी के 'फुटकर विचार' जैसा ही था।

इस नोट मे कहा गया था, "पिछले पच्चीस वर्षों के दौरान हमारे देश मे जनतन्त्र के काम करने के अनुभव को देखते हुए" इस बात की जरूरत है कि सविधान का मौजूदा रूप बदला जाये। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए, और बातो के अलावा, इस बात का पक्का बन्दोबस्त किया जाना चाहिए कि जब स्वतन्त्र और न्यायोचित चुनाव के बाद जनता एक निश्चित अवधि के लिए किसी सरकार के प्रति अपना विश्वास प्रकट कर दे तो उस सरकार को जनता के हित मे बिना किसी रोक टोक के पूरी अवधि तक काम करने का मौका मिले, ताकि राष्ट्र का प्रमुख कार्यपालक अधिकारी अपनी बुद्धि और अपनी अन्तरात्मा के अनुसार, किसी बेजा छूट या बाधा के बिना, किसी से डरे या किसी के साथ पक्षपात किये बिना राष्ट्र की भरपूर भलाई के लिए सत्ता का समुचित उपयोग कर सके।"

इस उद्देश्य का पूरा करने के लिए जो ठोस सुझाव दिये गये थे उनमे एक सुझाव यह भी शामिल था कि राष्ट्रपति को, जो मुख्य कार्यपालक होगा, सीधे देशव्यापी चुनाव के जरिये छ साल के लिए चुना जायगा और ससद की अवधि भी छ साल की होगी। राष्ट्रपति का चुनाव अमरीका की तरह नही होगा जहाँ पहले कुछ

प्रतिनिधि चुन लिये जाते हैं और वे राष्ट्रपति का चुनाव करते हैं। "चूंकि हमारा राष्ट्रपति इस तरह जनता के साधे वोट से चुना जायेगा इसलिए इस परिस्थिति मे उसकी साख और सत्ता अमरीका के राष्ट्रपति से भी बढ़कर होगी," जो बहुत कुछ हद तक दो सदनो के बीच, कांग्रेस और सीनेट के बीच, पिसकर रह जाता है।

राष्ट्रपति प्रणाली का दूकान सजाने की बहुत कोशिश की गयी लेकिन बहुत-से कांग्रेसी इस झांसे मे आने को तयार नही थे। हालांकि उन्होने इमर्जेंसी के खिलाफ अपनी जबान नही खोली थी, लेकिन वे उसकी सख्तियो को तो महसूस कर ही रहे थे। वे नही चाहते थे कि वह हमेशा के लिए कायम रहे। उन्हें डर था कि अगर राष्ट्रपति प्रणाली लागू हो गयी तो यही होगा।

श्रीमती गाधी ने बेहतर यही समझा कि इस मामले को यही छोड दिया जाये और इसके बजाय सविधान मे बुनियादी परिवतन करने का अधिकार अपने हाथ मे ले लिया जाये। बाद मे चलकर, अगर मुमकिन हुआ तो, राष्ट्रपति प्रणाली का विचार फिर उठाया जा सकता है।

चडीगढ मे कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन मे 30 दिसम्बर को जो प्रस्ताव पास किया गया उसम सिफ इतना कहा गया था कि सविधान को इस तरह बदल दिया जाये कि वह 'जनता की मौजूदा जरूरतो को ज्यादा हद तक पूरा कर सके'।"

श्रीमती गाधी न सही, पर सजय को इस बात की ज्यादा चिन्ता थी कि इमजसी और ज्यादा दिन तक चलती रहे और माच 1976 म जो चुनाव होनेवाले थे उन्हें टाल दिया जाये। इधर कुछ दिनो से 'धराने' ने यह कहना शुरू कर दिया था कि 'इमर्जेंसी से जो कुछ मिला है उसे अभी पुख्ता करना है। यूनुस पूछा करते थे, 'आखिर चुनाव कराने की ऐसी जल्दी क्या है ?" चुनाव तो एक तरह की एय्याशी थे और उन्हें चार-पाँच साल के लिए टाला जा सकता था।

बसीलाल ने सजय की हाँ मे हाँ मिलाते हुए चुनाव टाल देने की पैरवी की। वह कांग्रेसी ससद-सदस्यो से कहा करते थे कि लोगो को चुनाव की नही अपनी रोजी की फिक्र है। "अगर उन्हें रोटी दे दो, तो बेखटके राज करते रहो। आखिर भरत ने भगवान राम के खडाऊँ के सहारे देश पर चौदह साल तक राज किया ही था।'

कांग्रेस अधिवेशन ने एक प्रस्ताव पास किया जिसे सिद्धार्थशकर रे ने पेश किया था "आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिरता लाने मे निरन्तरता को सुनिश्चित बनाने के लिए कांग्रेस ससद मे कांग्रेसी दल का आवाहन करती है कि वह सविधान की धारा 83[1] के अन्तगत वतमान लोकसभा की अवधि को बढाने के लिए उचित कदम उठाये।"

यह वही सिद्धार्थशकर रे थे जिन्होने इमर्जेंसी के विचार को कानूनी रूप दिया था।

इस अधिवेशन ने सरकार को इमर्जेंसी की अवधि भी बढा देने का अधिकार दे दिया। श्रीमती गाधी ने प्रतिनिधियो को बताया कि सरकार का निकट भविष्य मे इमर्जेंसी उठाने का कोई इरादा नही है। उसे देश की एकता और उसके जिन्दा रहने का भी तो ध्यान रखना था।

सच तो यह है कि इन्दिरा गाधी का, मुख्यमन्त्रियो का, सरकारी अफसरो का, सभी का इमर्जेंसी मे कुछ निजी फायदा था। कोई बुराई नही कर सकता था, कोई विरोध नही कर सकता था। जो कुछ वे चाहते थे वही कानून था। उनको बस जुबान

1 धारा 83 म कहा गया है—'जबकि इमर्जेंसी की घोषणा लागू हो तो ससद कानून के अनुसार लोकसभा की अवधि को एक बार म एक वर्ष के लिए बढा सकती है।

तो जिससे भी मिलते थे उससे यही पूछते थे कि खुफिया विभाग वाले जो 'शान्ति' की खबरें देते हैं क्या वे सच हैं, लेकिन कोई उन्हे असलियत नही बताता था। हालांकि अब श्रीमती गाधी की यह आदत हो गयी थी कि वह वही बातें सुनती थी जो उनको अच्छी लगती थी, लेकिन कभी कभी वह भी सोचती थीं कि जो खबरें उन्हें दी जाती हैं क्या वे सही और सच्ची हैं। जो कुछ मालूम न हो पाये उसका डर तो लगा ही रहता है।

सरकार ने 5 जनवरी को ससद के सामने इमर्जेंसी को कुछ समय के लिए और बढा देने की और मार्च मे होनेवाले चुनावो को कुछ समय के लिए टाल देने की काग्रेस की सिफारिश पेश की।

विपक्ष के ज्यादातर सदस्यो ने ससद के अधिवेशन के पहले दिन की कारवाई मे भाग नही लिया, जिस दिन राष्ट्रपति ने वहाँ भाषण दिया था। उनके भाषण के बाद, जिसमे उन्होंने गरीबों को नयी सुविधाएँ देने, परिवार नियोजन का काम और तेजी से चलाने और व्यापार पर लगी हुई कुछ पाबन्दियो मे ढील देने के सरकार के कार्यक्रम की रूपरेखा पेश की गयी थी, सरकार-विरोधी सदस्य सदन मे आकर बैठे और उन्होंने इमर्जेंसी पर भरपूर हमला किया। पी० जी० मावलकर ने जोर देकर कहा कि "ससदीय जनतन्त्र को तोड मरोडकर उसकी शक्ल बिगाड दी गयी है।" एक और सदस्य समर मुखर्जी ने कहा, "ससद की भूमिका की जड खोखली कर दी गयी है और खतरा इस बात का है कि उसे और भी खोखला कर दिया जायेगा।"

कृष्णकान्त ने कहा

> जो बुनियादी सवाल हमे खुद अपने से पूछना चाहिए वह यह है कि जिन कामयाबियो का दावा किया जा रहा है क्या उन्हे हासिल करने के लिए दमन और अत्याचार के इन सारे उपायो की सचमुच जरूरत है। हमने एक जनतान्त्रिक सविधान अपनाया था और यह फसला किया था कि जनतान्त्रिक तरीको से राष्ट्रीय लक्ष्यो तक पहुँचने के लिए हम एक स्वतन्त्र और खुला समाज बनायेंगे। क्या ट्रेनो को ठीक वक्त से चलाने के लिए हमे मुसोलिनी के दार्शनिक विचार से सबक सीखना पडेगा? क्या दफ्तरो मे और अन्य व्यवस्था म अनुशासन लाने के लिए हमारे लिए जरूरी है कि हम हिटलरी तरीके अपनायें? क्या हमे चीजो की कीमतें घटाने के लिए अय्यूब खाँ और याह्या खाँ से सबक सीखना होगा? क्या हमारे लिए जरूरी है कि लोगो की नागरिक स्वतन्त्रताएँ छीनने के लिए वैसी ही दलीलें दें जसी कि उगाडा मे ईदी अमीन या फिलीपीस मे मार्कोस या यूनान मे फौजी जनरल देते हैं। मुसोलिनी की शुरू-शुरू की कामयाबियो से चर्चिल जैसे लोग भले ही धोखे म आ गये हो और कुछ समय के लिए डिक्टेटरो की तारीफ करने लगे हों, लेकिन नेहरू जसे दूरदर्शी लोग इस तरह के दावो के जाल मे नही फँसे। उन्होने इन कारवाइयो की बाहरी सजावट की तह मे जाकर देखा और असलियत को जान लिया। यही वजह है कि हमने गाधीजी से प्रेरणा लेकर दूसरा ही रास्ता अपनाया।
>
> मैं जिस बुनियादी सवाल की बात कर रहा था, वह यह है कि समाजवाद की मजिल तक पहुँचने के लिए क्या हमे जनतन्त्र और जनतान्त्रिक तरीकों पर भरोसा है? इमर्जेंसी की कामयाबियो का जो ढिंढोरा पीटा जा रहा है क्या वह इस बात को मान लेने का और भी जोरदार ऐलान नही है कि जनतान्त्रिक तरीके नाकामयाब हो गये हैं और उन पर से हमारा भरोसा

हिलाने की जरूरत थी और हर काम हो जाता था। बात यह थी कि सरकार की सारी मशीनरी अब उस हिसाब से काम करती थी जिसे वे 'सवेदनशील प्रशासन' कहते थे।

कुछ दिन बाद कबिनट ने भी चुनावो को एक साल के लिए टाल देने का फैसला करके काग्रेस के प्रस्ताव पर अपनी मुहर लगा दी। किसी भी मत्री ने इसके खिलाफ आवाज तक नही उठायी। सच तो यह है कि बसीलाल ने हसकर कहा कि चुनाव तो कम से कम पाच साल के लिए टाल दिये जाने चाहिए।

काग्रेस के इस अधिवेशन मे सजय को बाकायदा एक नेता के रूप मे पेश किया गया। बहुत छोटा-सा समारोह था जिसमे बेटा छाया हुआ था—माँ की बदौलत। लगभग बीस साल पहले जब श्रीमती गाधी काग्रेस की अध्यक्ष थी तो उनके बाप नेहरू ने उनके सामने झुककर कहा था, 'हमारी अध्यक्ष महोदया।'

काग्रेस के पण्डाल मे कमरे बस तीन ही थे—एक श्रीमती गाधी के लिए, एक पार्टी के अध्यक्ष के लिए और एक सजय के लिए। सबसे ज्यादा भीड उसी के कमरे में रहती थी। सबसे ज्यादा वाहवाही उसी की होती थी क्योकि काग्रेस मे बहुत-से लोग यह समझने लगे थ कि यही चढता हुआ सूरज है। जिधर भी वह जाता काग्रेसियो की भीड उसके पीछे चलती। श्रीमती गाधी ने समझा कि यह सजय गाधी की लोकप्रियता का और भी ज्यादा सबूत है। वह यह नही समझ पायी कि उसकी सारी 'लोकप्रियता'—और ताकत—उन्ही के दम से है। चारो ओर भ्रम का ऐसा वातावरण था कि कोई सच्चाई को जानने की परवाह ही नही करता था। और उन्हे सच बात बताने के लिए न कोई अखबार था और न कोई मच।

खुफिया रिपोर्टों से पता चलता था कि बुद्धिजीवी बहुत 'नाराज' हैं, अखबारो मे खबरें न छपने से उनमे गुस्सा है और वे बी० बी० सी० और वॉयस ऑफ अमेरिका के रेडियो कार्यक्रम सुनने लगे हैं।

जैसा कि सजय अकसर कहा करता था, उसे बुद्धिजीवियो से नफरत थी। उसने काम करने का खुद अपना एक तरीका निकाल लिया था और उससे कामयाबी भी मिलती थी। जो मिल मालिक दूकानदार या सरकारी अफसर 'उसकी आज्ञा मानने से इकार करते थे', उनके घरो पर वह प्रणव मुखर्जी से कहकर इनकम टक्स, एक्साइज और एनफोसमेट वालो से छापे डलवा देता था या उनका टक्स के बकाये का पिछले दस साल का हिसाब खुलवा देता था और जो लोग जरा भी अपनी मनमानी करने की कोशिश करते थे उनके पीछे वह ओम मेहता से कहकर पुलिस और सी० बी० आई० वालो को लगा देता था। इनकम टैक्स एक्साइज या सी० बी० आई० के विभागों में जो सबसे बडे अफसर थे वे सभी सजय के इशारे पर चलते थे क्योकि वह उनके फायदे का पूरा ध्यान रखता था—रिटायर हो जाने के बाद नौकरी बढवा देना, ऊँचा ओहदा दिला देना और नौकरी की बेहतर शर्तें दिला देना।

सजय और श्रीमती गाधी जिस ताकत पर भरोसा करते थे पुलिस पर उसकी वह अच्छी तरह देखभाल करते थे। सरकारी तौर पर इमर्जेंसी का ऐलान होने से पहले 25 जून को सुबह गृह मत्रालय के सक्रेटरी के दफ्तर मे एक मीटिंग मे इस बात पर जोर दिया गया कि पुलिस का हौसला बनाये रखना बहुत जरूरी है और उनकी हर सुख सुविधा का ध्यान रखा जाना चाहिए। बाद मे उनकी और फौजवालो की तनख्वाहें बढा दी गयीं, फौजवालों की रिटायर होने की उम्र भी बढा दी गयी।

पुलिसवालो ने और दूसरे लोगो ने अच्छा काम किया था, चारो ओर 'शान्ति' थी। लेकिन घराना खुश नही था। वहा हर वक्त यही महसूस किया जाता था कि यह तूफान से पहले की खामोशी है। कम-से-कम श्रीमती गांधी के सेक्रेटरी पी० एन० धर

तो जिससे भी मिलते थे उससे यही पूछते थे कि खुफिया विभाग वाले जो 'शान्ति' की खबरें देते हैं क्या वे सच हैं, लेकिन कोई उन्हे असलियत नही बताता था। हालांकि अब श्रीमती गाधी की यह आदत हो गयी थी कि वह वही बातें सुनती थी जो उनको अच्छी लगती थी, लेकिन कभी कभी यह भी सोचती थी कि जो खबरें उन्हें दी जाती हैं क्या वे सही और सच्ची हैं। जो कुछ मालूम न हो पाये उसका डर तो लगा ही रहता है।

सरकार ने 5 जनवरी को ससद के सामने इमर्जेंसी को कुछ समय के लिए और बढा देने की और मार्च मे होनेवाले चुनावो को कुछ समय के लिए टाल देने की काग्रेस की सिफ़ारिश पेश की।

विपक्ष के ज्यादातर सदस्यो ने ससद के अधिवेशन के पहले दिन की कारवाई मे भाग नही लिया, जिस दिन राष्ट्रपति ने वहाँ भाषण दिया था। उनके भाषण के बाद, जिसमे उन्होंने ग़रीबो को नयी सुविधाएँ देने, परिवार नियोजन का काम और तेजी से चलाने और व्यापार पर लगी हुई कुछ पाबन्दियो मे ढील देने के सरकार के कार्यक्रम की रूपरेखा पेश की गयी थी, सरकार विरोधी सदस्य सदन मे आकर बैठे और उन्होंने इमर्जेंसी पर भरपूर हमला किया। पी० जी० मावलकर ने ज़ोर देकर कहा कि "ससदीय जनतन्त्र को तोड मरोडकर उसकी शक्ल बिगाड दी गयी है।" एक और सदस्य समर मुखर्जी ने कहा, "ससद की भूमिका की जड खोखली कर दी गयी है और खतरा इस बात का है कि उसे और भी खोखला कर दिया जायेगा।"

कृष्णकान्त ने कहा

> जो बुनियादी सवाल हमे खुद अपने से पूछना चाहिए वह यह है कि जिन कामयाबियों का दावा किया जा रहा है क्या उन्हें हासिल करने के लिए दमन और अत्याचार के इन सारे उपायो की सचमुच जरूरत है। हमने एक जनतान्त्रिक सविधान अपनाया था और यह फैसला किया था कि जनतान्त्रिक तरीकों से राष्ट्रीय लक्ष्यो तक पहुँचने के लिए हम एक स्वतन्त्र और खुला समाज बनायेंगे। क्या ट्रेनो को ठीक वक्त से चलाने के लिए हमे मुसोलिनी के दार्शनिक विचार से सबक सीखना पडेगा ? क्या दफ्तरो मे और अन्य व्यवस्था म अनुशासन लाने के लिए हमारे लिए जरूरी है कि हम हिटलरी तरीके अपनायें ? क्या हमे चीजो की कीमतें घटाने के लिए अय्यूब खाँ और याह्या खाँ से सबक सीखना होगा ? क्या हमारे लिए जरूरी है कि लोगो की नागरिक स्वतन्त्रताएँ छीनने के लिए वसी ही दलीलें दें जैसी कि उगाडा में ईदी अमीन या फिलीपीस मे मार्कोस या यूनान मे फौजी जनरल देते हैं। मुसोलिनी की शुरू-शुरू की कामयाबियो से चर्चिल जसे लोग भले ही धोखे मे आ गये हो और कुछ समय के लिए डिक्टेटरो की तारीफ करने लगे हो, लेकिन नेहरू जैसे दूरदर्शी लोग इस तरह के दावो के जाल में नही फँसे। उन्होने इन कार-वाइयो की बाहरी सजावट की तह मे जाकर देखा और असलियत को जान लिया। यही वजह है कि हमने गाधीजी से प्रेरणा लेकर दूसरा ही रास्ता अपनाया।
>
> मैं जिस बुनियादी सवाल की बात कर रहा था, वह यह है कि समाजवाद की मजिल तक पहुँचने के लिए क्या हमें जनतन्त्र और जनतान्त्रिक तरीकों पर भरोसा है ? इमर्जेंसी की कामयाबियो का जो ढिंढोरा पीटा जा रहा है क्या वह इस बात को मान लेने का और भी जोरदार ऐलान नही है कि जनतान्त्रिक तरीके नाकामयाब हो गये हैं और उन पर से हमारा भरोसा

उठ गया है ?

क्या हम यह ऐलान कर रहे हैं कि महात्मा बुद्ध की तरह गांधीजी का भी इस देश के लिए कोई इस्तेमाल नहीं है ? बौद्ध-धर्म चीन, जापान और एशिया के दूसरे देशों में पनपा लेकिन भारत में नहीं पनपा, जहाँ महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ था और जहाँ उन्होंने उपदेश दिया था। आज जबकि सारी दुनिया गांधीजी से सीखने की कोशिश कर रही है, जिन्हें आधुनिक युग के लिए सबसे काम का आदमी समझा जाने लगा है, हम लोग इस देश में ही उन रवैयों को, उन तरीकों को छोड़ते जा रहे हैं जिनका उन्होंने सुझाव दिया था और जिन पर उन्होंने अमल किया था।

शायद हमारे लिए अपने आपको उस बात की याद दिलाना फ़ायदेमंद होगा जो प्रधानमंत्री ने 1969 में कही थी "ग़रीबी के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए डिक्टेटरशिप ज़रूरी नहीं है और न डिक्टेटरशिप से जनता को ताक़त ही मिलती है।" अध्यक्ष महोदय, भारतीय समाज में जो असली संकट पैदा हो गया था वह राजनीतिक भ्रष्टाचार था, जिसकी वजह से सार्वजनिक जीवन के सभी आदर्श कमज़ोर पड़ गये थे और आर्थिक तथा सामाजिक संकट ने हमें घेर लिया था। यह सच है कि ऐसी हालत पैदा करने के लिए सभी राजनीतिक पार्टियाँ ज़िम्मेदार हैं—चाहे वो सरकार में हों या विपक्ष में। लेकिन ज़ाहिर है कि इसके लिए शासक ज़्यादा ज़िम्मेदार हैं। असली समस्या यह है कि राजनीतिक पार्टियों और राजनीतिक नेताओं पर से लोगों का विश्वास उठ गया है और सार्वजनिक तथा राजनीतिक जीवन की सारी गन्दगी को दूर करने के लिए हम सबको मिलकर कोई फ़ैसला करना होगा।

यह तो पहले ही से मालूम था कि इमर्जेंसी को जारी रखने और चुनावों को टाल देने के सुझावों को संसद की मंज़ूरी मिल जायेगी। कांग्रेसी अब बहुत ख़ुश दिखायी पड़ रहे थे कि उन्हें अब यह समझाने के लिए कि इमर्जेंसी क्यों लागू की गयी मतदाताओं के सामने नहीं जाना पड़ेगा।

लेकिन उनमें से कुछ को संविधान सभा की कार्रवाई की याद आयी। इमर्जेंसी के बारे में उसमें जो धारा (उस समय 275) थी उसमें पहले यह कहा गया था कि अगर राष्ट्रपति को इस बात का पूरा यक़ीन हो कि गम्भीर इमर्जेंसी की हालत मौजूद है 'जिससे देश की सुरक्षा को ख़तरा है चाहे वह युद्ध से हो या घरेलू हिंसा से, तो वह ऐलान जारी करके इस आशय की घोषणा कर सकते हैं।"

बाद में इस धारा के शब्दों को बदलकर 'चाहे वह युद्ध से हो या घरेलू हिंसा से' की जगह ये शब्द रख दिये गये कि 'चाहे वह युद्ध से हो या बाहरी आक्रमण से या भीतरी उपद्रव से', क्योंकि डॉ० अम्बेडकर ने, जो उस समय क़ानूनमंत्री थे, कहा कि 'हो सकता है कि घरेलू हिंसा में बाहरी आक्रमण शामिल न हो।'

राष्ट्रपति को इतने असाधारण अधिकार दिये जाने की संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने आलोचना की थी। प्रोफ़ेसर के० टी० शाह ने 'भीतरी उपद्रव' को शामिल करने पर गहरी चिन्ता प्रकट की और ज़ोर देकर कहा कि इस संशोधन में "राष्ट्रपति को ऐसी सत्ता और अधिकार देने की कोशिश की गयी है जो जनतान्त्रिक उत्तरदायी सरकार के साथ मेल नहीं खाते।' एच० वी० कामथ ने कहा कि दुनिया के किसी भी जनतान्त्रिक देश के संविधान में इस तरह की व्यवस्था नहीं है। उन्होंने इस विचार की तुलना हिटलर के सत्ता पर अधिकार करने से की जब उसने ऐसी ही धाराओं का

सहारा लेकर वाइमार सविधान को नष्ट कर दिया था। लेकिन कृष्णमाचारी ने सदन के अधिकाश सदस्यो की भावना को व्यक्त करते हुए कहा कि "इमर्जेंसी की बात सिफ एक उद्देश्य से शामिल की गयी है, इस उद्देश्य से कि इतने वर्षों तक हमने सविधान बनाने के लिए जो कोशिशें की हैं वे व्यथ न जाने पायें और आगे चलकर जिन लोगो के हाथ मे सत्ता होगी उनके पास सविधान की रक्षा करने के लिए काफी अधिकार हो।"

इस धारा के नये शब्दो को सविधान सभा ने बिना किसी परिवतन के मान लिया और बाद मे उसे सविधान की धारा 352 के रूप मे स्वीकार कर लिया गया।

सरकार ने आन्तरिक सुरक्षा कानून मे भी हेर फेर करके अपने अधिकार और बढा लिये। इस कानून मे किसी को भी, अदालतो को भी, कारण बताये बिना राजनीतिक कैदियो को नजरबन्द रखने और जिनकी नजरबन्दी के आदेश की मियाद पूरी हो गयी हो या आदेश रद्द कर दिये गये हो, उनको फिर से गिरफ्तार करने की इजाजत दी गयी थी। लोकसभा ने 22 जनवरी को 27 के खिलाफ 181 वोटो से इस कानून को अपनी मजूरी दे दी।

मास्को का समथन करनेवाली कम्युनिस्ट पार्टी ने, जिसने इमर्जेंसी के दौरान सरकार को दिये गये अधिकारो का समथन किया था, पहली बार नजरबन्दी की मियाद बढाने के अधिकारो का विरोध किया और विपक्ष का साथ दिया। कम्युनिस्ट सदस्य भी विपक्ष के साथ थोडी देर के लिए सदन से बाहर चले गये जब सदन मे यह बिल पेश किया गया कि औद्योगिक मजदूरो को हर साल एक महीने की तनख्वाह के बराबर जो बोनस दिया जाता था वह 1976 मे सिफ आधे महीने की तनख्वाह के बराबर दिया जाये और जिन कम्पनियो को मुनाफा न हो वे 1977 मे बिलकुल बोनस न दें।

मीसा क़ानून के सख्त बनाये जाने के खिलाफ गोखले ने कबिनेट मे आवाज उठायी। वह इस बात के पक्ष मे थे कि अदालत मे नजरबन्दी पर विचार हो। लेकिन जब यह फैसला हो गया कि हर नजरबन्द के मामले पर विचार करने के लिए एक बोड बनाया जायेगा ताकि अगर बोड उसकी रिहाई का हुक्म न दे तो वह अदालत का सहारा ले सकता है गोखले ने अपना ऐतराज वापस ले लिया।

ऐसा लगता है कि मीसा के कानून मे यह नया सशोधन तमिलनाडु की स्थिति से निबटने के लिए किया गया था क्योकि केन्द्र ने 21 जनवरी को वहाँ की करुणानिधि की सरकार को बर्खास्त कर दिया था। गवनर की रिपोर्ट गह मत्रालय मे तयार की गयी और तमिलनाडु के गवनर के० के० शाह ने उस पर चूं भी किये बिना दस्तखत कर दिये। इस रिपोट मे कहा गया था कि राज्य की सरकार ने इमर्जेंसी मे दिये गये अधिकारो का दुरुपयोग करने और बडे पैमाने पर हर तरफ भ्रष्टाचार की छूट देने के अलावा बीच-बीच म 'अलग हो जाने की ढकी छिपी धमकियाँ' भी दी थी। डी० एम० के० की सरकार के खिलाफ भ्रष्टाचार कुनबापरवरी, प्रशासन और पैसे के मामले मे तरह-तरह की गडबडिया और सरकारी पद का बेजा फायदा उठाने के जो आरोप लगाये गये थे उनकी जाँच करने के लिए भारत सरकार ने सुप्रीम कोट के जज आर० एस० सरकारिया की निगरानी मे एक कमीशन बिठा दिया। करुणानिधि को हुक्म न मानने की सजा देना जरूरी था।

तमिलनाडु मे सरकार की बागडोर केन्द्र के हाथो मे ले लिये जाने के बाद वहाँ गिरफ्तारियो का बाजार गम हो गया। लगभग 9,000 आदमी गिरफ्तार किये गये। कुछ दिन बाद उनकी सख्या घटते घटते 2000 रह गयी।

तमिलनाडु की तरह गुजरात मे भी केन्द्रीय सरकार के इमर्जेंसी शासन के

क़ायदे-क़ानूनो का विरोध किया जा रहा था। हितेन्द्र देसाई ने, जो उस समय तक राज्य काग्रेस के नेता बन चुके थे, फरवरी मे एक रिपोर्ट म कहा कि ग़ैर काग्रेसी सर कार गुजरात मे अमन-चैन कायम रखने मे नाकामयाब रही है और वहाँ राजनीतिक हिंसा बढती जा रही है। राष्ट्रपति ने वहाँ का शासन भी 13 मार्च 1976 को अपने हाथो मे ले लिया।

तमिलनाडु और गुजरात मे गैर-काग्रेसी सरकारो को जिस तरह हटा दिया गया था उससे विपक्ष की पार्टियो को पहले से भी ज्यादा यह यकीन हो गया कि सिर्फ जिन्दा रहने के लिए भी उन्हे मिलकर एक हो जाना चाहिए। इमर्जेंसी के दौरान उन्होंने जो मुसीबतें झेली थी उनकी वजह से वह एक दूसरे के साथ बँध रही थी। चार पार्टियो ने—सगठन काग्रेस, जनसघ, भारतीय लोकदल और सोशलिस्टो ने—काग्रेस का और भी प्रभावशाली ढग से विरोध करने के लिए 26 मार्च को एक ही पार्टी मे मिल जाने की अपनी योजना का ऐलान किया। चारो पार्टियो को मिलाकर एक पार्टी बनाने का काम पूरा करने के लिए चार आदमियो की एक स्टीयरिंग कमटी बना दी गयी। एक बयान मे यह समझाया गया कि इस तरह मिलकर कारवाई करना इसलिए जरूरी हो गया है कि सरकार "जान-बूझकर हमारे जनतान्त्रिक ढाँचे को नष्ट करती रही है और अब उसने एक निरकुश शासन कायम कर लिया है जिसे वह हमेशा के लिए बनाये रखना चाहती है।" बयान मे यह भी कहा गया कि इस मामले मे जयप्रकाश ने भी "सलाह दी और मार्ग दिखाया।"

चरणसिह अकेले आदमी थे जो चाहते थे कि चारो पार्टियाँ फौरन मिलकर एक हो जायें। यह बात वह बहुत दिन से कहते आये थे। वह देख चुके थे कि किस तरह सयुक्त मोर्चे ने गुजरात मे काग्रेस के हाथो से सत्ता छीन ली थी। जनसघ और सोश लिस्ट तैयार थे लेकिन उनके नेता जेल मे थे। उनके लिए उनसे मजूरी लेना जरूरी था। सगठन काग्रेस ने कहा कि बेहतर यह होगा कि दूसरी राजनीतिक पार्टियाँ उसमे शामिल हो जायें क्योकि 1969 मे काग्रेस के दो टुकडे हो जाने के बाद उसके हाथ मे इतनी सम्पत्ति आ गयी थी जिससे हर महीने 1,00 000 रुपये किराया आता था। उसका कहना था कि अगर उसने अपना नाम बदल दिया तो यह सारी सम्पत्ति श्रीमती गाधी की काग्रेस को मिल जायेगी।

एक पार्टी बनाने की बातचीत रुक रुककर चलती रही लेकिन कई महीने तक उसका नतीजा नही निकला। रास्ते मे बहुत-सी रुकावटें थी जिन्हे पार करना था।

जिस वक्त देश के अन्दर विपक्ष की पार्टियो ने एकता की बात करना शुरू की, उन्ही दिनो लन्दन मे 24 अप्रैल को विदेशा मे रहनेवाले लगभग 300 हिन्दुस्तानियो का एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भारत मे पाबन्दियाँ लगानेवाले शासन के खिलाफ मुहिम चलाने की योजना बनाने के लिए हुआ। कई प्रतिनिधियो ने कहा कि विदेशो मे भार तीय अफसरो द्वारा प्रचार तथा भारत मे सेंसरशिप ने राजनीतिक कैदियो तथा उनके साथ बर्ताव को अन्तर्राष्ट्रीय मसला बनने से रोक दिया है। इनमे से बहुतो ने कहा कि 1,75 000 से भी अधिक राजनीतिक विरोधी जेलो मे थे तथा कई क़ैदियो के साथ नृशस व्यवहार किया जा रहा था।

श्रीमती गाधी के शासन पर हमला करते हुए बोलनेवालो ने कहा, 'जो चीज उनके नेतृत्व को काग्रेस पार्टी के अन्दर चुनौतियो से बचाने के लिए शुरू हुई थी उसने अब बढकर एक पार्टी की एकतरफा सत्ता को दी जानेवाली चुनौतियों से बचाव के उपाय का रूप धारण कर लिया है।'

लेकिन भारत मे आजादी के दीवानो को अभी कोट ने 28 अप्रल को यह

फसला कर दिया कि सरकार को अदालत मे सुनवायी के बिना अपने राजनीतिक विरोधियो को जेल मे डाल देने का अधिकार है। चार जज इसके पक्ष मे थे और एक खिलाफ था। इस फैसले मे सरकार के इस दावे का समथन किया गया था कि 1975 मे लागू की गयी इमर्जेंसी के दौरान राजनीतिक कैदियो को निचली अदालतो मे अपील दायर करके अपनी आज़ादी हासिल करने के लिए 'हेबियस कापस' का अधिकार नहीं है।

इलाहाबाद, बम्बई, दिल्ली, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, पजाब तथा हरियाणा और राजस्थान के सात हाईकोर्ट 43 नजरबन्द कैदियो की 'हेबियस कापस' की अर्जिया के पक्ष मे फैसला दे चुके थे। इन अदालतो ने यह रुख अपनाया था कि हालांकि बुनियादी अधिकारो के उल्लघन की बुनियाद पर वे नज़रबन्दी के आदेश रद्द नही कर सकते थे, लेकिन उन्हे यह फसला करने का अधिकार तो है ही कि ये आदेश सही हैं या नही और स्वाभाविक न्याय और सामान्य कानून के सिद्धान्तों से मेल खाते हैं या नही। सविधान की धारा 226 जिसमे हाईकोर्टों को 'हेबियस कापस' का आदेश जारी करने का अधिकार दिया गया है बुनियादी अधिकारों वाले परिच्छेद का हिस्सा नहीं है, और इसलिए उस इमर्जेंसी के अधिकारो के सहारे स्थगित नही किया जा सकता।

सरकार की ओर से नीरेन डे ने यह दलील दी कि "इमर्जेंसी के दौरान बुनियादी अधिकारो के मामले में भी राज्यसत्ता के हितो को व्यक्ति के हितो से ऊँचा स्थान दिया जाना चाहिए", नागरिको पर "इमर्जेंसी के दौरान किसी भी अधिकार के लिए आन्दोलन न चलाने की पाबन्दी लगा दी गयी है", और यह कि "इस समय निजी अधिकारो का कोई कानून नही है।" दूसरी ओर, शान्तिभूषण ने यह दावा किया कि कुछ अधिकार, जिनमे वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अधिकार भी है, सविधान की देन नही बल्कि जनतन्त्र का एक बुनियादी अश है, जिन्हें इमर्जेंसी से भी नही छीना जा सकता।

सुप्रीम कोर्ट ने फ़ैसला सुनाया कि 27 जून 1975 को जारी किये गये राष्ट्रपति के आदेश को ध्यान मे रखते हुए किसी भी आदमी को नजरबन्दी के आदेश की कानूनी हैसियत को चुनौती देते हुए रिट की अर्जी दायर करने का अधिकार नही है और यह कि 29 जून 1975 का ऑर्डिनेंस सविधान की दृष्टि से बिलकुल वैध है। इस ऑर्डिनेंस के ज़रिये मीसा के कानून मे यह हेर फेर कर दिया गया था कि नज़रबन्द किये जाने-वाले आदमी को अब यह बताना ज़रूरी नही रह गया है कि उसे क्यो नज़रबन्द किया जा रहा है। जस्टिस ए० एन० रे, एम० एच० बेग, वाई० वी० चन्द्रचूड और पी० एन० भगवती ने बहुमत दृष्टिकोण का समथन किया और जस्टिस एच० आर० खन्ना ने इसके विरुद्ध राय ज़ाहिर की।

जस्टिस रे ने यह कहा कि वैयक्तिक स्वतन्त्रता के अधिकार सहित सारे बुनियादी अधिकार सविधान ने ही दिये हैं और सविधान के सहारे उन्हें छीना भी जा सकता है। पहले से सामान्य कानून के तहत 'हेबियस कापस' का कोई सहारा मौजूद नही था और सामान्य कानून के तहत कोई भी अधिकार जो बुनियादी अधिकार के समान हो, बुनियादी अधिकार से अलग एक भिन्न अधिकार के रूप मे नही रह सकता। कानून का शासन स्वतन्त्र समाज का पर्याय नही है, बुनियादी अधिकारो को लागू करवाने का अधिकार कुछ समय के लिए छीन लिये जाने का मतलब यह है कि इमर्जेंसी के दौरान इमर्जेंसी के क़ायदे कानून ही कानून का शासन हो गये हैं। कानून के स[illegible] निक शासन से अलग कानून का कोई शासन नही हो सकता और इमर्जेंसी के सविधान के प्रावधानो को रद्द करान के लिए कानून के किसी शासन [illegible] दी जा सकती।

जस्टिस भगवती ने कहा कि संकट के समय इस सिद्धान्त को ही सबसे बड़ा माना जाना चाहिए कि सार्वजनिक सुरक्षा ही सर्वोच्च क़ानून है। यह ज़रूरी नहीं है कि इमर्जेंसी का ऐलान करने के लिए युद्ध या बाहरी आक्रमण या भीतरी उपद्रव हो ही, बस इतना ही काफ़ी है कि इस तरह के किसी संकट का ख़तरा सर पर मँडरा रहा हो। जस्टिस बेग ने कहा कि इस अदालत के सामने ऐसा कोई मामला नहीं आया है जिसमें यह कहा गया हो कि सरकार ने अपने अधिकारों का बेजा इस्तेमाल किया है।

अपने अल्पमत फ़ैसले में जस्टिस खन्ना ने कहा कि संविधान में किसी भी अधिकारी को यह हक़ नहीं दिया गया है कि वह हाईकोर्टों से 'हेबियस कार्पस' का रिट जारी करने का अधिकार छीन ले। इमर्जेंसी के ज़माने में भी सरकार को इस बात का कोई अधिकार नहीं है कि वह क़ानून के सहारे के बिना किसी आदमी की जान या उससे उसकी स्वतन्त्रता ले ले। और जब तक किसी आदमी की जान और उसकी स्वतन्त्रता को इतना पवित्र नहीं माना जायेगा तब तक बिना क़ानून के चलनेवाले समाज और क़ानून के अनुसार चलनेवाले समाज में अन्तर का कोई मतलब ही नहीं रह जायेगा। अगर सरकार की दलील मान ली जाय तो कोई भी अधिकारी किसी भी आदमी को क़ानून का सहारा लिये बिना जब तक जी चाहे नज़रबन्द रख सकता है। सवाल यह नहीं है कि ऐसा हुआ है या नहीं, लेकिन सरकार की दलील मान लेने से यह नतीजा हो सकता है।

इस फ़ैसले पर लोगों को ताज्जुब हुआ और कुछ लोगों को तो निराशा भी हुई क्योंकि यह यक़ीन किया जाने लगा था कि जस्टिस चन्द्रचूड़ और जस्टिस भगवती नज़रबन्दों का पक्ष लेंगे और 'हेबियस कार्पस' की अर्ज़ी 2 जजों के ख़िलाफ़ 3 जजों की राय से मंज़ूर कर ली जायेगी। बहुमत में से एक जज ने यह भी कहा कि एक के बाद एक कई वकीलों ने यह डर ज़ाहिर किया है कि इमर्जेंसी के दौरान सरकार नज़रबन्द क़ैदियों को नंगा करके कोड़े लगवा सकती है, उन्हें भूखा मार सकती है, और अगर अदालत ने उसके हक़ में फ़ैसला दे दिया तो वह उन्हें गोली से भी उड़ा सकती है। लेकिन उन्हें इस बात पर बहुत सन्तोष था कि स्वतन्त्र भारत के नाम पर इस तरह के किसी कुकर्म का कलंक नहीं लगा है। और उन्हें उम्मीद थी कि इस तरह की बातें कभी नहीं होंगी।

जब लोगों के साथ पाशविक अत्याचारों की दर्जनों मिसालें सामने आयीं तो साबित हो गया कि उनकी यह उम्मीद असल में कितनी ग़लत थी।

लोगों को तरह तरह की यातनाएँ दी गयीं। उनको नंगा करके नाल लगे हुए फ़ौजी बूटों से रौंदा गया, तलुओं पर बुरी तरह मारा गया, पिंडलियों की हड्डियों पर पुलिस की लाठियाँ, उस पर एक कांस्टेबुल को बिठाकर, बेलन की तरह घुमायी गयीं, उन्हें घंटों एक ही तरह से झुकाकर बिठाये रखा गया, रीढ़ की हड्डी पर मारा गया, दोनों कानों पर इतने तमाचे मारे गये कि मार खानेवाला बेहोश हो गया, राइफ़लों के कुन्दों से मारा गया, शरीर के सूराखों में तार लगाकर बिजली दौड़ा दी गयी, सत्याग्रहियों को नंगा करके बर्फ़ की सिलों पर लिटाया गया, जलती हुई सिगरेटों और मोमबत्तियों से शरीर को दाग़ा गया, उन्हें खाने और पानी के बिना रखा गया और खाने नहीं दिया गया और अपना ही पेशाब पीने पर मजबूर किया गया, कलाई पीछे बाँधकर 'हवाई जहाज़' बनाकर लटका दिया गया। (जिस हवाई जहाज़ बनाना होता था उसके दोनों हाथ पीठ के पीछे रस्सी से बाँध दिये जाते थे। फिर रस्सी को छत पर लगी हुई एक चर्खी के ऊपर से ले जाकर खींच दिया

जाता था। आदमी ज़मीन से कई फुट ऊपर उठ जाता था और पीठ के पीछे बँधे हुए हाथों से हवा में लटकता रहता था।)

यह सब-कुछ बाकायदा योजना बनाकर किया जाता था। दस बारह सिपाही किसी कैदी को घेर लेते थे और चुनकर कोई यातना उस पर आज़माते थे। अगर उसके शरीर पर घाव का कोई निशान दिखायी देता था या उसकी जिस्मानी हालत पर कोई असर हो जाता था तो पुलिस उसे मजिस्ट्रेट के सामने पेश नहीं करती थी कि कहीं फटकार न पड़े। अगर कैदी को तलाश करने का वारंट जारी कर दिया जाता था तो पुलिसवाले उसे एक थाने से दूसरे थाने और दूसरे से तीसरे थाने पहुँचा देती थी। अधिकारियों के लिए मीसा एक वरदान था क्योंकि इस कानून के तहत गिरफ्तार किया गया आदमी किसी अदालत में फरियाद भी नहीं कर सकता था।

जाज फर्नांडीज़ का अता-पता मालूम करने के लिए उनके भाई लारेंस फर्नांडीज़ को बंगलौर में उनके घर से पुलिस पकड़कर ले गयी।

उनकी कहानी उन्हीं की ज़बानी इस तरह है

6 मई 1976 की रात को मैंने किसी को मेरा नाम लेकर पुकारते सुना। यह सोचकर कि कोई दोस्त होगा मैं फाटक की तरफ बढ़ा। देखता क्या हूँ कि मेरे घर के बाहर ही पुलिस की जीप खड़ी है। आवाज़ देनेवाला मुफ्ती में पुलिस का एक अफसर था। उसने मुझसे कहा कि अदालत में माइकेल की रिट पिटीशन के सिलसिले में कोई बयान देने के लिए मुझे पुलिस ने बुलाया है। (लारेंस का छोटा भाई माइकेल इंडियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज़ में इंजीनियर था और वह भी मीसा में गिरफ्तार कर लिया गया था।) यह सोचकर कि ज़्यादा वक्त नहीं लगेगा मैं अपने बूढ़े माँ बाप को बताये बिना ही घर से निकल पड़ा।

पुलिस ने एक घंटे तक मेरा बयान दर्ज किया और फिर मुझे जासूस विभाग के दफ्तर ले गये। वहाँ किसी ने अचानक मेरे ज़ोर का थप्पड़ मारा। (कई मिनट तक मेरी आँखों के आगे अँधेरा छाया रहा।) जब मुझे होश आया तो मैंने महसूस किया कि उन लोगों ने मेरे सारे कपड़े उतार दिये थे।

वहाँ दस पुलिसवाले थे। उन्होंने मेरी धुनाई शुरू की। मेरे जिस्म के हर हिस्से पर लाठियाँ बरस रही थीं और एक एक करके चार लाठियाँ टूट चुकी थीं। मैं फर्श पर पड़ा मारे दर्द के तड़प रहा था। मैंने हाथ जोड़कर उनसे दया की भीख माँगी, घुटनों के बल रेंगकर मैंने एक बार फिर उनसे हाथ जोड़कर बस करने को कहा। मगर वे मुझे फुटबाल की तरह ठोकरें लगाते रहे। इसके बाद वे कहीं से एक मूसल ले आये और उससे मुझे कई बार मारा। वह भी टूट गया और मैं दर्द से चीखने लगा।

इसके बाद आखिरी हल्ला हुआ। मैं फर्श पर पड़ा हुआ था और वे बरगद की जड़ लेकर मेरे ऊपर पिल पड़े। मैं बेहोशी और थोड़े थोड़े होश के बीच मँडरा रहा था।

सुबह के लगभग तीन बजे होंगे जब मेरी आँख खुली और मैंने पानी माँगा। प्यास के मारे मेरी जान निकली जा रही थी। जब मैंने हाथ जोड़कर पानी माँगा तो एक अफसर ने पुलिसवालों से मेरे मुँह में पेशाब करने को कहा, लेकिन उन्होंने किया नहीं। जब मेरा दम बिलकुल फूलने लगता था तो वे दो एक चम्मच पानी से मेरे होंठ तर कर देते थे। वे जानना चाहते थे कि जाज कहाँ है और जाज की बीवी लैला और उनका बेटा सितम्बर 1975 में बंगलौर क्यों आये थे। वे यह भी मालूम करना चाहते थे कि उनकी वापसी पर मैं उनके साथ मद्रास क्यों गया था।

मेरी हालत इतनी नाजुक थी कि उन्हें लगा कि मैं किसी भी क्षण दम तोड दूँगा। एक अफसर ने कांस्टेबलों से जीप तैयार करने को कहा। मैंने उस अफसर को अपने आदमियों से कहते सुना "इसे चलती ट्रेन के आगे फेंक दो और कह देना कि इसने आत्महत्या कर ली।" मैं बिलकुल टूट चुका था। मेरे जिस्म के बाएँ हिस्से की न जाने कितनी हड्डियाँ टूट चुकी थी और मेरी जाँघो म बला का दद हो रहा था। मेरी टाँगें और हाथ बुरी तरह सूज गये थे।

इसके बाद मुझे एक जीप पर ले जाया गया जो मल्लेश्वरम की तरफ जा रही थी। मैंने समझा कि शायद वह अफसर सचमुच अपनी धमकी पर अमल करने जा रहा है। मैं उससे दया की भीख माँगने लगा। ज़ाहिर है उन्होंने अपना इरादा बदल दिया था। मुझे व्यालिकवल की हवालात म ले जाकर बन्द कर दिया गया। अगले दिन मुझे फिर सी० ग्रो० डी० (जासूस विभाग) के दफ्तर लाया गया।

वहाँ मैंने पहली बार एक औरत की जानी पहचानी आवाज सुनी। वह स्नेहलता रेड्डी की आवाज़ थी। वह बुरी तरह चीख रही थी। पुलिस ने किसी को मेरी मालिश करने के लिए बुलवाया। उसने मेरे हाथ पाव पर तेल लगाया लेकिन थोडी ही देर बाद बोला कि मेरी मदद कर सकना उसके वश के बाहर है। उसने अफसरो को मुझे किसी अस्पताल पहुचा देने की सलाह दी। लेकिन उन लोगो ने सुनी अनसुनी कर दी।

अगले दिन मुझे उस कमरे को पहचानने के लिए जिसमे जाज आकर ठहरा था एक होटल मे ले जाया गया। कुछ देर बाद फिर सी० ओ० डी० के दफ्तर मे लौटने पर मैं भूख से बेहाल लेट गया। जब मैं गिडगिडाकर खाना माँगता तो पुलिस वाले मुझ पर गालियो की बौछार कर देते। डाक्टर बुलाया गया। उसने मुझे देख-दाखकर दवाएँ लिख दी। इसके बाद कुछ दिन तक मुझे मल्लेश्वरम के थाने मे रखा गया।

पाखाने पेशाब के लिए भी पुलिसवालो को मुझे उठाकर ले जाना पडता था। 9 मई को जबरदस्ती मेरे बाल काटे गये दाढी बनायी गयी और नहलाया गया, लेकिन कपडे वही बदबूदार पहना दिय गये।

कुछ देर बाद दो अफसर सादी पोशाक पहने हुए आये और मुझे मोटर पर बिठाकर ले गये। मेरा धीरज टूट गया और मैं फूट फूटकर रोने लगा। उन्होंने मुझसे कहा कि जो कुछ हुआ उसके लिए व ज़िम्मदार नही है। उन्होने बताया कि उन्हे यह काम सौंपा गया था कि वह मेरी गिरफ्तारी चित्रदुग म (वहाँ स कोई 150 किलो मीटर दूर एक छोटे से कस्ब म) दिखायें।

लेकिन मुझे दावनगीर ल जाया गया। वहाँ मुझे बताया गया कि मुझे मजिस्ट्रेट के सामन पेश किया जायगा और मुझे उसस यह कहना है कि मैं उसी दिन बस के अड्डे पर गिरफ्तार किया गया था। इसके बाद मुझे एक छोटी सी कोठरी म ढकेल दिया गया जहाँ खटमलो और कॉक्रोचो की भरमार थी।

वहाँ के दो इस्पेक्टरो ने आकर मुझस कहा कि अगर मैंन मजिस्ट्रट के सामने पुलिस के जुल्मो के बारे म एक बात भी मुह स निकाली तो मेरे [illegible] निशान मिटा दिया जायेगा। व मुझे मजिस्ट्रट क घर न [illegible] का नाम अपना इरादा वदल दिया और मुझे [illegible] रर हवा [illegible] वन उन्होने दिया। [illegible] में डाल

बाद म मुझे नग पाँव [illegible] अदालत [illegible] मरे पाँव मूजकर दून हो गय थे।

मजिस्ट्रेट ने मुझसे पूछा कि मैं कब गिरफ्तार किया गया था। मेरी ज़बान लड़खड़ाने लगी क्योंकि मैं भूल चुका था कि पुलिस के अफसरों ने मुझसे कौन-सी तारीख और कौन सा वक्त बताने को कहा था। मजिस्ट्रेट ने खुद मुझे इशारा दिया और सर हिलाते हुए मुझसे पूछा कि क्या मैं एक दिन पहले बस के अड्डे पर गिरफ्तार किया गया था। मैं चुप खड़ा रहा और मजिस्ट्रेट ने मुझे 20 मई तक पुलिस की हिरासत में रखने का हुक्म दे दिया।

इसके बाद मुझे हवालात की कुछ बड़ी कोठरी में एक ऐसे आदमी के साथ रखा गया जो 50,000 रु० की चोरी के मामले में पकड़ा गया था। वह पुलिसवालों पर अपना हुक्म चलाता था और जब भी उसका जी चाहता था खाना और सिगरेटें मंगाता रहता था। उसने मुझे तसल्ली दी और वायदा किया कि जिस चीज की भी मुझे जरूरत होगी वह मुझे मंगा देगा। कान्स्टेबल और दरोगा उसके एक इशारे पर भागे हुए आते थे। उसे सजा हो जाने के बाद जेल में फिर उससे मेरी मुलाकात हुई।

11 मई को मुझे फिर बंगलौर वापस लाया गया और मल्लेश्वरम की हवालात में बन्द कर दिया गया। बाद में मुझे मल्लेश्वरम अस्पताल ले जाया गया, जहाँ डाक्टरों ने बताया कि मेरा एक्स रे लेना पड़ेगा। पुलिस के अफसरों ने इसकी इजाज़त देने से इंकार कर दिया। मुझे फिर थाने वापस ले आया गया।

अगले दिन मुझे दूसरे अस्पताल ले जाया गया—कंटोनमेंट के बावरिंग अस्पताल में। वहाँ डॉक्टरों ने बहुत सरसरी तौर पर मुझे देखा भाला और मेरे साथ बड़ी बदतमीज़ी से पेश आये।

मुझे फिर मल्लेश्वरम ले जाया गया जहाँ मुझे नशीली दवाएँ दी जाने लगीं। नतीजा यह हुआ कि मुझे पेचिश हो गयी और तीन दिन तक मेरा बुरा हाल रहा। इसके लिए उन्होंने मुझे कुछ और दवाएँ दीं और मैं अच्छा हो गया। पुलिस को बड़ी फिक्र थी कि मैं किसी तरह 20 तारीख से पहले अच्छा हो जाऊं। उस दिन मुझे फिर मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाना था।

मल्लेश्वरम का थानेदार रोज रात को शराब पीने के लिए मुझ पर ज़ोर डालता रहा था, लेकिन एक कान्स्टेबल ने मुझे ऐसा करने से मना किया। दूसरे दिन एक बड़ा अफसर आया और मुझसे बोला कि मुझ पर जो कुछ बीती है उसका उसे पूरा पता है। उसने मुझे यकीन दिलाया कि मैं 20 तारीख को छोड़ दिया जाऊँगा। लेकिन अगले दिन जब मुझे मजिस्ट्रेट की अदालत में पेश किया गया तो मुझे वहाँ कोई ऐसा आदमी दिखायी नहीं दिया जो मेरी जमानत कराता। मैंने मजिस्ट्रेट से पुलिस के जुल्म की शिकायत की। उसने कहा कि शिकायत दर्ज कर ली गयी है।

उसके बाद वे मुझे सीधे सेंट्रल जेल ले गये और मेरी सारी उम्मीदों पर पानी फिर गया। जीप बिलकुल जेल की कोठरी के दरवाजे पर ले जाकर रोकी गयी। मेरे दुर्भाग्य से वहाँ का वार्डन एक लम्बा चौड़ा तगड़ा सा काले रंग का छः फुटा आदमी था। उसे देखते ही मेरा दम निकल गया। मेरे सब कपड़े उतारे गये मेरी जेब में जो बीड़ियाँ थीं वह छीन ली गयीं और मुझे काल कोठरी में डाल दिया गया। कोठरी अँधेरी और बदबूदार थी। मुझे कुछ पता नहीं कि इसके बाद क्या हुआ।

इतने में मैंने सुना कि कोई बार बार मुझे पुकार रहा है। मैंने सोचा कि शायद मेरे कान बज रहे होंगे, क्योंकि उनमें से एक आवाज जानी पहचानी थी। वह मधु (दंडवते) की आवाज थी। मैं किसी तरह घिसटता हुआ कोठरी के दरवाजे तक पहुँचा और उसका सीखचा पकड़कर खड़ा हो गया।

मधु ने कहा—लारेंस, तुम हो? मेरी बात का जवाब दो। क्या पुलिस ने

तुम्हारे साथ जोर-जुल्म किया है ?

मैंने डूबती हुई आवाज में हाँ कहा। बाहर एक शोर मचा हुआ था। कैदियों के बीच एक अफवाह फैल गयी थी कि बेलगाँव जेल का भागा हुआ एक कैदी फिर पकड़कर यहाँ लाया गया है।

थोड़ी ही देर बाद जेलों के इंस्पेक्टर जनरल, जेल का सुपरिंटेंडेंट और डाक्टर लोग वहाँ पहुँचे। वे अपनी पूरी आवाज से चिल्लाते रहे। शायद उनकी सबसे बड़ी कोशिश यह थी कि मुझे पागल बना दें। चूंकि मुझे साँस की तकलीफ थी इसलिए उन्होंने मुझे बाहर सोने की इजाजत दे दी थी। इसके बाद मधु दंडवते और मीसा में नजरबंद दूसरे कैदियों ने जेल में भूख-हड़ताल कर दी। उनकी माँग थी कि मुझे काल कोठरी से निकालकर किसी बेहतर जगह रखा जाय।

दूसरे दिन ऐसा लगता है कि शायद मेरा सबसे छोटा भाई और माँ मुझसे मिलने जेल आये थे। मुझे उस मुलाकात की याद नहीं। जेल की अपनी अलग ही एक दुनिया है। अगर मैं आजाद रहा तो मैं जेलों को सुधारने के लिए लड़ूंगा।

जेल के हाकिम मुझे विक्टोरिया अस्पताल ले गये, वहाँ मेरा एक्स रे लिया गया और पलस्तर चढ़ा दिया गया। मीसा का ऑर्डर मुझे 22 मई को दिया गया। बाद में सुपरिंटेंडेंट मुझसे वह ऑर्डर वापस ले लेना चाहता था लेकिन मैंने देने से इंकार कर दिया। जब मैं पाखाने गया हुआ था तो उन्होंने मेरी कोठरी की तलाशी भी ली लेकिन उनके हाथ कुछ न लगा।

कुछ दिन बाद वही सुपरिंटेंडेंट अपने पूरे फौज फाटे के साथ फिर आया और मेरी खैरियत पूछने लगा। उसे देखते ही मेरा खून खौल उठा और मैंने उससे वहाँ से चले जाने को कहा, क्योंकि उसने अपना एक भी वायदा पूरा नहीं किया था। उसने मेरी कोठरी पर ताला डलवा देने की धमकी दी। मैंने उससे कहा "जी चाहे तो मुझे गोली से उड़वा दो, मुझे परवाह नहीं। मौत जैसी तुम्हारी वैसी मेरी।

एक और दर्दनाक कहानी स्नेहलता रेड्डी की है। वह एक दुबली पतली लड़की थी और राजनीतिक शुबह की वजह से 1 मई 1976 को बंगलौर सेण्ट्रल जेल में कैद कर दी गयी थी।[1] उसे न यह बताया गया कि उसका जुर्म क्या है न उससे कोई सवाल पूछा गया।

सिनेमा देखनेवालों के लिए स्नेहलता कई इनाम जीतनेवाली कन्नड़ फिल्म संस्कार की हीरोइन थी (जिसके प्रोड्यूसर और डायरेक्टर उसके पति पट्टाभि थे)। बंगलौर के नाट्य और कला जगत में भी उसका बहुत नाम था।

लेकिन सबसे बड़ी बात यह थी कि उसकी जान पहचान जीवन के सभी क्षेत्रों के लोगों के साथ थी—सोशलिस्ट नेताओं और बुद्धिजीवियों से, भारत के और विदेशों के नाटयमंच के कलाकारों से, लेखकों, चित्रकारों और जादूगरों से, और सबसे बढ़कर कई ऐसे नौजवान लोगों से जो अभी तक यह खोजने की कोशिश कर रहे थे कि जीवन का अर्थ क्या है, उसका उद्देश्य क्या है। दिन रात उसके घर के दरवाजे दोस्तों के लिए हमेशा खुले रहते थे।

उसके मित्रों का इतना बड़ा दायरा और उसकी दोस्ती में इतनी गर्मजोशी—इन्हीं बातों ने उसे जेल में पहुँचा दिया। जार्ज फर्नांडीज के साथ उसकी पुरानी दोस्ती थी। कठिन हालात में इस तरह की दोस्ती का होना ही दर्दनाक नतीजों की जड़

[1] स्नेहलता की जेल की डायरी पर आधारित।

बन गया।

पलक झपकते उसकी सु दर दुनिया बिखर गयी और भय और अनजानी आशकाओ की अधेरी रात शुरू हो गयी। उसकी बेटी नन्दना को दो बार पूछताछ के लिए पकडा गया और पूरे परिवार पर कडी नजर रखी जाने लगी।

वह और उसके पति अपनी नयी फिल्म के लिए लाइटो का ब दोबस्त करने के लिए 27 अप्रल को मद्रास जानेवाले थे। शाम को 4 बजे नन्दना को पुलिस तीसरी बार पूछ-ताछ के लिए पकडकर ले गयी।

वह शाम को 7 बजे लौटकर आयी। किसी को बताया भी नही गया था इसलिए पूरे परिवार का चिन्ता के मारे बुरा हाल था। उसके इस तरह अचानक गायब हो जाने से सारा प्रोग्राम गडबड हो गया था। सभी लोग बेहद परेशान थे। आखिर कार वे दोनो अपने बेटे कोणाक को वही छोडकर रात को 9 बजे मद्रास के लिए रवाना हुए।

आधी रात को किसी ने दरवाजा खटखटाया और जोर से आवाज दी 'टेलीग्राम'। कोणाक ने दरवाजा खोला और फौरन ही उसकी दोनो बाँह जकड ली गयी। साथ ही पुलिसवालो का एक झुण्ड दनदनाता हुआ घर म घुस आया। यह पता लगने पर कि बाकी परिवार मद्रास गया हुआ है, वे लोग उस लडके को घसीटकर थाने ले गय। ज्यादातर पुलिसवाले सारे घर को उलट पुलटकर तलाशी लेन के लिए और स्नेहलता के 84 वष के बूढे बाप और नौकरा से पूछ ताछ के लिए वही रह गये। वे लोग दूसरे दिन छ बजे वहा स विदा हुए।

मद्रास म स्नेहलता और उसके पति को जो पहली खबर मिली वह यह थी कि उनके बहुत पुराने दोस्त अप्पाराव और उनकी बेटी को उसी दिन सवेरे गिरफ्तार कर लिया गया था। उ होन फौरन टेलीफोन पर बगलौर स बात करने की कोशिश की, लेकिन उनका फोन काट दिया गया था। आखिरकार उ होन जब पडोसी से टेलीफोन मिलाया ता उ हे पता चला कि रात को क्या हुआ था। उ होने बगलौर वापस जाने का फसला किया और अपना सामान बाँधन के लिए होटल लौट आये।

बगलौर पहुँचने पर उ हे सीधे कालटन हाउस ले जाया गया। वहाँ स्नेह ता और उसके पति को गिरफ्तार कर लिया गया और बाकी लोगो को घर पहुचा दिया गया। कोणाक का अभी तक कही पता नही चल सका था। स्नेहलता और पट्टाभि थककर चूर हो चुके थे। पिछली रात व माटर चलाकर मद्रास गये थे और वहाँ जरा भी आराम किय बिना अगल ही दिन वापस आ गय थे।

सारी रात उ ह एक कमरे म बिठाये रखा गया। पहरे पर जा स तरी था उसस बस इतना ही मालूम हो सका कि 'साइबरु ईगा बरतरे' (साहब अभी आते ही हागे)। उस रात काई भी नही आया।

आखिरकार उस और उसके पति का पूछ ताछ के लिए अलग अलग कमरो मे ले जाया गया। धीरज तोड देने की तरकीब कारगर हुई। मालूम नही कि वह जान बूझकर अपनायी गयी थी या केवल सयोग था। इसस पहले कि कोई एक शब्द भी कहता या काई सवाल करता, स्नेहलता ने खुद ही कहा, मरे बटे को वापस ले आओ मेरे पति को छोड दा, मेरी बेटी को न सताने का वायदा करो तो मुझे जो कुछ भी मालूम है सब बता दूगी।

तब तक स्नेहलता और पट्टाभि का इसके अलावा और कोई कसूर नही बताया जा सका था कि एक राजनीतिक शरणार्थी के साथ उनकी खुली दोस्ती थी। १०८ इतनी भोली थी कि जिस नई दुनिया म अचानक उसने कदम रखा था उसकी

पाना उसके लिए मुश्किल था। थकन, नींद और अपने बच्चों की चिन्ता से वह इतना निढाल थी कि अनजाने ही उसने एक ऐसी बात कह दी थी जो उसके गले का फंदा बन गयी।

उसके परिवार के सब लोग सकुशल हैं, यह साबित करने के लिए उन्हें एक एक करके उसके कमरे में लाया गया। फिर सबको घर भेज दिया गया, अकेले उसे ही वहाँ रोक रखा गया। अगले हफ्ते के दौरान जो कुछ हुआ उससे कुछ धीरज बंधा।

स्नेहलता से कई बार पूछ-ताछ की गयी लेकिन उसके पास बताने को था ही क्या। परिवार वालों को उसका बिस्तर, उसके कपड़े और खाना लाने की इजाजत दे दी गयी। उसके साथ राजनीतिक नजरबन्द बन्दी जैसा सलूक किया जाने लगा। परिवारवालों को उससे मुलाक़ात करने की भी इजाजत थी।

7 मई की शाम को जब पट्टाभि खाना लेकर वहाँ पहुँचा तो कार्लटन हाउस में ताला पड़ा हुआ था और चारों ओर सन्नाटा था। यह सोचकर कि पूछ-ताछ के लिए शायद उसे किसी और जगह ले जाया गया होगा, वह वहीं बैठकर राह देखने लगा। रात को साढ़े दस बजे वह घर लौटा, लेकिन आधी रात के करीब फिर वहाँ गया। अब भी वहाँ कोई नहीं था। घर लौटकर कितनी ही जगह टेलीफोन किया पर कुछ नतीजा नहीं निकला। उस रात घर में कोई भी नहीं सोया। दूसरे दिन सुबह किसी दयालु गुमनाम आदमी ने फोन पर उन्हें बताया कि उसे शक है कि स्नेहलता को जेल पहुँचा दिया गया है।

जिस तरह उस पहली गिरफ्तारी के वक्त चरका दिया गया था, उसी तरह चरका देकर उसे जेल पहुँचा दिया गया। उसके परिवारवालों को कानोंकान खबर नहीं हुई। उस दिन शाम के करीब उसे बताया गया कि उसे छोड़ा जानेवाला है इसलिए अपना सामान बाँधकर तयार रहे। सबसे पहले वे लोग एक मजिस्ट्रेट की अदालत पर रुके।

बाकी कार्रवाई तो रस्मी लग रही थी, लेकिन अचानक उसके कानों में ये शब्द पड़े कि 'तुम्हें नजरबन्द करने का हुक्म दिया जाता है।' मजिस्ट्रेट ने यह भी कहा कि जैसे ही उसके परिवार वाले जमानत के लिए पैसा जुटा लेंगे उसे रिहा कर दिया जायेगा। स्नेहलता ने एक पुलिसवाले से कहा कि वह फोन करके उसके पति को बता दे कि वह इस वक्त कहाँ है। वह फोन तक गया और फोन पर बात करने का नाटक भी किया, लेकिन न कभी फोन मिलाया गया और न ही अगले दिन सुबह तक उसके परिवार वालों को उसका कुछ हाल मालूम हो सका।

इसी बीच काग़ज़ात पर दस्तख़त हो गये, हुक्म जारी हो गया। स्नेहलता एक बार फिर कार्लटन हाउस पहुँचा दी गयी। तब तक शाम हो चुकी थी। मई के महीने में झुटपुटे के वक्त, जब चारों ओर उदासी छा जाती है स्नेहलता को बंगलौर सेण्ट्रल जेल की डरावनी, बेरहम और पथरीली इमारत में पहुँचा दिया गया। वहाँ पहुँचने पर उसे पहले अपमानजनक अनुभव से गुजरना पड़ा। इसके बाद तो उसे इस तरह के न जाने कितनी बार अनुभव हुए।

उसके सामान की एक एक चीज की तलाशी ली गयी, कैदियों के रजिस्टर में उसके दस्तख़त और उसके अँगूठे का निशान लिया गया, और खुद उसके सारे कपड़े उतरवाकर उसकी तलाशी ली गयी।

इसके बाद उसे एक सीली हुई कोठरी में बन्द कर दिया गया जो बस इतनी बड़ी थी कि एक आदमी भी उसमें मुश्किल से रह सकता था। कोठरी के सिरे पर पाखाने-पेशाब के लिए एक छोटी सी नाली थी और दूसरे सिरे पर लोहे के सीखचों

का एक दरवाजा था। उसे अपने घरवालों पर इतना गुस्सा आ रहा था कि कि उसका डर और उसकी उदासी भी कुछ दब गयी। उन लोगों से इतना भी न हुआ कि मुझे छुड़ाने की कोशिश करते या मुझसे मिलने ही आ जाते। उसे क्या मालूम था कि उन लोगों ने सारी रात जागकर काटी थी। पुलिसवालों ने कभी फोन करके उन्हें बताया ही नहीं था कि वह कहाँ है।

अगले दिन सुबह उन्हें मालूम हुआ कि वह जेल में है और वे उसकी जमानत की अर्जी देने मजिस्ट्रेट के घर गये। मजिस्ट्रेट ने उन्हें यकीन दिलाया कि अगर उनका वकील बाकायदा अर्जी देगा तो जमानत मजूर कर दी जायेगी। वकील को इस बात का इतना भरोसा नहीं था, फिर भी कोशिश उसने की। उसे निजी तौर पर बता दिया गया कि इस मामले में जमानत नहीं हो सकती। कैद की यातना शुरू हो चुकी थी। धीरे धीरे इस पूरे काड पर से रहस्य का परदा उठने लगा।

पहले स्नेहलता पर भारतीय दण्ड सहिता की दफा 120 और 120 ए के तहत मामला दर्ज किया गया था। आखिरकार जब सरकार कोई भी जुर्म साबित नहीं कर सकी तो मामला वापस ले लिया गया। लेकिन स्नेहलता अब भी जेल में ही कैद रही इस बार मीसा में। अब बहस की कोई गुजाइश ही नहीं थी।

धीरे धीरे जेल की हकीकत स्नेहलता की समझ में आने लगी। उसकी सेहत इतनी खराब हो चुकी थी कि आखिरकार इसी बुनियाद पर उसे छोड़ दिया गया।

जेल के बाहर आने के कुछ ही दिन बाद दिल का दौरा पड़ने की वजह से उसकी मौत हो गयी।

लारेंस और स्नेहलता रेड्डी जस और न जाने कितने लोग थे। वे सभी ज्यादतियों और यातनाओं के शिकार हुए थे।

मगलौर के कनारा कालेज के छात्र नेता उदयशकर को उसके घर से बिना वारण्ट के गिरफ्तार कर लिया गया था। पुलिस ने बदर थाने में उसे इतने बेंत मारे और इतनी ठोकरें लगायी कि उसका सारा बदन नीला पड गया। उसे न खाना दिया गया न पानी। श्रीकांत देसाई को, जो कानून की आखिरी साल की पढ़ाई कर रहा था और विद्यार्थी परिषद् की कर्नाटक शाखा का ज्वाइट सेक्रेटरी था, बड़ी दरिन्दगी से पीटा गया और 'हवाई जहाज' बनाया गया।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रमुख कार्यकर्त्ता राबिन कलिता को मीसा में गिरफ्तार किया गया था और वह इलाज के लिए गौहाटी मेडिकल कॉलेज के अस्पताल में भरती था। उसकी हालत बहुत बिगड गयी। उसके घरवालों को उसकी देखभाल करने की इजाजत नहीं दी गयी, बल्कि यहाँ तक कि उससे मिलने भी नहीं दिया गया। उसका इलाज अस्पताल में चल रहा था फिर भी उसे हथकड़ी पहनाये रखी जाती थी। हथकड़ी पहने-पहने ही उसने अस्पताल में दम तोड़ दिया।

हेमन्त कुमार बिश्नोई को उस वक्त गिरफ्तार किया गया जब वह नई दिल्ली के बुद्ध जयन्ती पार्क में पिकनिक पर गया हुआ था। उसे उल्टा लटका दिया गया और नगे तलुवों को जलती हुई मोमबत्तियों से दागा गया। उसकी नाक में और पाखाना करने की जगह पिसी हुई मिर्चें ठूस दी गयी। इन तमाम यातनाओं के बावजूद उसने यह मानने से इकार कर दिया कि उसने प्रधानमंत्री के खिलाफ़ कोई 'षड्यन्त्र' रचा था, क्योंकि ऐसा कोई षड्यन्त्र था ही नहीं। पुलिस चुप होकर बैठ गयी।

एक समारोह में जहाँ राष्ट्रपति भाषण दे रहे थे, दूसरे लडकों के साथ पर्चे बाँटने के जुर्म में दो लडके राजेश और अनिल पकडे गये। एक पन्द्रह साल का

दूसरा तेरह साल का। उन्हें बड़ी बेरहमी से पीटा गया और बड़े से थाने के पूरे फर्श पर उनसे झाड़ू लगवायी गयी।

हौज खास थाने की पुलिस वहाँ के कुछ कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को खुश करने के लिए सुनील और मनोज नामक दो नाबालिग लड़कों को जोगीवाड़ा से पकड़कर ले गयी। उन्हें इतना पीटा गया कि आखिरकार उन्होंने वही बयान दे दिया जो पुलिस उनसे चाहती थी।

चंडीगढ़ के वकील सी० एल० लखनपाल को जेल में दिल का सख्त दौरा पड़ा। उसे पोस्ट ग्रेजुएट मेडिकल इंस्टीच्यूट के अस्पताल ले जाया गया और कुछ ही घंटों के अन्दर वहाँ उसकी मौत हो गयी। वहाँ के डाक्टरों ने उसके इलाज के मामले में लापरवाही बरती थी।

पुलिस ने अपना गुस्सा पढ़े लिखे लोगों पर खास तौर पर उतारा। दिल्ली यूनिवर्सिटी के 200 से ज्यादा अध्यापक तो 26 जून को तड़के ही पकड़ लिये गये थे। उनमें से एक प्रो० पी० कोहली, जो दिल्ली यूनिवर्सिटी टीचर्स एसोसिएशन के प्रेसीडेंट हैं और कुछ अपंग भी हैं, को चौबीस घंटे तक लगातार हवालात में खड़ा रखा गया। पुलिसवाले उन पर गालियों और जूतों की बौछार करते रहे और उन्हें इधर-से उधर धक्का देते रहे। कितनी ही बार वह गिर पड़े लेकिन उन्हें फिर खड़े होने पर मजबूर किया गया।

कुछ अध्यापकों को तो क्लास में पढ़ाते वक्त गिरफ्तार किया गया। अदालतों के हुक्म से जब कुछ अध्यापक छोड़ भी गये तो उन्हें जेल के फाटक ही पर वही पहलेवाले जुर्म लगाकर या कोई जुर्म लगाये बिना ही दुबारा गिरफ्तार कर लिया गया। जब स्कूलों कॉलेजों में सबने मिलकर इसके खिलाफ आवाज उठायी तब कहीं जाकर यह दुबारा गिरफ्तार किये जाने का सिलसिला खत्म हुआ।

घोर वामपंथी नक्सलवादियों के खिलाफ ज्यादतियों का सिलसिला तो इमरजेंसी के पहले ही से चल रहा था, अब उन्हें बिना किसी वजह के ही पकड़ा जाने लगा। पुलिस और नक्सलवादियों के बीच हथियारबन्द मुठभेड़ों के न जाने कितने किस्से बयान किये गये हैं लेकिन इस बात पर किसी भी तरह यकीन नहीं किया जा सकता कि कुछ दर्जन नक्सलवादी गिनती की पुरानी बन्दूकें लेकर हर तरह के हथियारों से लैस हजारों पुलिसवालों से घंटों खुली हथियारबन्द लड़ाइयों में टक्कर लेते थे।

मिस मेरी टाइलर ने, जिन्हें छः साल तक नजरबन्द रखा गया, 6 जुलाई को अपनी रिहाई के बाद बताया कि 'बिहार में छापेमारों का अड्डा कायम करने की कोशिश करने' के झूठे आरोप किस तरह गढ़े गये थे। उन्होंने कहा कि यह छापमारों का गिरोह नहीं था बल्कि कुछ जोशीले नौजवान वामपंथी कार्यकर्ता थे जो बिहार और पश्चिम बंगाल के दूर दूर के देहातों में लोगों को जमींदारों और साहूकारों का मुकाबला करने और भूमि-सुधार लागू करवाने के लिए बढ़ावा दे रहे थे। उनमें से बहुत थोड़े ही ऐसे होंगे जो जेल में मिलने से पहले एक-दूसरे को जानते भी रहे हों। गिरफ्तार करने के बाद मेरी टाइलर को साल भर हजारीबाग जेल में तनहाई में रखा गया और उसके बाद अदालत के सामने हाजिर करने के लिए जमशेदपुर जेल में लाया गया। रिहाई के बाद उन्होंने बताया कि इमरजेंसी के एलान के बाद जो धुआँधार गिरफ्तारियाँ हुईं थी उनकी वजह से जिस जेल में सिर्फ 137 बंदियों के लिए इंतजाम था, 1,200 आदमी ठूँस दिये गये थे।[1]

1 देखिये मेरी टाइलर, भारतीय जेलों में पाँच साल, राधाकृष्ण 1977।

नक्सलवादियों की समस्या कोई नयी नहीं थी। वह 1963 से चली आ रही थी जब घोर वामपंथियों ने चीन भारत सीमा के पास नक्सलबाड़ी (पश्चिम बंगाल) में जमींदारों को निकालकर जमीन पर कब्जा कर लेने के लिए एक हिंसक आन्दोलन शुरू किया था।

सरकार को ज्यादा फिक्र अण्डरग्राउण्ड आन्दोलन की थी। लगभग साल भर हो चुका था और जार्ज फर्नांडीज को अभी तक नहीं पकड़ा जा सका था। श्रीमती गांधी ने चोटी के अफसरों की एक मीटिंग करके उन्हें बहुत लताड़ा कि आखिर अब तक उन्हें गिरफ्तार क्यों नहीं किया जा सका। एक अफसर ने बताया कि वे लोग जार्ज के संगठन में घुस गये हैं और उनके आदमी अब उस संगठन का हिस्सा बन गये हैं। उसने कुछ ही दिन में जार्ज की गिरफ्तारी का वायदा किया। और हुआ भी यही। जार्ज को 10 जून को कलकत्ते में गिरजाघर से मिले हुए एक घर से गिरफ्तार किया गया। उनकी गिरफ्तारी से अण्डरग्राउण्ड संगठन को बहुत बड़ा धक्का लगा।

अण्डरग्राउण्ड आन्दोलन संजय की आँखों में हरदम खटकता रहता था। नसबन्दी की मुहिम के दौरान उसने जो ज्यादतियां की थीं उनका प्रचार पूरे ब्यौरे के साथ अण्डरग्राउण्ड से किया जा रहा था।

सचमुच, संजय यह मुहिम बड़ी बेरहमी से चला रहा था। उसने हर मुख्यमंत्री के लिए तय कर दिया था कि किसे कितनी नसबन्दियां करानी हैं। मुख्यमन्त्रियों ने अपना यह बोझ अफसरों में बांट दिया था। संजय को खुश करने के लिए सारे मुख्य-मंत्री नसबन्दी के बारे में उसकी 'इच्छाओं' को पूरा करने के लिए एक-दूसरे से होड़ लगाकर काम कर रहे थे। इसकी परवाह न संजय को थी न श्रीमती गांधी को कि यह काम कैसे पूरा किया जाये बस काम पूरा होना चाहिए या कम-से-कम कहा यह जाये कि वह पूरा हो गया है।

संजय को नतीजे से मतलब था, तरीके से नहीं। जबरी नसबन्दी धड़ल्ले से चलती रही।

दिल्ली में रुखसाना सुलताना नाम की एक छबीली लड़की, जो संजय को देवता मानती थी, परिवार नियोजन के काम को बढ़ावा देने के लिए आगे आयी। उसकी कोई सरकारी हैसियत न होते हुए भी जब वह दारुपनाह के अन्दर पुरानी दिल्ली की सड़कों पर निकलती थी तो पुलिस की गारद उसके साथ चलती थी, एक जीप उसकी गाड़ी के आगे और एक पीछे। बाद में उसने एक इंटरव्यू में दौरान बताया कि उसे इस बात पर बड़ा नाज है कि 'नसबन्दी की मुहिम के साथ—और संजय के साथ—उसका नाम भी जुड़ा हुआ है।'

आबादी की रोकथाम की पॉलिसी के तहत भारत सरकार ने उत्तर प्रदेश को 4 लाख नसबन्दियों की जिम्मेदारी सौंपी थी, लेकिन संजय को खुश करने के लिए उत्तर प्रदेश वालों ने 15 लाख नसबन्दियां कराने का बीड़ा उठा लिया। हर सरकारी विभाग की जिम्मेदारी बांध दी गयी। हर जिले को अलग अलग बता दिया गया कि किसे कितनी नसबन्दियां करानी हैं। अध्यापकों और स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारियों के लिए तो यहां तक भुगतना पड़ा कि जो भी आदमी अपनी जिम्मेदारी पूरी नहीं कर पायेगा उसे न तरक्की दी जायेगी, न उसकी तनख्वाह बढ़ायी जायेगी।

यह मुहिम जुलाई में तेज की गयी और महीने भर बाद तो वह तूफानी रफ्तार से चल पड़ी। जब लोगों ने जबरी नसबन्दी का विरोध किया तो उसकी वजह से हिंसा की 240 वारदातें हुईं। जून में रोज का औसत 331 नसबन्दियों का था, जो जुलाई में बढ़कर 1,578 हो गया और अगस्त में जब इसके लिए खास कैंप लगाये गये तो औसत

श्रौर उन्हे तरह-तरह से सताकर उनके दिल मे दहशत बिठा दी।

हरियाणा मे कितने ही लोगो ने नसबन्दी कराने स इकार कर दिया श्रौर जो सरकारी अफ़सर जबदस्ती उन्हे पकडकर नसबन्दी के कैंपो मे ले जाने के लिए आये उनका उन्होंने डटकर मुकाबला किया। इन लोगो को अन्धाधुन्ध गिरफ्तार किया गया श्रौर हर तरह की यातनाएँ दी गयी। गुडगाव जिले के एक नौजवान को वहा की पुलिस ने श्रपनी बिरादरीवालो को नसबन्दी के खिलाफ भडकाने के श्रपराध मे पकड-कर एक अधी कोठरी मे बन्द कर दिया। उमसे पूछ ताछ के दौरान उसके बाल श्रौर नाखून नोच डाले गये श्रौर जब उसे छोडा गया तो वह दोनो कानो से बहरा हो चुका था।

महेन्द्रगढ के एक नौजवान सरकारी नौकर ने जब इस बुनियाद पर नसबन्दी कराने से इकार किया कि उसके कोई बच्चा नही था तो उसे इतना सताया गया कि वह पागल हो गया।

रोहतक जिले की एक बूढी मास्टरनी को जिला शिक्षा अधिकारी ने आदेश दिया कि जब तक वह दो श्रादमियो को नसबन्दी के लिए नही लायेगी तब तक उसे तनख्वाह नही मिलेगी। सफेद बालावाली उस विधवा को कोई भी न मिला। श्राखिर-कार, कहा जाता है कि वह दो पागल भिखारियो को पकडकर नसबन्दी के कप म लायी तब कही जाकर उसे तनख्वाह मिली।

सबसे ज्यादा मुसीबतें इस राज्य के हरिजनो श्रौर पिछडे वर्गों के दूसरे लोगो को झेलनी पडी। सरकार को इस बात से कोई मतलब नही था कि नौजवान कुँश्रारे लडके हो या ऐसे बूढे जिनकी बीवियाँ मर चुकी हैं नपुसक लोग हो या ऐस लोग जिनकी नसबन्दी पहले हो चुकी है—सभी का नसबन्दी करानी पडती थी। महत्त्व लोगो या उनकी भावनाश्रा का नही बल्कि इस बात का था कि गिनती पूरी होनी चाहिये।

बिहार मे सरकारी श्रफसरो को नसबन्दी की मुहिम के दौरान श्रपनी 'कार-गुजारी' दिखाने का सबसे आसान मौका मिल गया। नसबन्दी की सबसे गहरी मार शायद श्रादिवासिया पर पडी। जिस डिप्टी कमिश्नर को सबसे पहले 'अच्छा काम' करने के इनाम मे सोने का मेडल दिया गया वह सिहभूम जिले मे तैनात था, जो छोटा नागपुर के श्रादिवासी इलाके का एक हिस्सा है। श्रादिवासियो का एक श्रौर जिला है राँची, वहाँ का सबसे बडा हाकिम भी बहुत पीछे नही था। ज्यादतियाँ भोजपुर जिले म भी की गयी, लेकिन वहाँ सबसे ज्यादा मुसीबतें श्रादिवासियो ने नही झेली, सभी पर बराबर मार पडा।

पूरबी पटना मे भी गडबड हुई। जबरी नसबन्दी की वजह से बिफरी हुई भीड पर पुलिस ने गोली चलायी, जिसमे एक श्रादमी मारा गया श्रौर कई घायल हुए, लेकिन सेंसर ने श्रखबारो को हुक्म दे दिया कि वे सिफ सरकारी बयान छापें, जिसमे कहा गया था कि फुटपाथ पर रहनेवालो के हटाये जाने पर तिलमिलाये हुए लोगो पर पुलिस ने गोली चलायी। इस घटना के चौबीस घटे के अन्दर युवक काग्रेस के लोगो ने नसबन्दी का प्रचार करने के लिए बडी-बडी सडको के किनारे जो तम्बू गाडे थे वे सब गायब हो गये। ये फुटपाथ पर रहनेवाले वे लोग नही थे जिन पर गोली चलायी गयी थी।

सोने का मेडल जीतने की होड मे पटना ने लोकसभा के चुनावो का ऐलान होने के लगभग दो हफ्ते पहल पीछे स श्राकर सबको पछाड दिया। केन्द्रीय सरकार ने बिहार के हिस्से म 3 लाख नसबन्दियाँ रखी थी, लेकिन वहाँ हुई साढे छ लाख। इस बात से वहाँ के स्वास्थ्यमन्त्री विन्ध्येश्वरी दुबे को इतना जोश श्राया कि उन्होने श्रफसरा

राज 5,644 नसबंदियों तक पहुँच गया। कई जगह तो यह देखे बिना ही कि किसकी उम्र कितनी है, किसी की शादी भी हुई है या नहीं, लोगों को पकड़कर जबरदस्ती नसबन्दी कर दी गयी।

हिंसा की पहली बड़ी घटना 27 अगस्त को उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर ज़िले में नरकाडीह नामक गाँव में उस वक्त हुई, जब कमिश्नर साहब ने लोगों को 'राज़ी करने' के लिए जमा किया। लोगों ने इस कार्यक्रम का विरोध किया और अफसरों को गाँव के बाहर खदेड़ दिया। पुलिस ने गोली चलायी जिसमें तेरह आदमी जान से मारे गये और बीसियों गोलियों से घायल हुए।

ज़िले के अधिकारियों से हुक्म पाकर पुलिसवाले जबरी नसबन्दी के लिए गाँववालों को पकड़ पकड़कर लाने के काम में बिलकुल पागलों की तरह जुट गये। गाँवों में आतंक छाया हुआ था। सभी लोग अपनी इज्ज़त और जान बचाने के लिए भाग भाग कर खेतों में जा छिपे। नामी से नामी डाकुओं के ज़माने में भी उन्हें कभी अपना घर नहीं छोड़ना पड़ा था, लेकिन अब खेतों में रहना गाँववालों के लिए एक आम बात हो गयी थी। पुलिस के छापों की वजह से उन्हें अपने घरों में रहते डर लगता था।

नसबन्दी की लहर चढ़ते चढ़ते राज़ 6,000 आपरेशनों तक पहुँच चुकी थी, कि इतने में 18 अक्तूबर को मुज़फ्फरनगर में एक और धमाका हुआ। वहाँ के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने नसबन्दी के कैंप लगवाये और लोगों को बड़ी बड़ी रकमें चन्दे में देने पर मजबूर किया गया। जो इंकार करता था उसे मीसा में या डी० आई० आर० में बन्द कर दिये जाने की धमकी दी जाती थी। पुलिसवाले ताक में खड़े रहते थे और लोगों को बस के अड्डों से और रेलवे स्टेशनों से पकड़कर ले जाते थे और जबरदस्ती उनकी नसबन्दी कर दी जाती थी।

एक खास बस्ती से तीन दिन तक बाकायदा लोगों को पकड़कर ले जाया गया और उनकी नसबन्दी कर दी गयी। यह भी नहीं देखा गया कि कौन कुआँरा है और किसकी शादी हो चुकी है किसके बच्चे हैं किसके नहीं हैं, कौन जवान है कौन बूढ़ा। एक बार जब इसी तरह अठारह आदमियों को नसबन्दी कैंप में ले जाया जा रहा था तो लोगों का गुस्सा काबू से बाहर हो गया। बहुत बड़ी भीड़ जमा हो गयी और उन लोगों को छोड़ देने की माँग करने लगी। फिर पथराव शुरू हुआ। पुलिस ने पहले आँसू गैस के गोले छोड़े और जब भगदड़ मची तो उसने उन पर गोली चला दी। पच्चीस आदमी मारे गये और आठ लापता हो गये। (उनका आज तक पता नहीं लग सका है।) इस वारदात को लोग 'छोटा जलियाँवाला बाग' कहने लगे। कर्फ्यू लगा दिया गया और एक दूसरी बस्ती में चार आदमी कर्फ्यू तोड़ने की वजह से गोलियों से भून दिये गये।

सैंसरशिप के बावजूद, इन घटनाओं की खबर ज़बानी ही चारों तरफ फैल गयी और मुज़फ्फरनगर से लगभग पचीस किलोमीटर दूर इसके खिलाफ़ आवाज़ उठाने के लिए एक जुलूस निकाला गया। जब इलाके के कुछ जाने-माने लोगों के कहने पर जुलूस तितर बितर होने लगा तो पुलिस ने लोगों का पीछा किया। जब लोगों ने मस्जिद में घुसकर अपनी जान बचाने की कोशिश की तो पुलिस भी धड़धड़ाती हुई अन्दर घुस आयी और गोली चलाने लगी। तीन आदमी जान से मारे गये।

बस्ती ज़िले के एक गाँव में एक बी० डी० ओ०, एक पंचायत सेक्रेटरी और एक ग्रामसेवक इस बात का लेखा-जोखा करने गये कि कितने जोड़े ऐसे हैं जिन पर नसबन्दी लागू की जा सकती है। गुस्से से बिफरी हुई भीड़ ने उनकी बोटी बोटी काटकर फेंक दी। पुलिस को जो गुस्सा आया तो उसने गिन गिनकर वहाँ के लोगों से बदला लिया

और उन्हें तरह-तरह से सताकर उनके दिल मे दहशत बिठा दी।

हरियाणा मे कितने ही लोगो ने नसबन्दी कराने से इकार कर दिया और जो सरकारी अफसर जबदस्ती उन्हे पकडकर नसबन्दी के कपो मे ले जाने के लिए आये उनका उन्होंने डटकर मुकाबला किया। इन लोगो को अधाधुध गिरफ्तार किया गया और हर तरह की यातनाएँ दी गयी। गुडगाँव जिले के एक नौजवान को वहाँ की पुलिस ने अपनी बिरादरीवालो को नसबन्दी के खिलाफ भडकाने के अपराध मे पकडकर एक अधी कोठरी म बन्द कर दिया। उससे पूछ-ताछ के दौरान उसके बाल और नाखून नोच डाले गये और जब उसे छोडा गया तो वह दोना कानो से बहरा हो चुका था।

महेद्रगढ के एक नौजवान सरकारी नौकर न जब इस बुनियाद पर नसबन्दी कराने से इकार किया कि उसके कोई बच्चा नही था तो उसे इतना सताया गया कि वह पागल हो गया।

रोहतक जिले की एक बूढी मास्टरनी को जिला शिक्षा अधिकारी ने आदेश दिया कि जब तक वह दो आदमियो को नसबन्दी के लिए नही लायेगी तब तक उसे तनख्वाह नही मिलेगी। सफेद बालावाली उस विधवा को कोई भी न मिला। आखिरकार, कहा जाता है कि वह दो पागल भिखारियो को पकडकर नसबन्दी के कप मे लायी तब कही जाकर उसे तनख्वाह मिली।

सबसे ज्यादा मुसीबतें इस राज्य मे हरिजनो और पिछडे वर्गो के दूसरे लोगो को झेलनी पडी। सरकार का इस बात से कोई मतलब नही था कि नौजवान कुआरे लडके हो या ऐसे बूढे जिनकी बीवियाँ मर चुकी हैं नपुसक लोग हो या ऐसे लोग जिनकी नसबन्दी पहले हो चुकी है—सभी को नसबन्दी करानी पडती थी। महत्त्व लोगो या उनकी भावनाओ का नही बल्कि इस बात का था कि गिनती पूरी होनी चाहिये।

बिहार मे सरकारी अफसरो को नसबन्दी की मुहिम के दौरान अपनी 'कारगुजारी' दिखाने का सबसे आसान मौका मिल गया। नसबन्दी की सबसे गहरी मार शायद आदिवासियो पर पडी। जिस डिप्टी कमिश्नर को सबसे पहले 'अच्छा काम' करने के इनाम मे सोने का मेडल दिया गया वह सिहभूम जिले मे तनात था, जो छोटा नागपुर के आदिवासी इलाके का एक हिस्सा है। आदिवासियो का एक और जिला है राँची, वहाँ का सबसे बडा हाकिम भी बहुत पीछे नही था। ज्यादतियाँ भोजपुर जिले मे भी की गयी, लेकिन वहाँ सबसे ज्यादा मुसीबतें आदिवासियो ने नही झेली, सभी पर बराबर मार पडी।

पूरबी पटना मे भी गडबड हुई। जबरी नसबन्दी की वजह स बिफरी हुई भीड पर पुलिस ने गोली चलायी, जिसमे एक आदमी मारा गया और कई घायल हुए, लेकिन सेंसर ने अखबारो को हुक्म दे दिया कि व सिफ सरकारी बयान छापें, जिसमे कहा गया था कि फुटपाथ पर रहनेवालो के हटाये जाने पर तिलमिलाये हुए लोगो पर पुलिस ने गोली चलायी। इस घटना के चौबीस घटे के अन्दर युवक काग्रेस के लोगो ने नसबन्दी का प्रचार करने के लिए बडी-बडी सडको के किनारे जो तम्बू गाडे थे वे सब गायब हो गये। य फुटपाथ पर रहनेवाले वे लोग नही थे जिन पर गोली चलायी गयी थी।

सोने का मेडल जीतने की होड मे पटना ने लोकसभा के चुनावो का ऐलान होने के लगभग दो हफ्ते पहले पीछे से आकर सबको पछाड दिया। केन्द्रीय सरकार ने बिहार के हिस्से मे 3 लाख नसबन्दियाँ रखी थी, लेकिन वहाँ हुइ साढे छ लाख। इस बात से वहाँ के स्वास्थ्यमत्री बिन्देश्वरी दुबे को इतना जोश आया कि उन्होंने अफसरो

को ललकारा कि वे 1976 77 का सरकारी साल पूरा होने से पहले ही दस लाख के
निशाने तक पहुँच जायें। फ़ैसला
बिहार म जो 'अच्छा काम किया गया था उसकी खुशी मे सजय ने चार बार
उस राज्य का दौरा किया। चुनाव से पहले जब सजय आखिरी बार बिहार गया तो
बिहार प्रदेश काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष सीताराम केसरी ने पटना म एक पब्लिक मीटिंग
मे कहा कि सजय गाधी राजनीति के क्षितिज पर उभरता हुआ नया सितारा है, अब
काग्रेस के नेतृत्व को और देश को पचास साल के लिए कोई खतरा नही है।
सजय का जो शाही स्वागत किया गया उस पर कम से कम दस लाख रुपये
खच किये गये। इसमे से कम-से कम आधी रकम बिहार सरकार ने सुरक्षा के
बन्दोबस्त और मोटरो की दौड धूप और भीड को काबू मे रखने के इतजाम पर खच
की थी। बाकी आधी रकम बडे बडे सेठो और व्यापारियो ने दी थी।
नसबन्दी के लिए खास तौर पर लगाये गये कम्पो मे पजाब की सरकार जितनी
बडी सख्या म मर्दों और औरतो को जमा करती थी उसस साफ जाहिर था कि उसमे
इस काम के लिए कितना जोश था। आपरेशन म गडबडी हो जाने की वजह से कुछ
लोगो के मर जाने की भी खबरें मिली।
नसबन्दी के सिलसिले म की गयी किसी ज्यादती की खबर कोई अखबार नही
छाप सकता था। और न श्रीमती गाधी का 'घराना उन पर यकीन ही करने को
तैयार था, हालांकि वहा सबको मालूम था कि नसबन्दी मे जोर-जबदस्ती की जा रही
है। खुफिया विभाग को कुछ ज्यादतियो का पता लगा और उसने इनकी रिपोट
प्रधानमत्री के पास भी भेजी और उनके सक्रेटरी के पास भी। लेकिन उनके बारे मे
शायद ही कभी कोई कारवाई की जाती थी। यह कहकर लीपा पोती कर दी जाती थी
कि कुछ न कुछ जबदस्ती तो करनी ही पडती है। केन्द्रीय सरकार के राज्य-मत्री
शाहनवाज खाँ ने श्रीमती गाधी को मुजफ्फरनगर की घटना के बारे मे एक रिपोट भेजी
और उसम बताया कि किस तरह पुलिस न जान बूझकर ताकत इस्तेमाल की थी और
लोगा पर जुल्म ढाये थ। श्रीमती गाधी ने बस इतना कहा कि बातो को बहुत बढ़ा
चढाकर पेश किया गया है। इस रिपोट की एक कापी राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद
को भी दी गयी। उन्हे पढकर बहुत धक्का लगा। उन्होन प्रधानमत्री स इसकी शिका
यत की और अपनी उस डायरी म भी इसे दज किया, जो वह रोज पाबन्दी के साथ
लिखते थे।
हाथ पाँव की जोर जबदस्ती अकेला तरीका नही था जो इस्तेमाल किया गया।
सरकार न सर्कुलर जारी करके यह आदेश दे दिया कि जो कमचारी या तो खुद अपनी
नसबन्दी न कराये या दूसरो की नसबन्दी न कराय उसकी तरक्की रोक दी जाये और
तनख्वाह न बढायी जाये। अगले साल के लिए किसी का मोटर चलाने का नया लाइ
सेंस भी तभी बनाया जाता था जब उसने कम से कम कुछ लोगा की नसबन्दी
करायी हो।
दिल्ली प्रशासन ने यह आदेश जारी कर दिया कि उसके जो कमचारी नसबन्दी
के लायक हैं उन्हे उनकी तनख्वाह नसबन्दी का सर्टीफिकेट दिखाने पर ही दी जायेगी।
कार्पोरेशन के प्राइमरी स्कूलो के 10 000 अध्यापको को जबानी हुक्म दे दिया गया कि
व कम से-कम पाँच पाँच आदमियो को नसबन्दी के लिए राजी करें। स्कूलो की हेड
मिस्ट्रेसो को यह अधिकार दे दिया गया कि जब तक किसी विद्यार्थी का बाप या उसकी
माँ नसबन्दी न कराये तब तक उस पास न किया जाय।
व्यापारियो के कुछ प्रतिनिधियो का दिल्ली के लफ्टिनेंट-गवनर न राजनिवास

पर बुलाकर उनसे कहा कि वे यह तय करें कि हर महीने वे अपने कितने कर्मचारियों और दूसरे लोगों को नसबन्दी के लिए राज़ी करेंगे।

कई कम्पनियाँ, जहाँ मजदूर रोजनदारी पर या ठेके पर काम करते थे, इसलिए बन्द हो गयी कि मजदूरों ने यह फसला कर लिया था कि नसबन्दी का खतरा मोल लेने से अच्छा है कि वे अपने गाँव लौट जायें।

सरकार ने आबादी की रोकथाम के बारे में एक राष्ट्रीय पॉलिसी का भी ऐलान किया था। संजय दो बच्चे प्रति परिवार की सीमा बाँधना चाहता था लेकिन श्रीमती गांधी और उनका बाकी परिवार तीन के पक्ष में था और यही बात मान ली गयी। राष्ट्रीय पालिसी में लक्ष्य यह रखा गया था कि आबादी के हर एक हजार आदमियों के बीच इस वक्त हर साल 35 बच्चे पैदा होते हैं, इसे घटाकर 1984 तक 25 पर पहुँचा दिया जाये। उम्मीद की जाती थी कि तब तक आबादी बढ़ने की रफ्तार भी 2 4 प्रतिशत से घटकर 1 4 प्रतिशत रह जायेगी। विवाह करने की कम से कम उम्र बढ़ाकर लड़कियों के लिए 18 साल और लड़कों के लिए 21 साल कर दी गयी। नसबन्दी कराने पर मर्दों और औरतों को नकद पसा भी दिया जाता था। लेकिन यह फैसला अलग अलग राज्यों के हाथ में छोड़ दिया गया कि अगर वे चाहें तो नसबन्दी को लाज़िमी बना देने का कानून बना सकते हैं। (उस समय हमारी आबादी 61 करोड़ 50 लाख थी।)

नसबन्दी के अलावा संजय को एक और धुन थी, दिल्ली को खूबसूरत बनाने की। वह डी० डी० ए० के कर्त्ता धर्त्ता जगमोहन को रोज बताया करता था कि क्या करना है और गन्दी बस्तियों की सफाई के सिलसिले में जितना काम होता था उसका लेखा जोखा करता था।

इतने बड़े पैमाने पर, जितना कि पहले कभी नहीं हुआ था गैर-कानूनी घरों और झुग्गी झोंपड़ियों के गिरा दिये जाने की वजह से कई बस्तियों से पुराने बसे हुए परिवार छोड़ छोड़कर जाने लगे थे। इसी तरह का एक इलाका वह था जिसे मुस्लिम आबादी कहा जाता था। तुकमान गेट के इलाके में जहाँ बहुत-से गैर मुसलमान भी रहते थे, 13 अप्रैल को जब बस्ती के बाहर बुलडोज़र जमा होने लगे तो लोग बहुत परेशान होकर उन्हें देखते रहे। वह वैसाखी का दिन था और उस इलाके में रहनेवाले पंजाबियों ने अपना यह त्योहार बड़ी धूमधाम से मनाया था।

वहाँ के रहनेवाले 16 अप्रल को एच० के० एल० भगत से मिले, जिन्होंने उनको यकीन दिलाया कि उनके घर ढाये नहीं जायेंगे। उन्होंने कहा, यह हो ही कैसे सकता है जबकि ये इमारतें कई पीढ़ियों से वहाँ खड़ी हुई हैं? लेकिन बुलडोज़र फिर भी नहीं हटे।

अचानक 19 अप्रल को बुलडोज़र तुकमान गेट की तरफ बढ़ने लगे। कुछ लोग झुण्ड बनाकर बुलडोज़रों को रोकने के लिए बस्ती के बाहर दरगाहे इलाही के सामने बैठ गये जिस पर अभी हाल ही में सफेदी की गयी थी। कई और मुहल्लेवाले आकर शामिल हो गये और बढ़ते बढ़ते वहाँ कई सौ आदमी जमा हो गये।

दोपहर के करीब ट्रकों में भर भरकर बन्दूकों से लैस सी० आर० पी० के सिपाही और दिल्ली के पुलिसवाले वहाँ आने लगे। कुछ ही मिनटों में धक्का मुक्की शुरू हो गयी और शोर गुल मचने लगा। पुलिसवाले रास्ता साफ करने की कोशिश कर रहे थे और लोग उन्हें ऐसा करने से रोक रहे थे। इतने में पुलिस की तरफ से पत्थरों की बौछार हुई। उस वक्त तक लोग शोर तो मचा रहे थे पर बाकी सब शान्ति थी। भीड़ ने भी पुलिस पर जवाबी पथराव किया।

को ललकारा कि वे 1976 77 का सरकारी साल पूरा होने से पहले ही दस लाख के निशाने तक पहुँच जायें।

बिहार मे जो 'अच्छा काम' किया गया था उसकी खुशी मे संजय ने चार बार उस राज्य का दौरा किया। चुनाव से पहले जब संजय आखिरी बार बिहार गया तो बिहार प्रदेश काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष सीताराम केसरी ने पटना म एक पब्लिक मीटिंग मे कहा कि संजय गाधी राजनीति के क्षितिज पर उभरता हुआ नया सितारा है, अब काग्रेस के नेतृत्व को और देश को पचास साल के लिए कोई खतरा नही है।

संजय का जो शाही स्वागत किया गया उस पर कम-से कम दस लाख रुपये खच किये गय। इसमे से कम-स-कम आधी रकम बिहार सरकार ने सुरक्षा के बन्दोबस्त और मोटरो की दौड धूप और भीड को काबू मे रखने के इल्जाम पर खच की थी। बाकी आधी रकम बडे बडे सेठो और व्यापारियो ने दी थी।

नसबन्दी के लिए खास तौर पर लगाय गय कम्पो म पजाब की सरकार जितनी बडी सख्या मे मर्दों और औरतो को जमा करती थी उसस साफ जाहिर था कि उसमे इस काम के लिए कितना जोश था। ऑपरेशन मे गडबडी हो जाने की वजह से कुछ लोगो के मर जाने की भी खबरें मिली।

नसबन्दी के सिलसिले म की गयी किसी ज्यादती की खबर कोई अखबार नही छाप सकता था। और न श्रीमती गाधी का 'घराना' उन पर यकीन ही करने को तैयार था, हालाँकि वहा सबको मालूम था कि नसबन्दी म जोर-जबरदस्ती की जा रही है। खुफिया विभाग को कुछ ज्यादतियो का पता लगा और उसने इनकी रिपोट प्रधानमत्री के पास भी भेजी और उनके सक्रेटरी के पास भी। लेकिन उनके बारे मे शायद ही कभी कोई कारवाई की जाती थी। यह कहकर लीपा पोती कर दी जाती थी कि कुछ न कुछ जबरदस्ती तो करनी ही पडती है। केन्द्रीय सरकार के राज्य मत्री शाहनवाज खाँ ने श्रीमती गाधी को मुजफ्फरनगर की घटना के बारे मे एक रिपोट भेजी और उसमें बताया कि किस तरह पुलिस न जान बूझकर ताकत इस्तेमाल की थी और लोगा पर जुल्म ढाये थ। श्रीमती गाधी ने बस इतना कहा कि बातो को बहुत बढ़ा चढ़ाकर पेश किया गया है। इस रिपोट की एक कापी राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद को भी दी गयी। उन्हे पढकर बहुत धक्का लगा। उन्होंने प्रधानमत्री स इसकी शिकायत की और अपनी उस डायरी म भी इसे दज किया जो वह रोज पाबन्दी के साथ लिखत थे।

हाथ पाँव की जोर जबरदस्ती अकेला तरीका नही था जो इस्तेमाल किया गया। सरकार ने सर्कुलर जारी करके यह आदेश दे दिया कि जो कमचारी या तो खुद अपनी नसबन्दी न कराये या दूसरा की नसबन्दी न कराये उसकी तरक्की रोक दी जाये और तनख्वाह न बढायी जाये। अगले साल के लिए किसी का मोटर चलाने का नया लाइसेंस भी तभी बनाया जाता था जब उसने कम से कम कुछ लोगा की नसबन्दी करायी हो।

दिल्ली प्रशासन न यह आदश जारी कर दिया कि उसके जो कमचारी नसबन्दी के लायक हैं उन्हे उनकी तनख्वाह नसबन्दी का सर्टीफिकेट दिखाने पर ही दी जायेगी। कार्पोरेशन के प्राइमरी स्कूलो के 10 000 अध्यापकों को जबानी हुक्म दे दिया गया कि वे कम से कम पाँच पाँच आदमियो का नसबन्दी के लिए राजी करें। स्कूलों की हेड मिस्ट्रेसो को यह अधिकार दे दिया गया कि जब तक किसी विद्यार्थी का बाप या उसकी माँ नसबन्दी न कराय तब तक उसे पास न किया जाय।

व्यापारियो के कुछ प्रतिनिधियो का दिल्ली के लेफ्टिनेंट-गवनर ने राजनिवास

पर बुलाकर उनसे कहा कि वे यह तय करें कि हर महीने वे अपने कितने कमचा और दूसरे लोगों को नसबन्दी के लिए राजी करेंगे।

कई कम्पनियाँ, जहाँ मजदूर रोजनदारी पर या ठेके पर काम करते थे, इस बन्द हो गयी कि मजदूरो न यह फैसला कर लिया था कि नसब दी का खतरा लेने से अच्छा है कि वे अपने गाँव लौट जायें।

सरकार ने आबादी की रोकथाम के बारे मे एक राष्ट्रीय पॉलिसी क ऐलान किया था। सजय दो बच्चे प्रति परिवार की सीमा बाँधना चाहता था ले श्रीमती गाधी और उनका बाकी परिवार तीन के पक्ष मे था और यही बात मा गयी। राष्ट्रीय पालिसी म लक्ष्य यह रखा गया था कि आबादी के हर एक ह आदमियो के बीच इस वक्त हर साल 35 बच्चे पैदा होते हैं, इसे घटाकर 1984 25 पर पहुँचा दिया जाये। उम्मीद की जाती थी कि तब तक आबादी बढने की र भी 2 4 प्रतिशत से घटकर 1 4 प्रतिशत रह जायेगी। विवाह करने की कम से कम बढाकर लडकियो के लिए 18 साल और लडको के लिए 21 साल कर दी गयी। बन्दी कराने पर मर्दों और औरतो को नकद पसा भी दिया जाता था। लेकि फैसला अलग अलग राज्यो के हाथ मे छोड दिया गया कि अगर वे चाहे ता नस को लाजिमी बना देन का कानून बना सकत हैं। (उस समय हमारी आबादी 61 क 50 लाख थी।)

नसबन्दी के अलावा सजय को एक और धुन थी, दिल्ली को खूबसूरत ब की। वह डी० डी० ए० के कर्ता धत्ता जगमोहन को रोज बताया करता था कि करना है और गन्दी बस्तियो की सफाई के सिलसिले मे जितना काम होता था उ लेखा जोखा करता था।

इतन बडे पैमाने पर, जितना कि पहले कभी नही हुआ था, गैर-कानूनी और झुग्गी झोपडियो के गिरा दिये जाने की वजह से कई बस्तियो से पुरान बर परिवार छोड छोडकर जाने लगे थे। इसी तरह का एक इलाका वह था जिसे मु आबादी कहा जाता था। तुकमान गेट के इलाके मे, जहाँ बहुत से गैर मुसलमा रहते थे, 13 अप्रैल को जब बस्ती के बाहर बुलडोजर जमा होने लगे तो लोग परेशान होकर उन्हें देखते रहे। वह बसाखी का दिन था और उस इलाके मे रह पजाबियों ने अपना यह त्योहार बडी धूमधाम से मनाया था।

वहाँ के रहनेवाले 16 अप्रल को एच० के० एल० भगत से मिले, जिन्होने र यकीन दिलाया कि उनके घर ढाये नही जायेंगे। उन्होने कहा, यह हो ही कसे स है जबकि ये इमारतें कई पीढियो से वहाँ खडी हुई हैं? लेकिन बुलडोजर फि नही हटे।

अचानक 19 अप्रल को बुलडोजर तुकमान गेट की तरफ बढने लगे। लोग झुण्ड बनाकर बुलडोजरो को रोकने के लिए बस्ती के बाहर दरगाह इला सामने बठ गये, जिस पर अभी हाल ही मे सफेदी की गयी थी। कई और मुहल्ले आकर शामिल हो गये और बढते बढते वहाँ कई सौ आदमी जमा हो गये।

दोपहर के करीब ट्रको मे भर भरकर बन्दूको से लस सी० आर० पी सिपाही और दिल्ली के पुलिसवाले वहाँ आने लगे। कुछ ही मिनटो मे धक्का शुरू हो गयी और शोर गुल मचने लगा। पुलिसवाले रास्ता साफ करने की कोशि रहे थे और लोग उन्हें ऐसा करने से रोक रहे थे। इतने मे पुलिस की तरफ से प एक की बौछार हुई। उस वक्त तक लोग शोर तो मचा रहे थे पर बाकी सब श थी। भीड न भी पुलिस पर जवाबी पथराव किया।

लगभग डेढ बजे दरियागज के सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट ने लाठी चाज का
हुक्म दिया, इसके बार म तो दो रायें हो ही नही सकती कि लाठी चाज बडी बेरहमी
स किया गया। भीड म खलबली मच गयी। लोग इधर-उधर भागन लगे। कुछ जमीन
पर गिर पडे और चोटें तो बहुता को आयी। सकडा लोग गिरफ्तार कर लिए गये,
जिनम कई घायल लोग भी शामिल थ। इसके बाद तो वहां के लोगो और पुलिस के बीच
जमकर लडाई शुरु हो गयी। औरतें भी मर्दों का हाथ बटाने के लिए बलन और चिमटे
लेकर अपने घरो से निकल आयी, उन्हने अपन मर्दों को पुलिस के चगुल से छुडा लिया।

लोगो के इस तरह जमकर मुकाबला करन पर पुलिस को ताव आ गया। पहले
तो उसने आंसू गैस के गोले छोडे और फिर तीसरे पहर लगभग तीन घटे तक रह-
रहकर गोलियां चलाते रहे। जब मामला काबू स बाहर होने लगा तो कर्फ्यू लगा दिया
गया। इसी वक्त बुलडोजरो ने चढाई की। लगभग 1,000 मकान ढा दिये। 150 लोग
जान स मारे गय और 700 गिरफ्तार कर लिए गये। लेकिन मामला यही पर खत्म
नही हो गया। कर्फ्यू पतालीस दिन तक लगा रहा। इस दौरान एक एक घर मे घुस-
घुसकर लूटमार की गयी। नयी नवली दुल्हनो के जेवर छीन लिए गये। बूढो और
बीमारो को भी जानवरो की तरह मारा गया और उनके पास जो कुछ भी था उनसे
छीन लिया गया। लोगो को इस शुबहे म पकड लिया गया कि उन्होन पुलिस से टक्कर
ली थी।

सेंसर ने इसके बारे में एक अक्षर भी अखबारो म नही छपने दिया। लेकिन
सारी दिल्ली मे और धीरे धीरे पूरे देश मे तुर्कमान गेट म ढाये गये जुल्मो की चर्चा
होने लगी। सरकार को मजबूर होकर मानना पडा कि कुछ लोग मारे गये हैं लेकिन
उसने अखबारो के लिए जो बयान जारी किया उसमें सच बात कभी नहीं बतायी गयी।

जिस वक्त तुर्कमान गेट के इलाके मे रहनेवालो को वहां से हटाया जा रहा
था उस वक्त तक डी० डी० ए० वालो को यह नही मालूम था कि उस जगह का वे
क्या करेंगे। तीन महीने बाद वहा दफ्तरो और दूकाना के लिए पचास मजिल की एक
इमारत बनाने की योजना तैयार की गयी।

जिन लोगो को जबदस्ती उनके घरो से निकाल दिया गया था उन्हें जमुना के पार
एक बजर बियाबान मे ले जाकर छोड दिया गया, जहां दूसरी सुविधाओ की बात तो
दूर रही पीने के पानी तक का इन्तजाम नही था। जब कई दिन बाद शेख अब्दुल्ला ने
उस कालोनी का मुआइना किया तो उन्होने तुर्कमान गेट की घटना को कबला बताया।
उन्हे सचमुच बहुत तकलीफ हुई और उन्हाने यह बात अधिकारियो स कही भी। वहां
के रहनेवाले अपनी फरियाद लेकर सजय के पास गये—श्रीमती गाधी को फुरसत
नही थी—कि उन्हें बेहतर सुविधाएं दी जायें तो उसने कहा, 'तुम लोगो ने शेख साहब
से झूठी शिकायतें की हैं तुम्हे इसका मजा चखवाया जायगा।' उसने कहा कि लोगो
को पुलिस पर हमला करने की सजा दी जायेगी।"

गन्दी बस्तियो की सफाई सजय के पांच-सूत्री कायक्रम म (पहले चार ही थे)
शामिल नही थी। इस कायक्रम का भी उतना ही प्रचार किया गया था जितना कि
श्रीमती गाधी के बीस-सूत्री कायक्रम का। सजय के पांच सूत्र थे परिवार नियोजन
पेड लगाना, दहेज पर पाबन्दी, हर आदमी एक आदमी को पढ़ाये और जात पांत को
दूर करना।

इस कायक्रम मे ऐसी कोई गलत बात नही थी लेकिन उसे पूरा करने के लिए जो
तरीके अपनाये गये उनसे लोगा म गुस्सा पैदा हुआ। एक और भी वजह थी। वह जो
कुछ भी करता था उस पर यह छाप होती थी कि उसके अधिकार सविधान से परे हैं।

उसके हाथ मे जितनी ताकत ग्रा गयी थी उस पर लोगो को ऐतराज था और इसलिए वह जो भी कदम उठाता था उसे लोग शुबहे की नजर से देखते थे। हालांकि बहुत-से लोग सोलह आने उसके पक्ष मे नही थे फिर भी वे उसकी 'काम करने की सूझ-बूझ' और 'समझदारी' की तारीफ करते थे। कांग्रेस के अन्दर अपना उल्लू सीधा करनेवाले सोचते थे कि चूंकि सारी ताकत उसी के हाथ मे है इसलिए उसे खुश रखना चाहिए।

संजय रौब तो बहुत जमाता था—और सिर्फ मारुति, पांच सूत्री कार्यक्रम या युवक कांग्रेस के मामले मे ही नही। जो कोई भी उसमे कोई बुराई निकालता था उसे वह धौंस देकर दबा देने या सजा देने की कोशिश करता था। मारुति की इमारत का एक हिस्सा बनवाते वक्त वह किसी ठेकेदार से नाराज हो गया था, उसे गिरफ्तार कर लिया गया। उस जमाने मे दिल्ली के इंस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस राजगोपालन की बदली बार्डर सिक्योरिटी फोर्स मे सिर्फ इसलिए करवा दी गयी कि उन्होने संजय की मर्जी का काम करने से इकार कर दिया था।

एयर मार्शल पी० सी० लाल के साथ जो कुछ हुआ उसके पीछे भी संजय का हाथ साफ दिखायी देता था। एयर मार्शल लाल वायु सेना के प्रधान रह चुके थे और इंडियन एयरलाइंस के चेयरमैन बनाकर लाये गये थे। इस मामले मे तो संजय के भाई राजीव[1] का भी हाथ था।

एयर मार्शल लाल 31 जुलाई 1976 को रिटायर होनेवाले थे। वह इसके सारे कागजात दाखिल करके छुट्टी लेकर चले जाना चाहते थे। लेकिन वह यह भी चाहते थे कि उनकी जगह लेने के लिए किसी को तैयार भी कर दें। उनके बाद डिप्टी मैनेजिंग डायरेक्टर सत्यमूर्ति की बारी थी। एयर मार्शल लाल ने अपने मंत्री राजबहादुर और प्रधानमंत्री से इसके बारे मे सितम्बर 1975 मे बातचीत की और यह सिफारिश की कि उनके रिटायर हो जाने के बाद सत्यमूर्ति को मैनेजिंग डायरेक्टर बना दिया जाये। उन्होंने यह भी कहा कि अगर वे लोग चाहे तो वह खुद दिन मे कुछ वक्त काम के लिए दे सकते हैं और चेयरमैन बने रह सकते हैं। श्रीमती गांधी और राजबहादुर दोनो ही इस बात के लिए राजी हो गये कि सत्यमूर्ति को उनके बाद उनकी जगह दे दी जाये। लेकिन कहा जाता है कि राजीव सत्यमूर्ति के खिलाफ था।

अक्तूबर मे राजबहादुर ने एयर मार्शल लाल से कहा कि प्रधानमंत्री चाहती हैं कि तीन पाइलटो को तरक्की दे दी जाये। उन्होने जवाब दिया कि तरक्की के लिए जो शर्तें जरूरी हैं, उन पर ये पाइलट खरे नही उतरते हैं। एयर मार्शल लाल के इस तरह इंकार कर देने से प्रधानमंत्री शायद चिढ गयी। इसी बीच राजबहादुर ने सत्यमूर्ति के बारे मे अपनी राय बदल दी थी और एयर मार्शल लाल को बता दिया था कि सत्यमूर्ति को मैनेजिंग डायरेक्टर नही बनाया जायेगा। एयर मार्शल लाल प्रधानमंत्री से मिले—उनके साथ यह उनकी आखिरी मुलाकात थी—और उनसे कहा कि सत्यमूर्ति मैनेजिंग डायरेक्टर की हैसियत से बहुत अच्छा काम करेंगे। श्रीमती गांधी ने कहा कि उनकी राय मे सत्यमूर्ति 'कुछ खास ईमानदार' नहीं हैं। साथ ही उन्होने इतना और जोड दिया कि 'मुझे सब पता है कि इंडियन एयरलाइंस मे क्या होता रहता है।'

दिसम्बर मे एयर मार्शल लाल ने कई लोगो की बदली कर दी। लेकिन राजबहादुर ने कहा कि उनकी मंजूरी लिये बिना न किसी को नौकरी पर रखा जाये और

1 सितम्बर 1976 में कुछ लोग इंडियन एयरलाइंस के एक बोइंग 737 हवाई जहाज का अपहरण करके लाहौर ले गये थे। जिन कश्मीरियो की यह हरकत थी उन्होने समझा था कि उसे राजीव चला रहा था। राजीव उसी रूट पर जाता था लेकिन सिर्फ एवरो हवाई जहाज चलाता था।

न किसी की बदली की जाये। उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें यह हुक्म धवन से मिला है। राजबहादुर ने जनवरी 1976 में यह वायदा किया था कि इण्डियन एयरलाइंस के जो अफसर बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स में हैं उन्हें बदला नहीं जायेगा। लेकिन फरवरी में जब नया बोर्ड बनाया गया तो सत्यमूर्ति[1] का नाम काटकर उनकी जगह उनसे बहुत छोटे एक अफसर को रख दिया गया। एयर मार्शल लाल ने राजबहादुर के पास जाकर इसका विरोध किया। इस पर राजबहादुर ने लाल से कहा कि आप जिस तरह इण्डियन एयरलाइंस का काम-काज चला रहे हैं उससे प्रधानमन्त्री खुश नहीं हैं।

अप्रैल में लाल ने इस्तीफा दे दिया और छुट्टी माँगी। राजबहादुर ने अपने एक ज्वाइंट सेक्रेटरी को भेजकर उनसे कहलवाया कि वह छुट्टी पर न जायें। लाल ने छुट्टी की अर्जी वापस ले ली। लेकिन तब तक राजबहादुर को धवन से यह आदेश मिल चुका था कि लाल को छुट्टी पर जाने दिया जाये। लाल ने प्रधानमन्त्री से मिलने की नाकामयाब कोशिश की।

13 अप्रैल को लाल ने देखा कि उनके दफ्तर के बाहर सादी पोशाक में कुछ पुलिसवाले तैनात हैं और लाबी में पुलिस का एक डी० एस० पी० बैठा है। लाल 19 अप्रैल से छुट्टी पर जाना चाहते थे लेकिन उनके मन्त्रालय से पहले ही एक सर्कुलर भेजा जा चुका था कि एयर मार्शल लाल 12 अप्रैल से छुट्टी पर हैं। बाद में मन्त्रालय ने एक और चिट्ठी जारी कर दी जिसमें कहा गया था कि एयर मार्शल लाल की नौकरी खत्म कर दी गयी है।

लाल ने जिन जिन लोगों की बदली की थी उन सबको फिर उनकी पुरानी जगहों पर बहाल कर दिया गया और वह तीन पाइलट जो लाल की राय में 'इस लायक' नहीं थे, उन्हें तरक्की दे दी गयी।

इनकम टैक्स वालों ने लाल और उनके भाई को बहुत तंग किया। बाद में लाल ने एक पिछली घटना का हवाला देते हुए बताया कि एक बार श्रीमती गांधी ने उनसे कहा था कि गुआना जैसे देश में अगर कोई अफसर प्रधानमन्त्री का नापसन्द हो तो उसे उनके कमरे में घुसने तक नहीं दिया जाता। अब लाल की समझ में आ रहा था कि उनका क्या मतलब था।

संजय बेकार के बखेड़े खड़े करने लगा था। 11 जनवरी 1976 को वह नौ सेना के किसी समारोह में बंसीलाल के साथ बम्बई गया। एम० ई० एस० के शानदार बँगले 'नुक' में थल सेना और वायु सेना के प्रधानों को ठहराने का बन्दोबस्त पहले से किया जा चुका था। नौ सेना के अफसरों ने संजय और बंसीलाल के ठहरने का इन्तजाम दूसरी जगह किया था—होटल में एक पूरा 'सुइट' और एक दो आदमियों के रहने का कमरा। बंसीलाल ने 'सुइट' तो संजय को दे दिया और खुद कमरे में ठहर गये। बंसीलाल ने नौ-सेना के प्रधान एस० एन० कोहली से कहा कि यह इन्तजाम उन्हें पसन्द नहीं आया।

फिर जब आलीशान डिनर हुआ तो इस बात पर बड़ी ले दे हुई कि कौन कहाँ बैठे। बड़ी मेज पर राष्ट्रपति और उनकी पत्नी, गवर्नर और उनकी पत्नी बंसीलाल और उनकी पत्नी और दो बड़े अफसरों के बैठने का इन्तजाम किया गया था। फौज के प्रधानों तक के बैठने का प्रबन्ध दूसरी मेजों पर किया गया था जो उस बड़ी मेज की

1 एयर इण्डिया के डिप्टी मैनेजिंग डायरेक्टर पी० के० जी० अप्पू स्वामी का नाम भी हटा दिया गया शायद इसलिए कि यह कहने को रहे कि दोनों डिप्टी मैनेजिंग डायरेक्टरों के नाम हटा दिये गये हैं।

ही तीन शाखाग्रा की तरह लगायी गयी थी।

सजय की जगह इस क्रम मे कुछ नीचे नौ सेना के अफसरो के साथ थी। बसीलाल चाहते थे कि सजय को बडी मेज पर जगह दी जाये। कोहली ने कहा कि यह मुमकिन नही है। बसीलाल ने नौ सेना के दूसरे अफसरो के सामने ग्रौल फौल बकना शुरू कर दिया। यह उनकी हमेशा की आदत थी कि जब कोई उनकी बात नही मानता था तो वह गाली गलौज पर उतर आते थे। कोहली को रिटायर होने म सिफ तीन महीन बाकी थे। अचानक उन्होंने कहा कि मैं फौरन इस्तीफा देना चाहता हूँ। बसीलाल को यह अन्दाजा नही था कि नौबत यहाँ तक पहुँच जायेगी, उन्होने फौरन अपना लहजा बदल दिया। चूकि बसीलाल की पत्नी डिनर मे नही आयी इसलिए उनकी जगह सजय को दे दी गयी। इस घटना से चारो तरफ एक तल्खी पदा हो गयी थी। जल्दी ही इसकी गूज सारे देश मे सुनायी देने लगी। लोग नुक्ताचीनी करने लगे, दबी जबान से ही सही।

ऐसा नही है कि यह बसीलाल के अक्खडपन और धांधली की पहली मिसाल थी। अभी कुछ ही दिन पहले उन्होंने दिल्ली म फौज की ऑपरेशस ब्राच के एक कनल सुखजीतसिंह को सस्पेंड कर दिया था। मामला उत्तर प्रदेश मे तराई के इलाके की किसी जमीन की कीमत का था। वह जमीन कनल साहब ने उसके मालिको को 'वापस दिलवा दी थी'। बसीलाल के स्पेशल असिस्टेंट आर० सी० मेठानी ने सुखजीत-सिंह को अपने दफ्तर मे बुलाकर बहुत लताडा। जिसको उस जमीन से 'बेदखल किया गया था वह भी उस वक्त वही मौजूद था। बसीलाल तो इससे भी एक कदम आगे बढ गये, उन्होने उस अफसर को सस्पेंड' ही कर दिया। सुखजीत को मिलिटरी ऑपरेशस ब्राच से हटाकर दिल्ली छावनी मे किसी मामूली जगह भेज दिया गया। न कोई जाँच पडताल हुई और न ही दूसरे अफसरो ने जबान खोली। बसीलाल के दबाव मे आकर ऊपर से नीचे तक सबने घुटने टेक दिये। बाद मे इस बिगडी हुई हालत को सँभालने के लिए कुछ कदम उठाये गये। सुखजीतसिंह की ब्रिगेडियर बनने की बारी थी, उन्हें यह तरक्की देकर पूर्वी भारत मे तनात कर दिया गया।

ताकत का नशा अकेले बसीलाल को रहा हो, ऐसी बात नही थी। शुक्लाजी के भी यही तेवर थे। उनका अपना मैदान फिल्म जगत था। वह डायरेक्टरो प्रोड्यूसरो और फिल्मी सितारो को अपने इशारो पर नचाने के लिए तरह-तरह के हथकडे इस्त-माल करते थे। किशोर कुमार उनके गुस्से का निशाना इसलिए बना कि उसने दिल्ली मे युवक काग्रेस के एक तमाशे मे गाना गाने मे आनाकानी की थी। किशोर के सारे गाने रेडियो और टेलीविजन पर बन्द करवा दिये गये। कितनी ही फिल्मे सेंसर की मजूरी न मिलने की वजह से अटक गयी क्योंकि शुक्लाजी चाहते थे कि प्रोड्यूसर और फिल्म स्टार उनकी 'जी हुजूरी' करें। सूचना मत्रालय मे काम करनेवाले एक और पुलिस अफसर इस मदान मे उनके खास कारिन्दे थे।

ताकत का बेजा इस्तेमाल करने की बीमारी 'घराने' के कई और लागो को भी लग चुकी थी। श्रीमती गाधी की बडी बहू राजीव की बीवी सोनिया, इटलियन थी। उसके पास अभी तक इटलियन पासपोर्ट ही था लेकिन उसने परदेसिया पर लागू होनवाले कानून के अनुसार अभी तक अपना नाम रजिस्टर नही कराया था। इस कानून के अनुसार हर विदेशी आदमी को यहा पहुँचने के नब्बे दिन के अन्दर अपना नाम रजिस्टर करवाना पडता था। (मियाद पूरी हो जाने पर हर बार नाम फिर से रजिस्टर कराना जरूरी था।) किसी जमाने म वह सरकारी लाइफ इश्योरेंस कार्पोरेशन की एजेंट थी लेकिन अब मारुति की सलाह देनेवाली कम्पनी मे काम करती थी।

श्रीमती गांधी की दूसरी बहू संजय की बीवी मेनका ने एक पत्रिका निकाली थी सूर्य, जिसके लिए हर जगह से हर तरीके से इश्तहार जुटाये जाते थे।

फिर यूनुस साहब थे जिनका तकियाकलाम था 'पकड़ लो'। विदेशी पत्रकारों के सामने उन्होंने कहा था कि पश्चिमी जर्मन 'हिटलर के ढंग से सोचते हैं' अंग्रेज 'पागल' हैं और अमरीकी 'बेहूदा' हैं। वह प्रेसीडेंट फोर्ड को कहते थे "अरे, वह फुटबाल का खिलाड़ी"।

लेकिन अब यूनुस अखबारों पर सेंसरशिप कुछ ढीली कर देने के पक्ष में थे, जैसा कि विदेशी पत्रकारों के मामले में पहले ही किया जा चुका था।

बहरहाल, अखबारों पर सेंसर के शिकंजे को अब पार्टी के और निजी फायदे के लिए इस्तेमाल किया जा रहा था। सेंसरवाले खबरों को और कांग्रेस या युवक कांग्रेस के बयानों तक को छापने से सिर्फ इसलिए मना कर देते थे कि शुक्लाजी की मर्जी नहीं होती थी, जो हरदम धवन के साथ और धवन की मार्फत संजय के साथ सम्पर्क बनाये रखते थे। शुक्लाजी जिस राज्य में भी जाते थे, वहाँ वह सेंसरवालों को और अखबार वालों को ताकीद कर देते थे कि कांग्रेस के अन्दरूनी झगड़ों के बारे में कोई खबरें न दें। मुख्यमंत्री सेंसर का सहारा लेकर उन खबरों को दबवा देते थे जो उनके या उनके गुट के खिलाफ होती थी। पंजाब में कांग्रेस के अध्यक्ष मोहिन्दरसिंह गिल को अपने बयान छपवाने में कठिनाई होती थी क्योंकि जैलसिंह ने सेंसरवालों को इसके बरखिलाफ हिदायत दे रखी थी। पश्चिम बंगाल के सूचनामंत्री सुब्रत मुखर्जी ने सेंसर के दफ्तर से कह रखा था कि उनके साथियों के खिलाफ किसी खबर का छपने की मंजूरी न दी जाये।

अंग्रेजी की दो पत्रिकाओं को भारत में इमर्जेंसी के कायदे कानूनों की आलोचना करने पर अपना प्रकाशन बन्द कर देने पर मजबूर कर दिया गया था। इनमें से एक था साप्ताहिक ओपीनियन जिसे महाराष्ट्र सरकार ने इसलिए बन्द करवा दिया था कि उसने आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन से सम्बन्धित कानून के सेंसर के नियमों को तोड़ा था।

दूसरी पत्रिका थी मासिक सेमिनार। जब 15 जुलाई को सरकार ने उसे हर चीज पहले सेंसर कराके छापने का आदेश दिया तो उसे मानने से इन्कार करके उन्होंने खुद ही अखबार छापना बन्द कर दिया। इस पत्रिका के दिलेर संपादक रमेश और उनकी बीवी राज ने सेमिनार के उस आखिरी अंक में लिखा था कि सेमिनार "अपनी ईमानदारी और आजादी के साथ विचार व्यक्त करने के अधिकार को इस तरह से छोड़ने को तैयार नहीं है।" सेमिनार और ओपीनियन बन्द होने की खबर किसी अखबार में नहीं छपी।

राजनीतिक मकसद से मीसा का इस्तेमाल अब एक आम बात थी जिसे सभी जानते थे। जिन लोगों को आत्मा के गवाही न देने की वजह से किसी काम के करने में एतराज होता था, वे भी एक धमकी से सही रास्ते पर आ जाते थे। मिसाल के लिए, केरल में विपक्ष के मुस्लिम लीग के कई नेताओं को महज इसलिए नजरबन्द कर दिया गया कि वे शासक गुट से अलग हो गये थे और सरकार के खिलाफ हो गये थे। नजरबन्दी के दौरान उन्हें लालच दिया गया कि अगर वे शासक गुट के साथ आ जायें तो उन्हें रिहा कर दिया जायगा, लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला।

केरल कांग्रेस के नेताओं को भी गिरफ्तारी और कैद की धमकी देकर ही मार्क्सवादी मोर्चा छोड़ने और शासक मोर्चे के साथ आ जाने के लिए मजबूर किया गया था। सच तो यह है कि केरल कांग्रेस इमर्जेंसी की आलोचना करने में बहुत मुखर

थी। लेकिन प्रोम मेहता के इशारे पर, खुफिया विभाग के लोगो ने केरल कांग्रेस के के० एम० जाज और उनके साथियो को दिल्ली जाने पर मजबूर किया, जहाँ उनसे दोटूक कह दिया गया कि या तो वे शासक मोर्चे मे शामिल हो जायें या जेल जाने को तैयार रहे। उनसे वायदा किया गया कि अगर वे शासक मोर्चे म शामिल हो जायेंगे तो उनके कुछ लोगो को मन्त्री बना दिया जायेगा।

हरियाणा मे बसीलाल ने मीसा का सहारा लेकर एक फैक्टरी के मनजर को इसलिए पकडवा दिया कि उसने बसीलाल के एक आदमी को गबन के जुर्म मे इस्तीफा देने पर मजबूर कर दिया था। इसकी शिकायत श्रीमती गाधी तक पहुँचायी गयी, पर उन्होने कुछ किया नही। सबको अपने अपने मैदान मे खुली छूट थी।

मीसा के बेजा इस्तेमाल के बावजूद जहाँ तहाँ लोग अब भी अपनी मर्जी से गिरफ्तार हो रहे थे। गुजरात में जनता मोर्चे ने 15 अगस्त 1976 को अहमदाबाद से दण्डी तक की पदयात्रा सगठित की। 1930 मे जब महात्मा गाधी ने दक्षिणी गुजरात के बलसार जिले म ऐसी ही एक पदयात्रा की थी तो वह भी दण्डी तक गये थे। हालांकि सरदार पटेल की बहन कुमारी मणिबेन पटेल इस 'यात्रा' की अगुवाई कर रही थी, लेकिन उन्ह गिरफ्तार नही किया गया, उनके बाकी सब साथी गिरफ्तार कर लिये गये। दिल्ली से खास ताकीद कर दी गयी थी कि उन्हें गिरफ्तार न किया जाये। बाईस दिन बाद वह दण्डी पहुँची।

अगस्त के महीने मे ही बाबूभाई पटेल भी, जो गुजरात के मुख्यमन्त्री रह चुके थे, मीसा म पकड लिये गये।

इस तरह की गिरफ्तारियो स विदेशा मे लोगो को उम्मीद बँधी कि अब भी कुछ हिन्दुस्तानी ऐसे हैं जो जनतान्त्रिक आदर्शों के लिए लड सकते हैं। कुछ विदेशी अखबारो ने इन घटनाओ का सहारा लेकर श्रीमती गाधी पर हमला किया। इस आलोचना से उनको बहुत चोट पहुँची। इमर्जेंसी के दौरान कुछ लोग विदेशो मे लोगो को यह बताने के लिए भारत छोडकर चले गये कि इस देश म किस तरह धीरे धीरे बाक़ायदा आज़ादी की जडें खोखली की जा रही हैं।

अमरीका ने 24 अगस्त को भारत की बार कौंसिल के अध्यक्ष राम जेठमलानी को राजनीतिक शरण दी। केरल मे सरकार के खिलाफ एक भाषण देने की वजह से जेठमलानी को डर था कि उन्हे गिरफ्तार कर लिया जायेगा। 28 अप्रल को वह हवाई जहाज मे भारत स कनाडा म मांटियल के लिए रवाना हो गये और मई मे अमरीका पहुँचे।

जेठमलानी ने वन स्टेट यूनिवर्सिटी स, जहाँ वह तुलनात्मक सविधान कानून के अतिथि प्रोफेसर की हैसियत म गय थे बार कौसिल के वाइस चेयरमैन को लिखा 'मैं नही मान सकता कि तुम्हारी आत्मा इतनी मर चुकी है कि तुम तानाशाही और घोर अत्याचार मे भी खूबिया ढूढन लगे हो। मुझे यह न बताओ कि तुम्हारे ऊपर उन कामयाबियो का बहुत रौब पडा है जिनका कि श्रीमती गाधी दावा करती हैं। मुसोलिनी और हिटलर दोनो ही के पास अपने देशवालो को दिखाने के लिए उससे कही ज्यादा कामयाबियाँ थी जितनी कि श्रीमती गाधी दिखा सकती है। मैं तुम्ह यकीन दिलाता हूँ कि मैं यहाँ से भारत की आज़ादी के लिए उससे कही ज्यादा काम कर रहा हूँ जितना मैं श्रीमती गाधी की जेलो मे बठकर कर पाता। किसी दिन तुम्ह पूरी सच्चाई का पता चलेगा। मुझे इसमे जरा भी शक नही है कि उनका अत्याचारी शासन हमेशा नही रहेगा और जब उसका खात्मा होगा तो तुममे से हर एक को, जिसने या तो चुप कर बदी के आगे सर झुका दिया है या आगे बढकर उसका साथ दिया है,

ठहराया जायेगा। हिसाब चुकाने का दिन अब दूर नहीं है।"

राज्यसभा में जनसंघ के सदस्य सुब्रह्मण्यम स्वामी पर भी सरकार के खिलाफ काम करने और कानून के चंगुल से और देश से भाग निकलने का आरोप था। उनके खिलाफ गिरफ्तारी का वारंट जारी कर दिया गया था। उनका पासपोर्ट जब्त कर लिया गया था। दिल्ली में उनके घरवालों को सताया जा रहा था। राज्यसभा ने 2 सितम्बर को उनके मामले की छानबीन करने के लिए कमेटी बनाने का फैसला किया। अगर वह लगातार छ महीने तक सदन से गैरहाज़िर रहते तो उनकी सदस्यता खत्म हो जाती। उसे बरकरार रखने के लिए वह पुलिस की मिलीभगत से अगस्त में सदन में आये, लेकिन जितने रहस्यमय ढंग से वह आये उतने ही रहस्यमय ढंग से फिर देश के बाहर भी निकल गये। बाद में उनकी राज्यसभा की सदस्यता खत्म कर दी गयी।

स्वामी के इस तरह गायब हो जाने से श्रीमती गांधी की सरकार की बड़ी बदनामी हुई। लेकिन 24 सितम्बर को अंडरग्राउंड नेता जार्ज फर्नांडीज और चौबीस दूसरे लोगों पर नई दिल्ली के एक मजिस्ट्रेट की अदालत में सरकार के खिलाफ साज़िश करने का आरोप लगाकर उनकी सरकार ने अपनी नाक ऊँची रखने की कोशिश की।

इन लोगों का अपराध यह बताया गया था कि इन्होंने बड़ौदा (गुजरात) से टनों डायनामाइट दूसरी जगहों को भेजा था और वे रेल व्यवस्था में बहुत बड़े पैमाने पर तोड़ फोड़ मचाकर सारे देश में उथल पुथल पैदा कर देना चाहते थे।'

असल में 'बड़ौदा डायनामाइट कांड' के लोगों के बारे में श्रीमती गांधी को खबर चिमनभाई ने दी थी जो गुजरात के मुख्यमंत्री रह चुके थे। वह श्रीमती गांधी से समझौता कर लेना चाहते थे क्योंकि 1974 में श्रीमती गांधी ने ही उन्हें मुख्यमंत्री के पद से इस्तीफा देने पर मजबूर कर दिया था।

श्रीमती गांधी को जो खबरें मिली थीं उनमें कहा गया था कि गुजरात में पूरा सरकारी ढांचा बहुत ढीला ढाला था और उस पर अभी तक जनता मोर्चे की सरकार का 'नशा' छाया हुआ था। उन्होंने तेल तथा रसायन मंत्री पी० सी० सेठी को वहाँ से असली खबर लाने के लिए भेजा।

अहमदाबाद के हवाई अड्डे पर उतरते ही सेठी ने इस बात का जवाब तलब किया कि उनको सलामी देने का इन्तजाम क्यों नहीं किया गया था। पुलिस कमिश्नर ने जल्दी-जल्दी वहाँ पर तैनात कुछ पुलिसवालों को जमा करके जैसी तैसी सलामी का बन्दोबस्त करा दिया। सेठी को यह बात पसन्द नहीं आयी और उन्होंने पुलिस कमिश्नर को बर्खास्त कर देने का हुक्म दे दिया। उनके चले आने के बाद गुजरात के अधिकारियों ने बर्खास्तगी के इस हुक्म की तामील करने से इकार कर दिया क्योंकि वे जानते थे कि पुलिस कमिश्नर बहुत ही अच्छा अफसर है। अन्दाजा लगाया जाता है दिल्ली के लिए रवाना होने के वक्त तक सेठीजी ने अहमदाबाद और बड़ौदा में बीसियों पुलिस अफसरों और दूसरे सरकारी अफसरों को बर्खास्त कर दिया था।

अहमदाबाद की एक मज़दूर बस्ती में वहां के म्युनिसिपल कार्पोरेशन की तरफ से जो एक मीटिंग की गयी उसमें सेठीजी अंग्रेजी में बोलने लगे। एक मुसलमान मज़दूर ने बीच में खड़े होकर सुझाव दिया कि मंत्रीजी हिन्दी में बोलें। इस पर सेठीजी भड़क उठे और बोले, "इस आदमी को गिरफ्तार क्यों नहीं कर लेते? क्या मैं यहाँ अपनी बेइज्जती कराने आया हूँ?" इतना कहकर वह मंच पर से उतर आये और हितेन्द्र देसाई और वहाँ के मेयर वाडीलाल कामदार हक्का-बक्का देखते रह गये। मेयर ने सेठीजी को समझाने की कोशिश की कि किसी का इरादा उनकी बेइज्जती करने का नहीं था। लेकिन सेठीजी ने सड़क पर लड़नेवाले लोगों की तरह अहमदाबाद

के प्रथम नागरिक को ढकेल दिया। प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष की हैसियत से हितेन्द्र देसाई सेठीजी की मोटर मे घुसने ही वाले थे कि उन्होंने चिल्लाकर कहा, "आपसे किसने कहा कि मेरे साथ चलिये ? चले जाइये यहाँ से।"

दिल्ली लौटकर सेठीजी ने श्रीमती गाधी को बताया कि गुजरात में इमर्जेंसी का कही नामो निशान नही है। इसके बाद ओम मेहता अहमदाबाद भेजे गये और वहाँ गिरफ्तारियो का दौर शुरू हो गया। राष्ट्रपति के सलाहकारो की राय मे इन गिरफ्तारियो की कोई जरूरत नही थी।

गुजरात मे गिरफ्तारियो की नयी लहर से ऐसा लगा कि इमर्जेंसी एक ऐसी सुरग है जिसका कोई छोर नही है। बहुत से लोग लाचार महसूस करते थे और चुपचाप सब-कुछ बर्दाश्त कर लेते थे। लेकिन सर्वोदय आदोलन के 65 वर्ष बूढे कार्यकर्ता और विनोबा भावे के साथी प्रभाकर शर्मा ने, श्रीमती गाधी के नादिरशाही शासन के खिलाफ अपनी आवाज उठाने के लिए 11 अक्तूबर को महाराष्ट्र के वर्धा शहर के बाहर सुरगाँव मे अपने आपको जलाकर प्राण दे दिये।

आत्मदाह करने से पहले शर्मा ने श्रीमती गाधी को एक पत्र लिखकर ऐसा करने का कारण बताया। इस पत्र मे उन्होने लिखा था "भगवान् और इसान को भूलकर और अपने आपको हर तरह की अत्याचारी ताकत से लैस करके सरकार ने अखबारो से उनकी आजादी छीन ली और भारतीय जीवन की हर उस खूबी पर हमला किया जो भली महान और उदात्त हो सकती है। इस साल उसने बडी बेशर्मी से राष्ट्र की आत्मिक और अहिंसक सभ्यता पर हमला किया है।

'आपका मीसा का क़ानून सरकारी अफ्सरो को पिशाच और लोगो को कायर बना देता है। जो निडर होकर अपना काम करता है उसे हमेशा के लिए जेल मे डाल दिया जाता है। न्याय कही नही मिलेगा। जज आपके गुर्गे हैं। ऐसी हालत मे जेल जाना दमन को स्वीकार कर लेना होगा। मैं इसे कभी बर्दाश्त नही करूगा कि आप मुझे चूहो की तरह डरा धमकाकर रखें।" गाधीजी के अखबार यग इडिया का हवाला देते हुए पत्र मे लिखा गया था 'अगर हम आजाद मर्द या औरत की तरह न रह सकें तो हमे मरकर सन्तोष पाना चाहिए।' शर्मा ने यह भी लिखा "मैं जानता हू कि इस तरह का पत्र लिखना भी अपराध है। इसलिए मैं आपके इस पापी शासन मे जीना नही चाहता।"

विनोबा ने शर्मा से कहलवाया था कि वह आकर उनसे मिलें, लेकिन यह हो न सका। विनोबा को श्रीमती गाधी से हमदर्दी जरूर थी लेकिन वह खुद बहुत निराश थे। पुलिस ने और खुफिया विभागवालो ने 9 जून को उनके आश्रम पर छापा मारा था और उनकी हिन्दी पत्रिका मत्री के उस अक की 4 200 कापियाँ जब्त कर ली थी जिसमे यह एलान छपा था कि अगर गो वध पर पाबन्दी न लगायी गयी तो वह 11 सितम्बर से अनशन शुरू कर देंगे। (बाद मे सरकार ने यह पाबन्दी लगा भी दी थी।)

ज्यादतियो के किस्से सुन-सुनकर और यह महसूस करके कि इस हगामे का कोई अन्त नही है वे लोग भी, जो कभी इमर्जेंसी मे कुछ अच्छाइयाँ देखते थे, अब उसके खिलाफ हो गये। उन्हे इस निरकुश शासन से या एक चाडाल चौकडी की मनमानी सरकार से छुटकारे का कोई रास्ता नही दिखायी देता था।

दो बातो की वजह से सरकार और जनता के बीच की दूरी और बढ गयी— सविधान मे सशोधन और चुनावो का एक बार फिर टल जाना। कांग्रेस ने 27 फरवरी 1976 को स्वर्णसिह की अध्यक्षता मे जो एक बहुत शक्तिशाली कमेटी बनायी थी उसने अपनी रिपोर्ट तयार करके दे दी जिसे सरकार ने लगभग ज्यो-का त्यो स्वीकार कर

लिया। स्वर्णसिंह ने मुझे बताया, "अगर मैं न होता तो इससे भी बदतर हालत होती।" उन्होने कहा "हम लोगो ने राष्ट्रपति प्रणाली को हमेशा के लिए दफन कर दिया।"

संविधान मे संशोधनो का जो सुझाव रखा गया था उससे हर तरफ गुस्से की लहर दौड़ गयी। श्रीमती गांधी ने वचन दिया कि संसदीय प्रणाली नष्ट नही की जायेगी और यह कि संविधान मे बस कुछ 'छोटे-मोटे हेर फेर' किये जायेंगे। लेकिन इससे लोगो की आशकाएँ दूर नही हुई और यह मांग की गयी, खास तौर पर बुद्धिजीवियो की तरफ से, कि नये चुनाव हो जाने से पहले संविधान में कोई संशोधन न किये जायें। सुप्रीम कोर्ट के बार एसोसिएशन ने भी ऐसी ही मांग उठायी।

शिक्षा, कला और साहित्य के क्षेत्रो के लगभग 300 जाने-माने लोगो के हस्ताक्षर से श्रीमती गांधी को एक अर्जी दी गयी जिसमे ज़ोर देकर कहा गया कि "मौजूदा संसद को संविधान म बुनियादी परिवतन करने का न कोई राजनीतिक अधिकार है न नतिक अधिकार। गर कम्युनिस्ट विपक्ष और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी संविधान म किये जानेवाले संशोधनो के बारे मे कांग्रेस दल की कमेटी के साथ कोई बातचीत करने को तयार नही थे और उ होने इसके बारे मे आवश्यक बिल पास करने के लिए 25 अक्तूबर को बुलाये गये संसद के विशेष अधिवेशन का बॉयकाट कर दिया।

संसद ने 2 नवम्बर को 59 धाराओ वाले संविधान (42वां संशोधन) बिल को 4 के खिलाफ 366 वोटो से पास कर दिया। आधे राज्यो की विधानसभाओ ने जब इस बिल पर अपनी मुहर लगा दी और 18 दिसम्बर को जब राष्ट्रपति ने भी अपनी मंजूरी दे दी तो यह बिल अधिनियम बन गया। संविधान म बताये गये निदेशक सिद्धान्तो को इसमे मूल अधिकारो से ऊँचा स्थान दिया गया था नागरिको के दस बुनियादी कर्तव्य बताये गये थे, जिनमे अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा का कर्तव्य भी शामिल था, लोकसभा और राज्यो की विधानसभाओ की अवधि पांच साल से बढ़ाकर छ साल कर दी गयी थी, कानून और व्यवस्था मे किसी 'संगीन' स्थिति से निबटने के लिए केन्द्रीय सशस्त्र सेना को किसी भी राज्य मे तनात कर देने का अधिकार दे दिया गया था और राष्ट्रपति को मंत्रिमण्डल की सलाह को मानने के लिए बाध्य कर दिया गया था, राष्ट्र विरोधी हरकत' पर पाबन्दी लगा दी गयी थी और राष्ट्रपति को दो साल के लिए इन संशोधनो के रास्ते मे आनेवाली किसी भी रुकावट को दूर करन के लिए आदेश जारी करने का अधिकार दे दिया गया था। यह भी तय कर दिया गया था कि संविधान के किसी संशोधन के खिलाफ किसी भी अदालत म कोई कारवाई नही की जा सकती और इसके बाद से केन्द्र या राज्यो के बनाये हुए किसी भी कानून को तब तक असंवैधानिक नही ठहराया जा सकता जब तक कि कम-से-कम सात जजो म से दो तिहाई का बहुमत ऐसा फसला न कर दे। संविधान की प्रस्तावना को बदल दिया गया सार्वभौम लोकतान्त्रिक गणराज्य' को बदलकर सार्वभौम समाजवादी गणराज्य' कर दिया गया और 'राष्ट्र की एकता की जगह 'राष्ट्र की एकता और अखडता कर दिया गया।

बरुआ ने कहा कि विचार प्रकट करने की आज़ादी के साथ उसके दुरुपयोग का दण्ड भी मिलना चाहिए और 'दुरुपयोग' क्या है क्या नही, इसका फैसला सरकार करेगी। संविधान मे कुछ और संशोधनो का सुझाव ऐन वक्त पर टाल दिया गया। सिद्धार्थ बाबू चाहते थे कि राष्ट्रपति को कोई सलाह देने से पहले प्रधानमंत्री के लिए मंत्रिमण्डल से मशविरा करना ज़रूरी न समझा जाये।

जिन जिन लोगो को श्रीमती गांधी के शासन मे फायदा हुआ था उन सभी को इन संशोधनो को उचित साबित करने के काम पर लगा दिया गया। जब भी श्रीमती

गाधी के सामने कोई समस्या होती थी तब वह ऐसा ही करती थी ।

भारत के भूतपूव चीफ जस्टिस और लॉ कमीशन के अध्यक्ष पी० बी० गजेन्द्र गडकर ने इन सशोधना की परवी करते हुए कहा, "जब भारतीय जनतन्त्र नागरिको की न्यायोचित पर बढती हुई आशाओ और आकाक्षाओ को पूरा करने और सामाजिक बराबरी और आर्थिक न्याय के आधार पर एक नयी समाज-व्यवस्था स्थापित करने के अपने ध्येयो को पूरा करने का बीडा उठायेगा, तो मुमकिन है कि इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उस समय समय पर मुनासिब कानून बनाने पडें ।"

विपक्ष के नेता अशोक मेहता ने इस बात की निन्दा की कि सरकार "इमर्जेंसी की स्थिति को (जो जून 1975 मे लागू की गयी थी) कानूनी जामा पहना रही है और (प्रधानमन्त्री इन्दिरा) गाधी के हाथो म सारी ताकत समेट लेने को कानून का सहारा दे रही है।"

जब सविधान म परिवतन करने के सवाल पर विचार करने के लिए 25 अक्तूबर को ससद की बैठक हुई तो विपक्ष के ज्यादातर सदस्यो ने उस बैठक मे भाग नही लिया। विपक्ष की चार पार्टियो ने मिलकर एक बयान दिया जिसमे कहा गया था कि ये सशोधन 'सविधान म जिन अकुशो और सन्तुलनो की व्यवस्था की गयी है उसकी पूरी प्रणाली को खत्म कर देंगे और नागरिको के हित के खिलाफ सत्ता के मनमाने उपयोग को ही बाकी रहने देंगे ।"

श्रीमती गाधी इस बिल का विरोध करनेवालो पर बरस पडी और बहस के दौरान उन्होंने कहा कि 'जो लोग कानून को एक ऐसे शिकजे मे कस देना चाहते हैं जिसे कभी बदला न जा सके, उन्ह नये भारत की सच्ची भावना का कुछ भी पता नही है।"

यह आलोचना की गयी कि सरकार ने जो कदम उठाये थे उनका सविधान के बुनियादी ढाचे पर असर पडता है। सुप्रीम कोट के एक बहुमत फैसले के अनुसार ससद को ऐसा करने का अधिकार नही था। श्रीमती गाधी ने कहा कि सविधान के "बुनियादी ढाँचे के उस जड विचार को हम नही मानते," जो जजो की गढी हुई बात है। सरकार का साथ देनेवाले सविधान के विशेषज्ञो ने कहा कि जजो ने कभी भी साफ साफ शब्दो म यह नही बताया कि बुनियादी ढांचा है क्या। सविधान के बुनियादी लक्षण गिनाना कोई ऐसा कठिन काम नही था। इनमे से कुछ तो बिलकुल बुनियादी थे—स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनाव, जनता के सामने सरकार की जवाबदेही, स्वतन्त्र जजो के सामने अदालतो मे विचार कानून का शासन जिसका मतलब यह था कि कानूनी कारवाई पूरी किये बिना किसी भी आदमी से उसकी जान, आजादी या जायदाद नहीं छीनी जा सकती, कानून की नजर म सभी की बराबरी, स्वतन्त्र अखबार, धम निरपेक्षता जिसका मतलब था धम की आजादी और धम के आधार पर किसी भी तरह का भेदभाव न किया जाना और सामाजिक न्याय।

श्रीमती गाधी को या उनको घेरे रहनेवालो को जो चीज परेशान कर रही थी वह सविधान का बुनियादी ढाँचा नही था। उनको असली परेशानी इस बात की थी कि बाकी सब लोग तो सीधे रास्ते पर आ गये थे लेकिन जज लोग अभी तक नही आये थ। कुछ जज अब भी स्वतन्त्र ढग स काम करत थे और उनके जो फसले सरकार के खिलाफ होते थे वे प्रशासन के लिए हमेशा एक समस्या' खडी कर देते थे। वे परेशानी की जड थे उन्ह एक जगह से बदलकर दूसरी जगह भेजना पडेगा, और यह दूसरा के लिए भी एक सबक होगा।

सोलह जजो को बदलकर दूसरी जगहो पर भेज दिया गया एस०

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी तक ने इस विचार का विरोध किया। विपक्ष की पार्टियाँ सविधान सभा के तो पक्ष मे थीं लेकिन वे चाहती थी कि उसके सदस्य बालिग मताधिकार की बुनियाद पर सीधे चुने जायें। उनकी दलील यह थी कि मौजूदा ससद और राज्यो की विधानसभाए जितने दिन के लिए चुनी गयी थी उससे ज्यादा वक्त तक वे काम कर चुकी हैं, इसलिए अब वे मतदाताओ की प्रतिनिधि नही रह गयी हैं। सविधान सभा के विचार को और आगे नही बढाया गया।

लोकसभा ने, जो शुरू मे पाच साल के लिए चुनी गयी थी, 5 नवम्बर को अपनी अवधि एक साल के लिए और बढा ली। नतीजा यह हुआ कि जो चुनाव मार्च 1976 मे हो जाने चाहिए थे वे अब 1978 तक के लिए टल गये।

अब ससद मे कोई मधु लिमये या शरद यादव तो था नही जो लोकसभा से इस्तीफा दे देता, जिस तरह इन दोनो ने उस वक्त इस्तीफा दे दिया था जब लोकसभा ने पहले अपनी अवधि बढायी थी। मधु ने स्पीकर को लिखा था 'मेरी राय मे मौजूदा लोकसभा की अवधि को बढाना सरासर अनैतिक और बेईमानी की बात है। मेरा पक्का विश्वास है कि इस सरकार को अपने पक्ष मे मतदाताओ का फैसला लिये बिना 18 मार्च 1976 के बाद शासन की बागडोर अपने हाथ मे रखने का कोई अधिकार नही है।" श्रीमती गाधी के नाम एक पत्र मे उन्होने उस वक्त लिखा था "मैं कहता हूँ, लोगो को नजरबन्द करने के बाद आपने अपने हाथ क्यो रोक लिये? जो कुछ आप करना चाहती हैं सब कर देखिये। गणराज्य का यह सारा ढोग छोडकर आप राजतन्त्र का या साम्राज्यशाही का सविधान क्यो नही बनवा लेती ताकि इस बात का पक्का यकीन हो जाये कि आपके बाद आपका बेटा और उसके बाद उसका बेटा राज्य करेगा, क्योकि ऐसा लगता है कि आपकी दिली तमन्ना यही है? शायद पश्चिमी देशो के फासिस्टो को इस बात पर खुशी होगी कि हमारे बारे मे उनकी यह पुरानी राय सच निकली कि एशिया और अफ्रीका की 'घटिया नस्लो के हम लोग इस लायक नही हैं कि नागरिक स्वतन्त्रता और जनतन्त्र के वरदानो का सुख भोग सकें।"

सरकार ने लोकसभा की अवधि बढाने को इस बुनियाद पर सही ठहराया कि इमर्जेंसी से जो 'फायदे' हुए हैं उन्हे अभी पक्का करना है। दुबारा अवधि बढाने के बिल का विरोध विपक्ष की लगभग सभी पार्टियो ने किया लेकिन वह 34 के खिलाफ 180 वोटो से पास हो गया। श्रीमती गाधी ने चुनाव टलवाने के पक्ष मे यह दलील दी कि "हम झगडो से या किसी भी ऐसी चीज से परे रहना चाहिए जो गडबडी के हालात पैदा कर सके।'

चुनाव का काँटा रास्ते से हट जाने के बाद अब श्रीमती गाधी को इस बात की फिक्र थी कि सजय ने जितनी बडी-बडी जिम्मेदारियाँ सँभालने का बीडा उठा लिया है उनके लायक उसे कैसे बनाया जाये। सजय अभी से कैबिनेट के कागजात देखने लगा था, बडे बडे अफसर उससे बातचीत करने आते थे, खुफिया रिपोर्टें उसी की माफत प्रधानमत्री के पास तक पहुँचती थी। (विद्याचरण शुक्ला की हरकतो के बारे मे जो भी जानकारी होती थी उसे वह अक्सर रोक लेता था क्योकि श्रीमती गाधी इन मत्री महोदय को चेतावनी दे चुकी थी।) केन्द्र के ज्यादातर मत्री या तो खुद सजय से सलाह लेते थे या इस काम के लिए अपने सेक्रेटरियो को भेजते थे। एक बार शिक्षा मत्री नूरुल हसन ने किसी सुझाव के सिलसिले मे अपने सेक्रेटरी से संजय की राय मालूम कर लेने को कहा था। राज्यो के मुख्यमत्री ही नही बल्कि चीफ सेक्रेटरी तक उसकी मर्जी जानने के लिए उसके दरबार मे हाथ बाँधे खडे रहते थे।

लेकिन यह सारा सिलसिला तो कामचलाऊ था, किसी वक्त भी टूट

था। श्रीमती गांधी ने सोचा कि इसे कानूनी रूप देना होगा। कुछ लोगों ने सुझाव दिया था कि उसे राज्यसभा के रास्ते संसद में ले आया जाये। लेकिन वह इसके लिए तैयार नहीं हुईं, यह तो इतना खुला तरीका होगा कि अंधा भी देख लेगा।

फिलहाल सबसे अच्छा तरीका शायद यही होगा, उन्होंने सोचा, कि युवक कांग्रेस को मज़बूत किया जाये और संजय को हमलों से बचाया जाये। अब तो कांग्रेस पार्टी के अन्दर भी लोग खुलेआम उसकी आलोचना करने लगे थे। श्रीमती गांधी ने सबसे पहले भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी पर हमला किया जिसने संजय की आलोचना की थी।

संजय कम्युनिस्टों और उनकी पॉलिसियों से नफरत करता था, यह बात उसने कभी छिपायी नहीं थी। वह कई बार कह चुका था कि दूसरी लड़ाई के दौरान सोवियत संघ, अंग्रेज़ों और दूसरी मित्र ताकतों का साथ देकर कम्युनिस्टों ने अगस्त 1942 में राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ गद्दारी की थी। इस आलोचना से चिढ़कर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल सक्रेटरी सी० राजेश्वर राव ने कहा कि कांग्रेस के अन्दर 'एक प्रतिक्रियावादी चाण्डाल चौकड़ी' काम कर रही है।

कांग्रेस के लोगों में भी, जिनमें इस वक्त अपनी वफ़ादारी साबित करने में कोई भी किसी से पीछे नहीं रहना चाहता था, इस बयान पर एक तूफ़ान खड़ा हो गया और उन लोगों ने कहा कि यह बयान कांग्रेस के अन्दरूनी मामलात में खुला हस्तक्षेप है। श्रीमती गांधी ने भी यही रवैया अपनाया।

कई साल में पहली बार 23 दिसम्बर को उन्होंने नाम लेकर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी पर हमला किया। उन्होंने कहा, 'कम्युनिस्ट कहते हैं कि वे मेरे साथ हैं, लेकिन मेरे लिए इससे बड़े अपमान की कोई दूसरी बात नहीं हो सकती कि यह कहा जाये कि मैं प्रतिक्रियावादियों के या किसी दूसरे के दबाव में आ सकती हूं।" अपने बेटे की सफ़ाई देते हुए उन्होंने कहा कि 'वह तो बहुत ही मामूली आदमी है, बहुत ही छोटा आदमी है, वह न प्रधानमंत्री बननेवाला है न राष्ट्रपति और न ही कुछ और। वह तो बस कांग्रेस का कार्यकर्ता बन सकता है। इसलिए मैं समझती हूँ कि यह हमला सीधे मेरे ऊपर है।'

गौहाटी में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में भी 20 नवम्बर को श्रीमती गांधी ने संजय की तरफ़ से और उसकी युवक कांग्रेस की तरफ़ से सफ़ाई पेश की। उन्होंने कहा कि संजय ने जो पांच सूत्री कार्यक्रम शुरू किया है वह सरकार के बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के साथ जुड़ा हुआ है और उससे देश का आर्थिक नक्शा बदल देने में मदद मिलेगी। उन्होंने यह विश्वास ज़ाहिर किया कि भारत का भविष्य उसके नौजवानों के हाथ में सुरक्षित है, जिन्होंने कुछ कर दिखाने की भावना के साथ अपनी ज़िम्मेदारी संभाल ली है।

गौहाटी अधिवेशन में सच पूछा जाये तो संजय का ही बोलबाला रहा। एक एक करके जो भी प्रतिनिधि बोलने के लिए उठा उसने संजय की ही तारीफ़ के पुल बांधे। बरुआ ने तो उसकी तुलना भारत के महान सन्त स्वामी विवेकानन्द से की। केरल प्रदेश कांग्रेस के नौजवान और ईमानदार अध्यक्ष ए० के० एंटोनी ही अकेले ऐसे आदमी थे जिन्होंने इससे हटकर बात कही, और इस बात पर ज़ोर दिया कि कांग्रेसजनों को अपने आपको 'सुधारना' चाहिये उन्हें अपने ऊपर कोई कलंक नहीं लगने देना चाहिए और राजनीति की अखाड़ेबाज़ी से दूर रहना चाहिये।

सब लोग सुर में सुर मिलाकर उनकी और उनके बेटे की महिमा का बखान कर रहे थे लेकिन इसके बावजूद गौहाटी अधिवेशन में श्रीमती गांधी कुछ चिंतित हो उठीं।

एक तरह का 'मूक असहयोग' उन्होने वहाँ देखा। उन्होने देखा कि काग्रेस के डेलीगेटो मे एक तरह की निराशा और अविश्वास है। वही लोग, जिन्होने अभी एक ही साल पहले चडीगढ मे इमर्जेंसी को चुपचाप मान लिया था, उन्ही लोगो के चेहरे अब बुझे-बुझे थे। श्रीमती गाधी अनमने समर्थको का सहारा नही लेना चाहती थी। इससे कही अच्छा होगा समर्थको की नयी पौध तैयार की जाये। उन्हें पूरा विश्वास था कि देश उनके साथ है।

वह अगर नौजवानो का सहारा लेना चाहती थी तो इसकी एक और वजह भी थी। वह चाहती थी कि सजय खुद अपने पाँवो पर मजबूती से खडा हो जाये। उसका एहसान माननेवालो मे सिर्फ नये और नौजवान लोग होगे।

आगे चलकर जब कभी वह प्रधानमत्री का पद छोडेंगी, शायद काग्रेस की अध्यक्ष बन जाने के लिए, तो उस वक्त पार्टी में सजय की इतनी ताकत होनी चाहिए कि वह उनकी जगह ले सके। ज्यादातर राज्यो के मुख्यमत्री तो इस वक्त भी उनके साथ थे—बिहार मे मिश्रा, उत्तर प्रदेश मे तिवारी, पजाब मे जर्लासह, हरियाणा मे बनारसीदास गुप्ता, राजस्थान मे हरिदेव जोशी, मध्य प्रदेश मे श्यामाचरण शुक्ला, आन्ध्र प्रदेश मे वेंगलराव, महाराष्ट्र मे एस० बी० चह्वाण और गुजरात मे माधवसिंह सोलकी।

तीन मुख्यमत्री जो सजय के 'वफादार' नही थे, वे थे उडीसा की नन्दिनी सत्पथी, पश्चिम बगाल के सिद्धार्थशकर रे और कर्नाटक के देवराज अर्स। इनमे से पहले दो के बारे मे तो यह समझा जाता था कि उन्हें सजय से बैर है। सजय भी उनको पसन्द नही करता था क्योकि वह उन्हे कम्युनिस्ट समझता था।

श्रीमती गाधी का इशारा इन्ही लोगो की तरफ था जब उन्होने गौहाटी मे कहा था "जिस तरह हर केन्द्रीय मत्री ने अपना अलग एक साम्राज्य बना रखा है, उसी तरह हम देखते हैं कि मुख्यमत्रियो के भी अलग अलग अपने साम्राज्य हैं और उन्हे दूसरे साम्राज्यो के साथ अपने साम्राज्य के टकराव की भी कोई परवाह नही है।"

इन लोगो से इनके साम्राज्य छीनकर उन्हें यह बता देना जरूरी था कि उनकी औक़ात क्या है। सबसे पहले नन्दिनी सत्पथी की बारी थी। उडीसा के गवनर अकबर अली ने, जिन्होंने जयप्रकाश की तारीफ की थी और इस वजह से उन्हे अपने पद से इस्तीफा भी देना पडा था, श्रीमती गाधी को कई खत लिखे थे जिनमे उन्होने मुख्यमत्री पर भ्रष्टाचार और सरकार के काम काज मे गडबडी के कई आरोप लगाये थे। उन्होंने प्रधानमत्री का ध्यान उस आलीशान कोठी की तरफ भी दिलाया था जो नन्दिनी सत्पथी ने भुवनेश्वर मे 7,00,000 रुपये की लागत से बनवायी थी। अकबर अली ने यह भी आरोप लगाया था कि कोठी बनवाने का काम पी० डब्ल्यू० डी० के इजीनियरो की निगरानी मे हुआ था और उसके लिए बहुत-सा सरकारी सामान इस्तेमाल किया गया था।

उडीसा के एक मत्री विनायक आचार्य के जरिये सजय ने नन्दिनी सत्पथी का तख्ता उलटने की सारी तैयारी पहले से कर ली थी। यह भी शिकायतें मिली थी कि सरकारी काम-काज मे उनका लडका हद से ज्यादा टाँग अडाता है और सजय को वह लडका कभी भी पसन्द नही था। इस तरह की शिकायतें भी दिन ब दिन बढती जा रही थी कि नन्दिनी सत्पथी सरकार के काम-काज की तरफ और उडीसा मे अकाल की वजह से जो हालत पैदा हो गयी थी उसकी तरफ पूरा ध्यान नही देती हैं।

कुछ लोगो ने नन्दिनी सत्पथी को बताया भी था कि श्रीमती गाधी उनके खिलाफ हैं लेकिन उन्होने इन बातो पर ध्यान नही दिया। देना चाहती भी नही थी क्योकि वह हमेशा श्रीमती गाधी की वफादार रही थी।

ए० आई० सी० सी० के जनरल सेक्रेटरी ए० आर० अतुले नन्दिनी सत्पथी से इस्तीफा दिलवाने के लिए उड़ीसा भेजे गये थे। उन्होंने वहाँ जाकर कहा, 'हमारी सर्वोच्च नेता श्रीमती गांधी को यह फैसला करने का पूरा पूरा जनतान्त्रिक अधिकार है कि कौन उनका वफादार है और कौन नहीं। वफादारी को अलग अलग टुकड़ों में बाँटा नहीं जा सकता।"

और श्रीमती गांधी की इतनी हिम्मत नहीं पड़ी कि जब नन्दिनी सत्पथी अपने राज्य की हालत के बारे में बताने के लिए हवाई जहाज से दिल्ली आयी तो वह उनसे इस्तीफा देने को कहती। जैसे ही नन्दिनी सत्पथी अपने राज्य की राजधानी में वापिस पहुँचीं और उन्होंने कुछ दिन की छुट्टी ले ली उसी वक्त उन्हें तार मिला जिसमें उनसे इस्तीफा देने को कहा गया था। हालांकि सदन में नन्दिनी का बहुमत था, उन्हें मजबूरन 16 दिसम्बर को इस्तीफा दे देना पड़ा।

पश्चिम बंगाल में मुख्यमंत्री सिद्धार्थशंकर रे ने पहले ही किसी व्यापार मण्डल के समारोह में संजय को अपनी वफादारी का वचन दिया था और उसे यह भी याद दिलाया था कि वह तो उसके परिवार के मित्र हैं, फिर भी उनकी वफादारी पर शक किया जाता था। वह कांग्रेस के एक गुट को दूसरे से लड़वाकर अब तक बाल-बाल बचते आये थे। जिस दिन से वह राज्य के मुख्यमंत्री बने थे तभी से उनकी ताकत का सारा दारोमदार इसी पर रहा था। श्रीमती गांधी और संजय दोनों ही ने उनका नाम उन लोगों की फेहरिस्त में शामिल कर रखा था जिन्हें हटाया जाना था। इस बात का ढिंढोरा पीटकर कि वह नई दिल्ली की सरकार से भी टक्कर ले सकते हैं उन्होंने पश्चिम बंगाल में अपने पाँव मजबूती से जमा लिये थे—इस खूबी से बंगाली बहुत खुश होते हैं।

सिद्धार्थशंकर रे के ग्रुप ने खुलेआम नेहरू परिवार पर यह इलजाम लगाया कि उसने कभी बंगाल के नेताओं को पनपने का मौका ही नहीं दिया। रे के विरोधी ग्रुप ने सिद्धार्थ बाबू पर यह इलजाम लगाया कि वह बंगाल को भी बंगला देश के रास्ते पर ले जाना चाहते हैं।

सिद्धार्थ बाबू आपस के लोगों में यह कहते थे कि केन्द्रीय सरकार उन्हें निकम्मा साबित करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम दंगा या कोई दूसरे उपद्रव कराने की कोशिश कर सकती है। उनकी दलील यह थी कि हितेन्द्र देसाई का पत्ता काटने के लिए 1969 में अहमदाबाद में हिन्दू मुस्लिम दंगा कराया गया था कमलापति त्रिपाठी को हटाने के लिए उत्तर प्रदेश में पुलिस की बगावत करायी गयी थी, और अब उनकी बारी थी।

श्रीमती गांधी ने सिद्धार्थशंकर रे को हटाया नहीं, और न ही वह देवराज अर्स को हाथ लगाना चाहती थीं। इस वक्त तक उनका दिमाग किसी दूसरे ही ढर्रे पर काम करने लगा था।

अगर संजय को सहारा देकर खड़ा करना था और किसी दिन प्रधानमंत्री बनने के लिए तैयार करना था तो मुख्यमंत्रियों की वफादारी ही इसके लिए काफी नहीं थी। श्रीमती गांधी उन संसद सदस्यों की बुनियाद पर सोच रही थीं जिनको इमर्जेंसी के बारे में किसी तरह का संकोच नहीं होगा और जिनके लिए जैसी वह थीं वैसा ही संजय होगा।

खुफिया विभाग और 'रा' दोनों ही का यह अन्दाजा था कि अगर वह अभी फौरन चुनाव करा लें तो उनको 350 से ज्यादा सीटें मिल जायेंगी। सिर्फ सी० बी० आई० के डायरेक्टर डी० सेन की राय इससे अलग थी, श्रीमती गांधी उन्हें अपने आलोचकों के घरों पर छापे डलवाने के लिए इस्तेमाल करती थीं। सेन ने इस बात पर जोर दिया था कि नजरबन्दों की रिहाई और चुनावों के बीच छः महीने का वक्त

रहना चाहिये ताकि जेल मे रहने की वजह से उनकी जो धूम होगी वह कुछ ठडी पड जाये।

श्रीमती गाधी के अपने सेक्रेटरी धर पूरी तरह चुनावो के पक्ष मे थे क्योंकि इमर्जेंसी से जो नुकसान थे उन्हे दूर करने का यही एक तरीका था। शेर पर सवार हो जाना आसान होता है पर उस पर से उतरना लगभग नामुमकिन होता है। इसकी क्या तरकीब हो सकती है ? धर को यह भी यकीन था कि इमर्जेंसी का असर अब उल्टा पडने लगा है और यह कि आर्थिक समस्याएँ एक बार फिर उभरने लगेंगी।

बीस-सूत्री कार्यक्रम के कुछ अच्छे नतीजे निकले थे। जुलाई 1975 से दिसम्बर 1975 तक सिर्फ 45 लाख दिहाडियो के काम का नुकसान हुआ था जबकि 1974 मे यही नुकसान 4 करोड 3 लाख दिहाडियो का था। पब्लिक सेक्टर मे इमर्जेंसी से पहले 16 लाख 20 हजार दिहाडियो का नुकसान हुआ था, जबकि इमर्जेंसी के दौरान कुल 1 लाख 20 हजार दिहाडियो का नुकसान हुआ। 1975-76 मे मुद्रा स्फीति की रफ्तार सिर्फ 3 3 प्रतिशत थी जबकि 1974 75 मे इसकी रफ्तार 23 4 प्रतिशत थी।

लेकिन जाडो की बारिश न होने की वजह से खेती-बाडी की हालत बहुत गम्भीर थी, जिसका असर पूरे अर्थतन्त्र पर पडता। (इसी वक्त सरकार ने 42 लाख टन अनाज बाहर से मगाने का फैसला किया जिसमे से कुछ तो यूरोप के देशो के साझा बाजार से और अमरीका के 'शान्ति के लिए अन्न' कार्यक्रम के तहत मिला था।) मजदूरो मे बेचैनी बढ रही थी और पैदावार बढाने का पहलेवाला जोश भी अब कुछ ठडा पड रहा था।

खबर मिली थी कि फौजी छावनियो मे, खास तौर पर छोटे अफसरो के बीच, खाने के समय इमर्जेंसी के बारे मे और सशय के सविधान के बाहर के अधिकारो के बारे मे खुलेआम चर्चा होती थी। जवानो के बीच नसबन्दियो के सिलसिले मे की गयी ज्यादतियो की चर्चा होती थी।

भुट्टो के बारे मे बडी तारीफ के साथ कहा जाता था कि उन्होंने पाकिस्तान मे चुनाव कराने का ऐलान कर दिया।[1] और अगर श्रीमती गाधी ने चुनाव कराने का ऐलान न किया तो उनके ऊपर यह कहकर हमला किया जायेगा कि वह जनतान्त्रिक नही हैं।

और फिर अब भी इतना डर बाकी था कि लोग अपना वोट डालने मतदान के द्रो तक जाने से घबरायेंगे। इमर्जेंसी उठायी नही जायेगी, उसमे बस थोडी-सी ढील दी जायेगी। श्रीमती गाधी ने पक्का इरादा कर लिया था कि विपक्ष की पार्टियो के कार्यकर्त्ताओ को सबसे बाद मे छोडा जायेगा।

विपक्ष की पार्टियो मे एकता भी तो अभी नही दिखायी देती थी। यह सच है कि उन्होंने 16-17 दिसम्बर को सबको मिलाकर भारतीय जनता कांग्रेस के नाम से एक ही पार्टी बना लेने का फैसला किया था और अपना एक मिला-जुला निशान भी चुन लिया था—चक्र, हल और चर्खा। लेकिन नेता कौन होगा इसका फैसला होना अभी बाकी था। श्रीमती गाधी ने सोचा था कि इसका फैसला कभी हो ही नही पायेगा।

दरअसल, विपक्ष की पार्टियाँ श्रीमती गाधी के साथ बातचीत करना चाहती थी। वे करुणानिधि के 15 दिसम्बर के इस सुझाव को मान लेने पर तैयार हो गयी थी कि प्रधानमन्त्री के साथ बातचीत शुरू की जाये और देश की राजनीतिक स्थिति को

1 जब भारत सरकार ने चुनाव कराने का एलान किया तो भुट्टो ने कहा था कि भारत की जनता को उन्हें दुआएँ देनी चाहिये।

ए० आई० सी० सी० में जनरल सेक्रेटरी ए० आर० अतुले नन्दिनी सतपथी से इस्तीफा दिलवाने के लिए उड़ीसा भेजे गये थे। उन्होंने वहाँ जाकर कहा, "हमारी सर्वोच्च नेता श्रीमती गांधी को यह फ़ैसला करने का पूरा पूरा जनतान्त्रिक अधिकार है कि कौन उनका वफ़ादार है और कौन नहीं। वफ़ादारी को अलग अलग टुकड़ों में बाँटा नहीं जा सकता।'

और श्रीमती गांधी की इतनी हिम्मत नहीं पड़ी कि जब नन्दिनी सतपथी अपने राज्य की हालत के बारे में बताने के लिए हवाई जहाज से दिल्ली आयीं तो वह उनसे इस्तीफा देने को कहतीं। जैसे ही नन्दिनी सतपथी अपने राज्य की राजधानी में वापिस पहुँचीं और उन्होंने कुछ दिन की छुट्टी ले ली उसी वक्त उन्हें तार मिला जिसमें उनसे इस्तीफा देने को कहा गया था। हालाँकि सदन में नन्दिनी का बहुमत था, उन्हें मजबूरन 16 दिसम्बर को इस्तीफा दे देना पड़ा।

पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री सिद्धार्थशंकर रे ने पहले ही किसी व्यापार-मण्डल के समारोह में संजय को अपनी वफ़ादारी का वचन दिया था और उसे यह भी याद दिलाया था कि वह तो उसके परिवार के मित्र हैं, फिर भी उनकी वफ़ादारी पर शक किया जाता था। वह कांग्रेस के एक गुट को दूसरे से लड़वाकर अब तक बाल-बाल बचते आये थे। जिस दिन से वह राज्य के मुख्यमंत्री बने थे तभी से उनकी ताकत का सारा दारोमदार इसी पर रहा था। श्रीमती गांधी और संजय दोनों ही ने उनका नाम उन लोगों की फेहरिस्त में शामिल कर रखा था जिन्हें हटाया जाना था। इस बात का ढिंढोरा पीटकर कि वह नई दिल्ली की सरकार से भी टक्कर ले सकते हैं उन्होंने पश्चिम बंगाल में अपने पाँव मजबूती से जमा लिये थे—इस खूबी से बंगाली बहुत खुश होते हैं।

सिद्धार्थशंकर रे के ग्रुप ने खुलेआम नेहरू परिवार पर यह इलजाम लगाया कि उसने कभी बंगाल के नेताओं को पनपने का मौका ही नहीं दिया। रे के विरोधी ग्रुप ने सिद्धार्थ बाबू पर यह इलजाम लगाया कि वह बंगाल को भी बंगला देश के रास्ते पर ले जाना चाहते हैं।

सिद्धार्थ बाबू आपस के लोगों में यह कहते थे कि केन्द्रीय सरकार उन्हें निकम्मा साबित करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम दंगे या कोई दूसरे उपद्रव कराने की कोशिश कर सकती है। उनकी दलील यह थी कि हितेन्द्र देसाई का पत्ता काटने के लिए 1969 में अहमदाबाद में हिन्दू मुस्लिम दंगा कराया गया था, कमलापति त्रिपाठी को हटाने के लिए उत्तर प्रदेश में पुलिस की बगावत करायी गयी थी, और अब उनकी बारी थी।

श्रीमती गांधी ने सिद्धार्थशंकर रे को हटाया नहीं, और न ही वह देवराज अर्स को हाथ लगाना चाहती थीं। इस वक्त तक उनका दिमाग किसी दूसरे ही ढर्रे पर काम करने लगा था।

अगर संजय को सहारा देकर खड़ा करना था और किसी दिन प्रधानमंत्री बनने के लिए तैयार करना था तो मुख्यमंत्रियों की वफ़ादारी ही इसके लिए काफ़ी नहीं थी। श्रीमती गांधी उन संसद सदस्यों की बुनियाद पर सोच रही थीं जिनको इमरजेंसी के बारे में किसी तरह का संकोच नहीं होगा और जिनके लिए जैसी वह थीं वैसा ही संजय होगा।

खुफ़िया विभाग और 'रा' दोनों ही का यह अन्दाजा था कि अगर वह अभी फ़ौरन चुनाव करा लें तो उनको 350 से ज्यादा सीटें मिल जायेंगी। सिर्फ़ सी० बी० आई० के डायरेक्टर डी० सेन की राय इससे अलग थी, श्रीमती गांधी उन्हें अपने आलोचकों के घरों पर छापे डलवाने के लिए इस्तेमाल करती थीं। सेन ने इस बात पर जोर दिया था कि नजरबन्दों की रिहाई और चुनावों के बीच छः महीने का वक्त

रहना चाहिये ताकि जेल मे रहने की वजह से उनकी जो धूम होगी वह कुछ ठडी पड जाये।

श्रीमती गाधी के अपने सेक्रेटरी घर पूरी तरह चुनावो के पक्ष मे थे क्योकि इमर्जेंसी से जो नुकसान थे उन्हे दूर करने का यही एक तरीका था। शेर पर सवार हो जाना आसान होता है पर उस पर से उतरना लगभग नामुमकिन होता है। इसकी क्या तरकीब हो सकती है ? धर को यह भी यकीन था कि इमर्जेंसी का असर अब उल्टा पडने लगा है और यह कि आर्थिक समस्याएँ एक बार फिर उभरने लगेंगी।

• बीस-सूत्री कार्यक्रम के कुछ अच्छे नतीजे निकले थे। जुलाई 1975 से दिसम्बर 1975 तक सिर्फ 45 लाख दिहाडियो के काम का नुकसान हुआ था जबकि 1974 मे यही नुकसान 4 करोड 3 लाख दिहाडियो का था। पब्लिक सेक्टर मे इमर्जेंसी से पहले 16 लाख 20 हजार दिहाडियो का नुकसान हुआ था, जबकि इमर्जेंसी के दौरान कुल 1 लाख 20 हजार दिहाडियो का नुकसान हुआ। 1975 76 मे मुद्रा स्फीति की रफ्तार सिर्फ 3 3 प्रतिशत थी जबकि 1974 75 मे इसकी रफ्तार 23 4 प्रतिशत थी।

लेकिन जाडा की बारिश न होने की वजह से खेती-बाडी की हालत बहुत गम्भीर थी, जिसका असर पूरे अर्थतन्त्र पर पडता। (इसी वक्त सरकार ने 42 लाख टन अनाज बाहर से मँगाने का फैसला किया जिसमे से कुछ तो यूरोप के देशो के साझा बाजार से और अमरीका के 'शान्ति के लिए अन्न' कार्यक्रम के तहत मिला था।) मजदूरो मे बेचैनी बढ रही थी और पैदावार बढाने का पहलेवाला जोश भी अब कुछ ठडा पड रहा था।

खबर मिली थी कि फौजी छावनियो मे, खास तौर पर छोटे अफसरो के बीच, खाने के समय इमर्जेंसी के बारे मे और सजय के सविधान के बाहर के अधिकारो के बारे मे खुलेआम चर्चा होती थी। जवानो के बीच नसबन्दियो के सिलसिले मे की गयी ज्यादतियो की चर्चा होती थी।

भुट्टो के बारे मे बडी तारीफ के साथ कहा जाता था कि उन्होने पाकिस्तान मे चुनाव कराने का ऐलान कर दिया।[1] और अगर श्रीमती गाधी ने चुनाव कराने का ऐलान न किया तो उनके ऊपर यह कहकर हमला किया जायेगा कि वह जनतान्त्रिक नही हैं।

और फिर अब भी इतना डर बाकी था कि लोग अपना वोट डालने मतदान केन्द्रो तक जाने से घबरायेंगे। इमर्जेंसी उठायी नही जायेगी, उसमे बस थोडी-सी ढील दी जायेगी। श्रीमती गाधी ने पक्का इरादा कर लिया था कि विपक्ष की पार्टियो के कार्यकर्त्ताओ को सबसे बाद मे छोडा जायेगा।

विपक्ष की पार्टियो में एकता भी तो अभी नही दिखायी देती थी। यह सच है कि उन्होने 16-17 दिसम्बर को सबको मिलाकर भारतीय जनता कांग्रेस के नाम से एक ही पार्टी बना लेने का फैसला किया था और अपना एक मिला-जुला निशान भी चुन लिया था—चक्र, हल और चर्खा। लेकिन नेता कौन होगा इसका फैसला होना अभी बाकी था। श्रीमती गाधी ने सोचा था कि इसका फैसला कभी हो ही नही पायेगा।

दरअसल, विपक्ष की पार्टियाँ श्रीमती गाधी के साथ बातचीत करना चाहती थीं। वे करुणानिधि के 15 दिसम्बर के इस सुझाव को मान लेने पर तयार हो गयी थी कि प्रधानमत्री के साथ बातचीत शुरू की जाये और देश की राजनीतिक स्थिति को

1 जब भारत सरकार ने चुनाव कराने का ऐलान किया तो भुट्टो ने कहा था कि भारत की जनता को उन्हें दुआएँ देनी चाहियें।

सम पर लाने के लिए कोई हल निकाला जाये। विपक्ष की पार्टियो ने एक बयान निकाला था जिसका शीषक था 'यह हमारा विश्वास है', इस बयान मे उन्होने अहिंसा, धम निरपेक्षता और जनतान्त्रिक प्रणाली मे अपनी आस्था पर जोर दिया था।

दूसरी ओर विदेशो मे होनेवाली आलोचना से भी उन्हें बहुत झुंझलाहट होती थी। पश्चिमवाले उन्हे 'गैर कानूनी' शासक समझते थे। इसकी उन्हें काट करनी थी। इसके लिए उन्होने फास को चुना और पश्चिमवालो के साथ एक पश्चिमी देश से 'बात करने' के लिए उन्होने मई मे विदेश यात्रा का बन्दोबस्त किया। उस वक्त तक वह इन लोगो पर यह साबित कर चुकी होगी कि जनता उनके, तथा जो कुछ वह करती हैं उसके, साथ है। सवाल कानूनी या गैर-कानूनी होने का नही था, सवाल यह साबित करने का था कि इस बात पर किसी तरह का सन्देह नही किया जा सकता कि जनता उनकी मुट्ठी मे है।

सजय और बसीलाल दोनो ही की यह राय थी कि कागज पर तो ये सारी दलीलें बहुत अच्छी लगती हैं लेकिन यह व्यावहारिक राजनीति नही थी। वे दोनो चुनाव कराने के सख्त खिलाफ थे। सजय समझता था कि यह 'खब्त' उसकी माँ के दिमाग मे कम्युनिस्टो ने बिठाया है। उसका ऐसा समझना बहुत गलत भी नही था क्योकि वरुआ चुनाव के पक्ष मे थे।

श्रीमती गाधी ने सोचा कि सजय, बसीलाल और दूसरे लोग तो बिना वजह परेशान हो रहे हैं। सविधान मे इस तरह हेर-फेर कर दिये गये थे कि इमर्जेंसी कमो बेश हमेशा की चीज हो गयी थी। कुछ महीने पहले, 2 फरवरी को, ससद ने इमर्जेंसी उठने के बाद भी अखबारो पर हमेशा सेंसरशिप लगाये रखने की मजूरी दे दी थी। कुछ जजो का तबादला हो जाने के बाद से अदालतें भी हकीकत को समझने लगी थी। और फिर गोखले सविधान मे कुछ इस तरह का हेर फेर करने की तैयारी कर रहे थे कि दोनो सदनो के दो तिहाई बहुमत से किसी जज पर महा अभियोग लगाने का प्रस्ताव पास कराने के बजाय सरकार को जजो को बर्खास्त कर देने का अधिकार दे दिया जाये।

सजय के विरोध करने पर श्रीमती गाधी ने एक बार फिर इस बात पर गौर किया। जो मुख्यमत्री उनसे मिलने आते थे उनस भी उन्होने इसके बारे मे बातचीत की लेकिन उन लोगो की यह कहने की हिम्मत नही होती थी कि व चुनाव जीत नही सकते। अगर इन्ही दो बातो मे से एक को चुनना था कि चुनाव अभी हो या एक साल बाद हो तब तो यही बेहतर था कि चुनाव अभी करा लिये जायें। बाद म शायद उन्हें 'लोगो को काबू मे रखने के लिए ज्यादा कोशिश करनी पडे।

वह यह भी जानती थीं कि अण्डरग्राउण्ड सगठन की ताकत को नजरअन्दाज नही किया जा सकता। उनके नेता लगभग रोज ही गुप्त भाषा मे और फर्जी नामों से आपस म टेलीफोन पर बात करते थे। जब शहरो के आसानी से पकड मे आ जानेवाले प्रेसो को जब्त कर लिया गया तो चोरी छिपे साइक्लोस्टाइल अखबार निकाले जाने लगे।

उन्होने खुफिया विभागवालो से एक बार फिर इस बात की थाह लेने के लिए कहा कि जनता के तेवर क्या हैं। पहले की तरह वे इस बार भी उसी नतीजे पर पहुँचे कि वह आराम स काफी बडे बहुमत स जीतेंगी। इस बार इन लोगो ने उन्हें 320 सीटें दी थी पहली बार से 30 कम। सजय अब भी चुनाव कराने के खिलाफ था, लेकिन श्रीमती गाधी चुनाव कराने की ठान चुकी थी।

उन्होने कई ससद-सदस्यो से भी सलाह मशविरा किया, लेकिन उनम से कोई

भी अपने इलाके के मतदाताओं के सामने जाने को तैयार नहीं था। इमर्जेंसी ने उनकी सारी साख मिट्टी में मिला दी थी। श्रीमती गांधी पर सबसे ज्यादा असर नई दिल्ली की इंस्टीच्यूट ऑफ पालिसी रिसर्च (नीति शोध संस्थान) की ओर से करायी गयी एक छानबीन की रिपोर्ट का पड़ा, जिसकी ओर धर ने उनका ध्यान दिलाया था। इस रिपोर्ट में कहा गया था कि इस समय श्रीमती गांधी के पक्ष में जनमत अपने शिखर पर है। ऐसा लगता था कि इससे अच्छा मौका उनके हाथ नहीं लगनेवाला है।

वह कितनी गलत साबित हुईं। अब तक उन्होंने जो भी कदम उठाया था वह बिलकुल ठीक वक्त पर उठाया था, लेकिन अब उनका हर हिसाब गड़बड़ होने लगा था क्योंकि जनता के साथ उनका सम्पर्क नहीं रह गया था। उनको जितनी भी जानकारी थी वह सारी की सारी खुफिया विभागवालों की उन रिपोर्टों से मिली थी जो उन्हें खुश रखने के लिए तैयार की गयी थीं। उनके चारों ओर जो खुशामदी और चापलूस जमा थे वे उनसे हरदम यही कहते रहते थे कि इमर्जेंसी ने तो कमाल कर दिया है और जनता अब से पहले कभी इतनी सुखी नहीं थी।

सबसे पहले उन्होंने खुफिया विभागवालों को ही बताया कि वह मार्च के आखिर में या अप्रैल के शुरू में चुनाव करायेंगी और वे इसके लिए 'तैयार' रहें। वह समझती थीं कि वह कोई खतरा नहीं मोल ले रही हैं क्योंकि वह जानती थीं कि जीत उन्हीं की होगी।

श्रीमती गांधी की मजबूरियाँ कुछ भी रही हों, लेकिन चुनाव कराने का फैसला करके उन्होंने यह बात मान ली थी कि कोई भी शासन प्रणाली जनता की मर्जी और उसकी मंजूरी के बिना नहीं चल सकती। एक तरह से वह जनता के धीरज और उसकी मुसीबतें झेलने की क्षमता का लोहा मान रही थीं। क्योंकि आखिरकार जीत तो उसी की हुई—जीत उन लोगों की हुई जो अनपढ़ थे, गरीब थे और पिछड़े हुए थे।

फैसला

मोरारजी अपनी आदत के अनुसार 18 जनवरी 1977 को भी बहुत सवेरे उठे थे। सुबह उठकर वह टहलने गये। पिछले कई महीनों से यही उनका दस्तूर था। वह दिन भी दूसरे दिनों जैसा ही लग रहा था।

दिनचर्या नीरस जरूर थी, पर उससे तो अच्छी ही थी जैसी कि सोना में थी, जहां वह शुरू शुरू में नजरबन्द किये गये थे। उस वक्त तो उन्हें एक छोटी सी अंधेरी कोठरी में बन्द कर दिया गया था, जिसकी खिड़कियाँ हमेशा बन्द रहती थीं। बहुत शोर मचाने पर उन्हें रात होने के बाद बाहर अहाते में टहलने की इजाजत दे दी गयी थी। अहाते में सांप बिच्छू बहुत थे इसलिए उन्होंने व्यायाम के लिए अपनी चारपाई के चारों ओर टहलने का फैसला किया। उन्हें सचमुच अंधेरे में रखा गया था और उन्हें इसकी कोई खबर नहीं थी कि बाहर दुनिया में क्या हो रहा है। उन्हें पढ़ने को अखबार तक नहीं दिया जाता था।

जब उन्हें वहाँ से हटाकर सोना के पास ही एक नहर की कोठी में रख दिया गया था तो उन्हें अखबार मँगाने की और बाद में मुलाकातों की भी इजाजत दे दी गयी थी। उस दिन, 18 जनवरी को उन्होंने इण्डियन एक्सप्रेस में एक खबर पढ़ी थी कि लोकसभा के चुनाव मार्च के अन्त तक होंगे। उन्होंने इस खबर पर विश्वास नहीं किया, उन्हें इसके बारे में शक था।

जब उनके कमरे में जहां ठीक से बैठने के लिए भी कुछ न था, पुलिस के कुछ पुराने अफसर आये तो मोरारजी ने उनमें कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखायी। इन लोगों ने उन्हें बताया कि उन्हें बिना किसी शर्त के रिहा किया जा रहा है और वे उन्हें डूप्ले रोड पर उनके बँगले ले जाने के लिए आये हैं। वे लोग मोटर भी साथ लाये थे।

तब तक विपक्ष के नेता और ज्यादातर दूसरे लोग छोड़े जा चुके थे। नजरबन्दों की संख्या, जो किसी समय 1,00,000 तक पहुँच गयी थी, अब घटकर लगभग 10,000 रह गयी थी।

घर पहुँचकर मोरारजी ने सुना कि श्रीमती गांधी ने लोकसभा बर्खास्त करके नये चुनाव कराने का फैसला किया है। उन्हें कोई ताज्जुब नहीं हुआ। उन्होंने मुझे बाद में बताया 'मैं हमेशा से जानता था कि वह मुझे उसी वक्त रिहा करेंगी जब वह चुनाव कराने का फैसला करेंगी।"

लेकिन ऐसे लोग भी थे जिन्हें ताज्जुब हुआ। इनमें कैबिनेट के कई मंत्री भी थे। उनको इस कदम का पता उस दिन तीसरे पहर तब चला जब उन्हें जल्दी-जल्दी बुलाकर इसकी सूचना दी गयी। श्रीमती गांधी ने उनसे कहा कि जनतान्त्रिक प्रणाली में सरकार को थोड़े थोड़े समय के बाद मतदाताओं का सामना करना ही पड़ता है। उन्होंने यह माना कि वह एक जोखिम उठाने जा रही हैं।

किसी भी मंत्री ने कुछ नहीं कहा। बंसीलाल को पहले से इसकी खबर थी और वह परेशान थे, जगजीवनराम और चह्वाण बिलकुल मौन साधे रहे। जिस तरह इमर्जेंसी लागू करने के बारे में उनसे सलाह मशविरा नहीं किया गया था, उसी तरह चुनावों के बारे में भी उनसे कोई सलाह नहीं ली गयी थी। लेकिन दूसरे मंत्रियों की तरह उनको भी कुछ कुछ शक था कि चुनाव होने वाले हैं, खासतौर पर उसके बाद से जब संजय ने दो ही दिन पहले बम्बई की एक पब्लिक मीटिंग में कहा था कि चुनाव जल्दी ही होनेवाले हैं। इतने दिनों में वे यह मानने लगे थे कि संजय को हर बात का पक्का पता रहता है।

जो बात इन लोगों को नहीं मालूम थी वह यह थी कि उनमें से ज्यादातर का पत्ता साफ कर दिया गया था। श्रीमती गांधी के घर में सब लोग यही कहते थे कि चुनाव के बाद जगजीवनराम को मंत्री नहीं बनाया जाना चाहिए। संसद में किसे भेजा जाना चाहिए और किसे नहीं इसके बारे में संजय के अपने विचार थे। उस वक्त तक उसने उन लोगों की फेहरिस्त भी तैयार कर ली थी जिन्हें कांग्रेस का टिकट दिया जाने वाला था—और संसद के ज्यादातर मौजूदा सदस्य उसमें नहीं थे। इन लोगों के लिए बगावत करके अपने बल पर खड़ा होना भी बेकार था।

हालांकि कांग्रेस के हाई कमांड ने रस्म पूरी करने के लिए अपनी प्रदेश कमेटियों को आदेश दिया कि वे अपने अपने उम्मीदवारों की फेहरिस्तें तैयार कर लें, लेकिन ज्यादातर लोग जानते थे कि यह सब महज़ दिखावे के लिए है। संजय ने ज्यादातर नाम पक्के कर रखे थे और श्रीमती गांधी ने हमेशा की तरह उसके फैसले को मंजूरी भी दे दी थी।

विपक्ष की पार्टियों को चुनाव होने की तो खुशी थी लेकिन वे जानती थीं कि उनके सामने कुछ भयानक कठिनाइयाँ भी हैं। उनके सारे नेता अभी कुछ ही दिन पहले तक जेल में थे और जनता से उनका कोई सम्पर्क नहीं रहा था। उनके बहुत से कार्यकर्त्ता अभी तक रिहा नहीं किये गये थे। उनके पास समय भी बहुत कम था।

लेकिन वे अब और अधिक समय नहीं खोना चाहते थे। जिस दिन मोरारजी देसाई रिहा हुए उसी दिन उनके घर पर संगठन कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोकदल और सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं की मीटिंग हुई। उस दिन तो बस थाह लेने के लिए मोटी मोटी बातों पर बातचीत हुई। अगले दिन ये लोग फिर मिले। इस समय तक श्रीमती गांधी रेडियो पर राष्ट्र के नाम अपने संदेश में चुनावों के बारे में और 'जनता की ताकत का एक बार फिर सबूत देने' के अवसर के बारे में बता चुकी थीं।

विपक्ष के नेताओं के सामने जयप्रकाश का एक पत्र था, जिसे सोशलिस्ट नेता एस० एम० जोशी पटना से लाये थे। जयप्रकाश ने कहा था कि अगर उन सबने मिलकर एक ही पार्टी न बना ली तो वह चुनाव से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे। यही बात वह टेलीफोन पर पहले कह चुके थे।

विपक्ष की पार्टियों के सामने समस्या एक में मिल जाने की नहीं थी। उनके नेता जेल में इस समस्या पर एक बार नहीं कई बार बहस कर चुके थे और इसी नतीजे पर पहुँचे थे कि कांग्रेस की विशाल ताकत का मुकाबला करने के लिए एक पार्टी बनाने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। अलग अलग और साथ मिलकर विपक्ष के नेताओं में जो बातचीत हुई उसमें भी वे इसी नतीजे पर पहुँचे थे। सच तो यह है कि सभी पार्टियों को एक में मिला देने की बातचीत से चरणसिंह इतनी बुरी तरह निराश थे कि उन्होंने बहुत पहले 14 जुलाई को ही संगठन कांग्रेस के अध्यक्ष अशोक मेहता को लिख दिया था कि भारतीय लोकदल "अब तंग आ चुका है, उसकी

नीयत पर भी शुबहा किया जा रहा है। इसलिए उसने इस सिलसिले मे किसी कत्तव्य के बोझ को अपने मन पर रखे बिना अकेले ही चुनाव लडने का फसला किया है—अलावा इस एक कत्तव्य के कि जब कभी बाकी तीन पार्टियां कमोबेश राष्ट्रपिता के बताये हुए कायक्रम की रूपरखा के आधार पर एक सगठन बनाने के लिए अपने आपको भग कर देंगी या भग करने का फ़ैसला कर लेंगी, भारतीय लोकदल फौरन उनके साथ आ जायेगा।"

सारी पार्टियो के मिलकर एक हो जाने मे बाधा दरअसल इस सवाल के कारण पड रही थी कि नेता कौन हो ? 16 दिसम्बर को, जब मोरारजी जेल मे थे, विपक्ष के नेताओ की मीटिंग मे ऐसा लगता था कि नेता चरणसिह ही होगे। मोरारजी जहाँ नजरबन्द थ वहाँ से उन्होंने लिखा था कि उन्हे सब पार्टियो के मिलकर एक हो जाने मे दिलचस्पी है, इस बात मे नही कि नेता कौन होगा।

लेकिन अब, चुनाव का ऐलान हो जाने के बाद विपक्ष के नेताओ की मीटिंग मे जिस तरह मोरारजी ने सारी बहस को सँभाल रखा था उससे तो अब शक ही नहीं रह गया था कि नेता कौन होगा। सभी पार्टियां उन्हें चेयरमैन और चरणसिंह को डिप्टी चेयरमैन बनाने पर राजी हो गयी।

अपने आपको ज़िदा रखने की सहज भावना ने चारो पार्टियो को मजबूर कर दिया था कि वे चुनाव लडने के लिए एक ही पार्टी, एक सयुक्त मोर्चा बना लें—जनता पार्टी जिसका एक ही चुनाव का निशान हो और एक ही झडा हो। सभी पार्टिया की अलग अलग मीटिंगें किये बिना यह मुमकिन नही था कि उनकी अलग अलग हैसियत को खत्म कर दिया जाये, लेकिन इसम वक्त लगता और वक्त उनके पास था नही। ये पार्टियाँ जानती थी कि अगर उनकी बुरी तरह हार हुई तो श्रीमती गाधी और उनका बेटा यह समझ लेंगे कि उन्हे डिक्टेटरशिप कायम करने के लिए जनता की तरफ से छूट मिल गयी है। लेकिन अगर उनके काफी लोग जीत जाते हैं और ससद में उनका एक खासा बडा ग्रुप बन जाता है तो फिर श्रीमती गाधी यह दावा नही कर सकेंगी कि उन्ह जनता का पक्का समथन मिल गया है।

एक साथ मिलकर चुनाव लडने से इस बात का तो यकीन हो जायेगा कि विपक्ष के वोट कई टुकडा मे बटने नही पायेंगे। अब तक यही होता आया था कि वोट बँट जाने की वजह से ही काग्रेस जीत जाती थी, हालांकि उसे कभी भी आधे से ज्यादा वोट नही मिले थे। 1971 तक मे जब उसने बाकी सबका सफाया कर दिया था, उस वक्त भी उसे सिफ 46 2 प्रतिशत वोट मिले थे।

जयप्रकाश ने पार्टियो के एक मे मिल जाने को अपना आशीर्वाद दिया और जनता से कहा कि वह दो चीजा मे से किसी एक को चुन ले जनतन्त्र या डिक्टेटरशिप, आजादी या गुलामी। उन्होंने कहा कि श्रीमती गाधी की जीत का मतलब होगा डिक्टेटरशिप की जीत। और सयुक्त मोर्चे ने भी आर्थिक समस्याओ के बजाय इसी बात पर जोर दिया।

श्रीमती गाधी ने जनता से कहा कि चुनाव कराने के मेरे फसले ही से यह बात गलत साबित हो गयी है कि मैं डिक्टेटर हूँ विपक्ष की जिन पार्टियो ने अब मिलकर दक़ियानूसी ताक़तों की एक पार्टी बनायी है वही चुनावो के टलने के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार हैं—उन्होंने देश म जो ऊधम मचा रखा था उसी की वजह से मजबूर होकर उन्ह चुनाव टलवाना पडा था।

विपक्ष की पार्टियो ने इस बात पर उनसे कोई झगडा नहीं किया। 23 जनवरी को उन्होने बाकायदा जनता पार्टी के बन जाने का ऐलान कर दिया। फैसले लेनेवाली

सबसे ऊँची सस्था के रूप मे 27 सदस्यो की एक राष्ट्रीय समिति बनायी गयी। इन अलग अलग पार्टियो को[1] जिनके हितो म और जिनकी विचारधाराओ मे टकराव था, एक साथ लाने के लिए जयप्रकाश को बडी मेहनत करनी पडी। अलग अलग नेताओ को यह समझाना पडा कि राष्ट्र के हित म उन्ह अपने मतभेदो को भुला देना चाहिए।

विपक्ष की पार्टियो को ऐसे लोगो की जरूरत थी जो यह सदेश जनता तक पहुँचा सकें। लेकिन उनके सबस सक्रिय कायकर्त्ता अभी तक जेल म थे। उनके नेता नजरबन्दो को जल्द रिहा करान की माँग पर जोर देने के लिए पहले ओम मेहता से और उसके बाद श्रीमती गाधी स मिले। दोनो ही ने वायदा किया कि नजरबन्दो को रिहा कर दिया जायगा। लेकिन राज्यो को जो आदश भेजे गये थे उनमे यह बात साफ कर दी गयी थी कि इस काम मे जल्दी करने की कोई जरूरत नही है—यह आम रिहाई नही है और हर आदमी के मामले पर अलग अलग विचार किया जाना चाहिए, फैसले पर अमल करने स पहले उसे मजूरी के लिए केन्द्र के पास भेजा जाना चाहिए।

सरकार चाहती यह थी कि जहाँ तक मुमकिन हो विपक्ष के ज्यादा से-ज्यादा कायकर्ताओ को ज्यादा से ज्यादा दिन तक जेल मे बन्द रखा जाये और यह भी न मालूम हो कि चुनाव जीतने क लिए किसी बेजा हथकडे का सहारा लिया जा रहा है।

इमर्जेंसी और अखबारो की सेंसरशिप म ढील देने का काम भी बडे अनमनेपन मे किया जा रहा था। सरकार इस बात को साफ कर देना चाहती थी कि तलवार नीची भले ही कर ली गयी हो पर अभी म्यान मे नही रखी गयी थी, वह चाहती थी कि लोग उसे देखें और डरते रह। और कुछ दिन तक तो यह हाल रहा भी कि लोग तलवार को देखते भी थे और डरते भी थे। अभी तक चारो तरफ इतना आतक छाया हुआ था कि जनसघ न तो यहाँ तक कह दिया कि अगर इमर्जेंसी फौरन खत्म न की गयी, नजरबन्दो को रिहा न किया गया और अखबारो पर से सेंसरशिप पूरी तरह उठा न ली गयी तो उसे मजबूरन चुनाव का बायकाट करना पडेगा।

श्रीमती गाधी के घर पर इमर्जेंसी और अखबारो पर सेंसरशिप के सवाल पर एक अन्तहीन बहस छिडी हुई थी। इस पर तो सभी की राय एक थी कि उन्हे बिलकुल हटा लेने का तो कोई सवाल ही पदा नही होता। चुनाव के दौरान इनकी वजह से बहुत स लोग वोट दने नही जायेंगे जो काग्रेस के लिए अच्छा ही होगा, और अखबार खुलकर आलोचना भी नही कर सकेंगे। और चुनाव हो जान के बाद, जिसमे काग्रेस का जीतना यकीनी है इमर्जेंसी और सेंसरशिप को फिर से लागू किया जा सकता है। इस वक्त उन्हे हटाने का मतलब यह होगा कि दानो सदनो म बहस करने, वोट लेने और राष्ट्रपति की मजूरी लेने का पूरा चक्कर फिर स चलाना पडेगा, तब कही जाकर इन्हे दुबारा लागू किया जा सकेगा।

अखबारो पर सेंसरशिप मे ढील का मतलब यह नही था कि अखबारो को जो भी उनका जी चाहे छापने की छूट मिल गयी थी। उनके सिर पर आपत्तिजनक सामग्री छापने से सम्बन्धित आर्डिनेंस की तलवार लटकती रहती थी। शुक्लाजी ने सेंसरशिप का जो जाल फैला रखा था उसे अभी समेटा नही था। उसके अफसरो से कहा गया कि वे सारे देश का दौरा करके सम्पादको से जाकर मिलें और उन्हे चेतावनी दे दें कि

1 अलग अलग इलाकाई पार्टियो को मिलाकर चुनाव लडने क लिए एक ही पार्टी बनाने का विचार सबसे पहले प्रसिद्ध कार्टूनिस्ट राजेन्द्र पुरी न पेश किया था शुरू मे वही पार्टी के एक जनरल सक्रेटरी बनाये गये थे।

शराफ़त से रहे। ज़्यादातर अख़बार शराफ़त के साथ काम करते रहें।

पटना से दिल्ली आने पर जयप्रकाश नारायण ने मोरारजी के घर पर जो पहली प्रेस कान्फ़्रेंस की थी उसमें उन्होंने अपने भाषण में कहा था कि उन्हें ऐसा लगता है कि जीतेगी तो कांग्रेस ही, इसलिए नहीं कि वह बहुत लोकप्रिय है बल्कि इसलिए कि विपक्ष की पार्टियों को अपने कार्यकर्त्ताओं को फिर से संगठित करने के लिए, पैसा जमा करने के लिए और जनता को यह बताने के लिए कि इस चुनाव में क्या क्या दांव पर लगा हुआ है, बहुत कम समय दिया गया था। इसमें तो शक नहीं कि देश में कांग्रेस की जगह ले सकनेवाली एक दूसरी जानदार पार्टी के बारे में जयप्रकाश का सपना तो ऐसा लगता था कि पूरा हो गया है। लेकिन उन्हें चुनाव में उसकी कामयाबी का इतना भरोसा नहीं था।

जनता पार्टी ने पंजाब में अकालियों की टोह लेने की कोशिश की और देखा कि वे उसके साथ मिलकर चलने को तैयार हैं। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने कहा कि वह नयी पार्टी में शामिल तो नहीं होगी लेकिन उसके साथ चुनाव लड़ने का समझौता ज़रूर कर लेगी क्योंकि नागरिक स्वतन्त्रताओं के बिना कोई आर्थिक कार्यक्रम चलाना मुमकिन नहीं है।

कांग्रेस के लोगों के साथ, जो किसी ज़माने में उनके साथी थे, मार्क्सवादियों के साथ और दूसरे लोगों के साथ अपनी बातचीत के दौरान चन्द्रशेखर ने यही रुख अपनाया था। एक पत्र में उन्होंने लिखा, "हमारे सामने चुनने के लिए जो रास्ते हैं वे बहुत सीमित हैं। या तो हम उसी (कांग्रेस की) भेड़चाल में शामिल हो जायें और छोटी मोटी निजी रिआयतें हासिल करके अपनी भुलावों की दुनिया में मगन रहें और समाज में जो कुछ हो रहा है उसे हाथ पर हाथ धरे देखते रहें या उन ताक़तों के साथ कंधे से-कंधा मिलाकर लड़ने का रास्ता अपनायें, जिन्होंने बुनियादी आज़ादी और नागरिक अधिकारों को अपना अटल सिद्धान्त बना लिया है।"

तमिलनाडु में डी० एम० के० ने संगठन कांग्रेस के साथ ताल मेल रखने पर अपनी रज़ामन्दी ज़ाहिर की। लेकिन चूंकि चुनाव कमीशन ने जनता पार्टी को चुनाव का नया निशान देने से इन्कार कर दिया था इसलिए सभी पार्टियां अपने अपने पुराने निशान रखकर चुनाव लड़ना चाहती थीं भारतीय लोकदल का निशान—एक पहिये के अन्दर कंधे पर हल रखे हुए आदमी वाला निशान—रखकर नहीं।

कांग्रेस भी साथियों की खोज में थी। उसे दो साथी मिले, एक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और दूसरा तमिलनाडु में अन्ना डी० एम० के०। संजय भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के साथ कोई सरोकार नहीं रखना चाहता था जिसके ख़िलाफ़ उसने कुछ ही दिन पहले 'समाचार' के ज़रिये, जिसके कर्त्ता धर्त्ता यूनुस थे अख़बारों में एक ज़बरदस्त मुहिम चलायी थी। लेकिन श्रीमती गांधी ने उसे यक़ीन दिला दिया कि यह समझौता कांग्रेस की शर्तों पर होगा।

हालांकि कांग्रेस को किसी की मदद की दरअसल ज़रूरत नहीं थी क्योंकि उसे अपनी जीत का पूरा यक़ीन था, फिर भी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्त्ताओं से कुछ तो मदद मिल ही सकती थी। बीस महीने के दौरान लोगों के दिलों में जो दहशत बिठा दी गयी थी वह दो तीन महीने में तो दूर नहीं की जा सकती थी। वे उसी को वोट देंगे जिसे वोट देने के लिए कहा जायगा, क्योंकि जो लोग उस पार्टी के ख़िलाफ़ सिर उठाने की कोशिश करेंगे जिसके हाथ में सरकार की पूरी मशीन थी, उनको जल्द ही इसका मज़ा चखा दिया जायगा।

लेकिन जल्द ही इस तरह की ख़बरें आने लगीं जिनसे कांग्रेस को परेशानी

होने लगी। लोगों का डर दूर होता जा रहा था, वे इमर्जेंसी के खिलाफ बातें करने लगे थे और उन्हें इस बात का भी डर नहीं था कि उन्हें ताक लिया जायेगा। महात्मा गांधी के बलिदान दिवस 30 जनवरी को जनता पार्टी ने जब अपना चुनाव का प्रचार शुरू किया तो उसका लोगों ने जिस उत्साह से स्वागत किया उससे यह साफ पता चलता था कि हवा कांग्रेस के खिलाफ है। दिल्ली, पटना, जयपुर, कानपुर और कई दूसरी जगहों पर इतनी बड़ी-बड़ी मीटिंगें हुईं कि जनता पार्टी के नेताओं को खुद इतनी उम्मीद नहीं थी। आम जनता के इस उत्साह पर अधिकारियों को भी इतना ही ताज्जुब हुआ।

दिल्ली में जो मीटिंग हुई उसमें 1,00,000 से ज्यादा लोग मौजूद थे जबकि सरकारी अफसरों का अन्दाजा था कि 10,000 या हद से हद 20,000 से ज्यादा लोग नहीं आयेंगे। इस मीटिंग में मोरारजी ने भाषण दिया। यह मीटिंग उसी रामलीला मैदान में हुई थी जहाँ 25 जून 1975 को नेताओं की गिरफ्तारी और इमर्जेंसी के ऐलान से कुछ ही घंटे पहले, जयप्रकाश ने एक और बहुत बड़ी मीटिंग में भाषण दिया था। वह गर्मियों के दिनों की बात थी आज जनवरी की ठिठुरती हुई और भीगी हुई शाम को लोग बिलकुल चुपचाप बैठे जनता पार्टी के नेताओं के भाषण सुन रहे थे और बाद में कितने ही लोग जनता पार्टी के चुनाव फण्ड में पैसा देने के लिए लाइन बाँध कर बड़ी देर तक खड़े रहे।

पटना में जयप्रकाश ने एक बहुत बड़ी भीड़ को शपथ दिलायी कि वे नागरिकों के बुनियादी अधिकारों और उनकी शहरी स्वतन्त्रताओं की रक्षा करने के लिए किसी भी कुर्बानी को बहुत बड़ा नहीं समझेंगे। दिल्ली में जनवाली मीटिंग के बाद वह पहली बार किसी पब्लिक मीटिंग में भाषण दे रहे थे। यह शपथ लेने के लिए जब हजारों लोगों ने अपने हाथ उठा दिये तो जयप्रकाश की आँखों में खुशी के आँसू छलक आये।

चरणसिंह ने कानपुर में और चन्द्रशेखर ने जयपुर में जनता पार्टी की चुनाव की मुहिम की शुरुआत की। बेहद बड़ी बड़ी भीड़ें जमा हुईं। अगले दिन सुबह जब श्रीमती गांधी के पास खुफिया विभागवालों ने इन मीटिंगों की रिपोर्टें भेजीं तो उन्हें पढ़कर वह खुश नहीं हुईं। वह बहुत परेशान हो उठीं हालांकि इन रिपोर्टों में इतनी बड़ी-बड़ी भीड़ें जमा होने का कोई खास महत्त्व नहीं था। उनका कहना था कि इमर्जेंसी के भयानक दौर के बाद, जब सिर्फ उन बड़ी मीटिंगों की इजाजत दी जाती थी जो संजय गांधी की जय जयकार करने के लिए की जायें यह स्वाभाविक था कि लोग सैर-तफरीह के इन मौकों का फायदा उठायें। श्रीमती गांधी ने सुझाव दिया कि जवाबी मीटिंगें की जायें।

उन्होंने यह भी सोचा कि उनकी पार्टी में जो 'बूढ़े खूसट' लोग थे उनका असर अपने इलाकों में कम होता जा रहा है। वक्त आ गया है कि उनसे छुटकारा पा लिया जाय, क्योंकि संसद के जितने सदस्यों को वह जानती थीं उनमें से ज्यादातर उनके साथ वफादारी से ज्यादा डर की वजह से थे। इस तरह संजय को भी राजनीतिक के मैदान में अपने पाँव जमाने में मदद मिलेगी क्योंकि तब उसे अपने भरोसे के लोगों का सहारा रहेगा। युवक कांग्रेस ने खुलेआम कहा कि उसे उम्मीद है कि उसके 150 से 200 तक मेम्बरों को चुनाव लड़ने के लिए टिकट दिये जायेंगे। अम्बिका सोनी ने कहा कि युवक कांग्रेस ही असली कांग्रेस है।

श्रीमती गांधी ने यह इशारा दिया कि उन्हें सारे उम्मीदवारों को चुनने की खुली छूट होनी चाहिए। एक एक करके सभी प्रदेश कांग्रेस कमेटियों ने और उनके

संसदीय बोर्डों ने एकमत होकर प्रस्ताव स्वीकृत कर दिये और प्रधानमंत्री को पूरा अधिकार दे दिया कि उनकी तरफ से वही उम्मीदवार चुन लें।

संजय ने फेहरिस्तें तैयार करना शुरू किया। जितने लोग उसकी चौखट पर या उन लोगों की चौखट पर आने लगे जिनकी उस तक पहुँच थी उतने प्रधानमंत्री की चौखट पर भी नहीं जाते थे। वह हर उम्मीदवार के बारे में यह पता लगाने के लिए कि अपने इलाके में उसका कितना असर है खुफिया विभागवालों से सलाह मशविरा करने लगा। इस तरह इन लोगों पर अपना शिकंजा कसे रखने के लिए उसे बहुत-सा मसाला भी मिल गया। संसद की 542 सीटों में से हर एक के लिए औसतन दो-दो सौ उम्मीदवार थे।

संजय ने बंसीलाल की तैयार की हुई हरियाणा के उम्मीदवारों की फेहरिस्त की छानबीन करके उसे अपनी मंजूरी दे दी। महाराष्ट्र के उम्मीदवारों के नामों का भी ऐलान कर दिया गया। ऐसा लगता था कि सब-कुछ संजय की योजना के अनुसार ठीक-ठाक चल रहा है।

अचानक सारा बना बनाया खेल बिगड़ गया। जगजीवनराम ने 2 फरवरी को कांग्रेस से और सरकार से इस्तीफा दे दिया। कांग्रेस में कोई भी इसके लिए तैयार नहीं था।

तीन दिन पहले खुफिया विभागवालों ने ओम मेहता को इस अफवाह की खबर दी थी कि जगजीवनराम बग़ावत करने के मंसूबे बना रहे हैं। लेकिन इस पर किसी ने गम्भीरता से विचार नहीं किया। अभी एक ही दिन पहले तो जगजीवनराम प्रधानमंत्री से मिले थे और उस वक्त उन्होंने इस बात का कोई ज़िक्र नहीं किया था। उन्होंने श्रीमती गांधी को बस इतना बताया था कि वह इमर्जेंसी लागू रखने के खिलाफ हैं। बाद में उन्होंने अपने दोस्तों को बताया कि अगर उन्होंने पार्टी छोड़ने के बारे में उनसे कुछ कहा होता तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता। जिस दिन जगजीवनराम ने इस्तीफा दिया था, उसी दिन अपनी कोठी के लम्बे चौड़े लॉन में उन्होंने एक बहुत बड़ी प्रेस कान्फ्रेंस में कहा कि वह चाहते थे कि सभी कांग्रेसी उनके साथ मिलकर इमर्जेंसी को और तानाशाही और निरंकुशता की उन प्रवृत्तियों को खत्म करने के लिए उनका साथ दें 'जो इधर-उधर कुछ अरसे से धीरे धीरे देश की राजनीति में पैदा हो गयी हैं।' उन्होंने कहा कि कांग्रेस संगठन के अन्दर सभी स्तरों पर जनतान्त्रिक ढंग से काम करने के तरीके में न सिर्फ कतर ब्योंत कर दी गयी थी बल्कि उसे लगभग बिलकुल खत्म कर दिया गया था। 'कांग्रेस के संगठन वाले और संसदीय दोनों ही हिस्सों के अन्दर अनुशासनहीनता को न सिर्फ बर्दाश्त किया गया है बल्कि उसे ऊपर से उकसाया गया है और बढ़ावा दिया गया है।"

जगजीवनराम के एक तरफ हेमवती नन्दन बहुगुणा बैठे थे जिन्हें उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री के पद से हटा दिया गया था और दूसरी तरफ नन्दिनी सत्पथी बैठी थीं, जिन्हें उड़ीसा के मुख्यमंत्री के पद से हटने पर मजबूर कर दिया गया था। इन दोनों ने भी कांग्रेस छोड़ देने का ऐलान किया। भूतपूर्व मंत्री के० आर० गणेश ने भी ऐसा ही ऐलान किया। इन सभी ने कहा 'हम नई कांग्रेस नहीं हैं। हम अब भी वही पुरानी कांग्रेस पार्टी हैं।' दिसम्बर 1969 में जब श्रीमती गांधी और उनके साथियों ने अपनी अलग कांग्रेस पार्टी बनायी थी उस वक्त उन्होंने भी लगभग यही शब्द इस्तेमाल किए थे।

जब मैंने जगजीवनराम से पूछा कि उन्होंने इस्तीफा क्यों दिया था तो उन्होंने जवाब दिया कि यह बहुत सी बातों का नतीजा था जो पिछले कई महीनों से होता

होती रही थी, उन सबका मिलकर यह नतीजा' हुआ था। उन्होंने यह भी कहा, "मैं बहुत तनाव का शिकार था।" बहुत दिन से श्रीमती गांधी और उनका बेटा हर वह काम करते आये थे जो उन्हें नापसन्द था और वह उनका साथ नहीं देते रह सकते थे।

शायद यह सच हो लेकिन चन्द्रशेखर और बहुगुणा ने उन्हें यह कदम उठाने पर राजी करने के लिए कई दिन खर्च किये थे। ऐसा लगता है कि दिल्ली में चुनाव के सिलसिले में जनता पार्टी की जो पहली मीटिंग हुई थी उससे उनकी यह राय पक्की हो गयी थी कि कई राज्यों में जनता कांग्रेस का तख्ता उलट देगी।

अखबारों ने (लेकिन 'वफादार' अखबारों ने नहीं) इस खबर को उछालने के लिए सप्लीमेंट निकाले, और कांग्रेसियों ने जगजीवनराम के खिलाफ और उन लोगों के खिलाफ जो उनके साथ कांग्रेस छोड़कर चले गये थे, खूब कीचड़ उछाली।

कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने सर्वसम्मति से जगजीवनराम के कांग्रेस छोड़ देने की निन्दा करते हुए प्रस्ताव पास किया। बरुआ ने इसे 'एक आदमी' की गद्दारी कहा। श्रीमती गांधी ने कहा कि बड़ी अजीब बात है कि वह इतने महीनों तक चुप क्यों रहे। खबरें देनेवाले सरकारी माध्यमों ने, जिनमें 'समाचार' एजेंसी भी शामिल थी, उनके इस्तीफे को दल बदलने की हरकत कहा।

कांग्रेसी नेताओं ने यह जताने की कोशिश की जैसे कुछ हुआ ही न हो। श्रीमती गांधी बहुत परेशान थीं। बरसों से उनका यह तरीका रहा था कि अचानक अपने साथियों के सामने कोई फैसला लाकर रख देती थीं, इस बार जगजीवनराम ने उनको ऐसी चोट पहुँचायी थी कि वह भी उमर भर याद रखतीं। चुनाव का ऐलान करते वक्त उन्हें यह तो मालूम था कि गैर-कम्युनिस्ट पार्टियाँ आपस में गठजोड़ बना सकती हैं, लेकिन जगजीवनराम का इस तरह साथ छोड़कर चले जाना उनके लिए बहुत बड़ा आघात था। उनकी पार्टी कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी (सी० एफ० डी०) श्रीमती गांधी की पार्टी में से सभी असन्तुष्ट लोगों को खींचकर ले जा सकती थी और श्रीमती गांधी जानती थीं कि उनकी अपनी पार्टी में इस तरह के बहुत-से लोग थे।

उन्हें इस तरह की खबरें मिली थीं कि उनकी पार्टी के बहुत-से लोग इमर्जेंसी के नाम पर जो कुछ हो रहा था और उनके बेटे और उनकी युवक कांग्रेस की धांधली से बहुत नाखुश थे। डर की वजह से और कोई दूसरा मंच न होने की वजह से ही वे अब तक कांग्रेस में बने हुए थे। श्रीमती गांधी को डर था कि जगजीवनराम के बाद अब और भी बहुत से लोग कांग्रेस छोड़कर चले जायेंगे। इस वक्त जो भी संसद या विधानसभा का मेम्बर है उसे अगर टिकट न दिया गया तो उसके लिए कांग्रेस छोड़ देने का यह काफी बहाना होगा।

वह अब 'बूढ़े खूसटों' से छुटकारा पाने की हिम्मत नहीं कर सकती थीं। उन्हें अब जाने पहचाने और परखे हुए लोगों का ही सहारा था। संजय गांधी ने जो फेहरिस्तें बनायी थीं उन्हें रद्द कर देना पड़ा। जगजीवनराम के कांग्रेस छोड़ देने का पहला शिकार युवक कांग्रेस हुई। कांग्रेस के जितने लोग उस समय संसद या विधानसभा के मेम्बर थे उनमें से ज्यादातर को टिकट मिल गया। अब नारा यह बन गया था 'पुराने को पकड़े रहो!' एक मज़ाक बार-बार दोहराया जा रहा था कि इन सभी लोगों ने अपने घरों पर जगजीवनराम की एक-एक तसवीर लगा ली थी जिसके सामने वे बड़ी श्रद्धा से सर झुकाते थे।

अब असरदार मेम्बरों को खुश रखने के लिए पूरा जोर लगाया जा रहा था ताकि वे पार्टी छोड़कर न चले जायें। जिस तरह सिद्धार्थ बाबू ने, जो अभी कुछ ही दिन पहले तक दुतकारे हुए लोगों में थे, फिर अपना पासा पलट लिया, वह इसकी एक

कांग्रेस समझती थी कि उसकी लोकप्रियता में जो कमी हुई है उसकी कसर उसके साधनों से पूरी कर ली जायेगी। कांग्रेस खुद देख चुकी थी कि 1971 में किस तरह श्रीमती गांधी के 'गरीबी हटाओ' के नारे के खिलाफ थैलीशाही की एक नहीं चलने पायी थी। अब कांग्रेस के सामने इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं था कि वह जनता को अपनी ओर लाने के लिए पैसा इस्तेमाल करे। पार्टी के खजांची पी० सी० सेठी ने नई दिल्ली में 2 कौशिक रोड पर अपना दफ्तर खोल लिया, जहाँ बदलकर गौहाटी भेजे जाने से पहले जस्टिस रंगराजन रहते थे। सेठी ने हर उम्मीदवार को 1,00,000 रुपये के अलावा दो-दो जीपें दीं।

उधर जनता पार्टी पैसे की तंगी की परवाह न करके और पार्टी की ओर से छपवाये गये चुनाव फंड के कूपनों का सहारा लेकर चुनाव के मैदान में कूद पड़ी। सी० एफ० डी० की आवाज भी जनता पार्टी के साथ थी—जयप्रकाश ने उन दोनों को एक ही झंडे के नीचे और एक ही निशान पर साथ मिलकर चुनाव लड़ने के लिए राजी कर लिया था।

जामा मस्जिद के शाही इमाम मौलाना सैयद अब्दुल्ला बुखारी ने भी, जो मुसलमानों में बहुत लोकप्रिय थे, अपना पूरा जोर विपक्ष की ओर से लगा दिया।

लेकिन जिस बात से जनता-सी एफ० डी० का हौसला सबसे ज्यादा बढ़ा वह 12 फरवरी को हुई जब नेहरू की बहन और श्रीमती गांधी की बुआ श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित भी अपनी भतीजी के खिलाफ जोर लगाने के लिए मैदान में उतर आयीं। उन्होंने कहा "आजादी के वर्षों के दौरान हमने जितनी भी जनतांत्रिक संस्थाएँ बनायी थीं, उन सभी को एक एक करके कुचल दिया गया और नष्ट कर दिया गया। कानून के शासन की जड़ें खोखली कर दी गयीं और अदालतों की आजादी खत्म कर दी गयी। अखबारों पर सेंसरशिप लागू कर दी गयी।" उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि वक्त का बुनियादी तकाजा यह है कि जनतन्त्र को फिर से पटरी पर लाया जाये। "हमारे चिरपोषित आदर्शों को खोखला करते जाने का यह सिलसिला बन्द होना चाहिए और हमें एक बार उन्हीं आदर्शों पर वापस लौट जाना चाहिये जिनका पालन करने के लिए हम वचनबद्ध हैं।'

सच तो यह है कि इधर कुछ समय से श्रीमती गांधी और श्रीमती पंडित तथा उनके परिवार के सम्बन्ध धीरे धीरे बिगड़ते गये थे। अभी कुछ ही दिन पहले श्रीमती पंडित की बेटी तारा ने मुझे बताया था 'कि एक जमाना था जब मामा के घर पर हमारे कुत्ते तक का स्वागत होता था, और अब हम लोगों का भी जाना गवारा नहीं किया जाता।'

श्रीमती गांधी को इन सब बातों से बहुत परेशानी हुई। हालाँकि खुफिया रिपोर्टों में अब भी यही कहा जाता था कि जीत कांग्रेस की ही होगी, लेकिन वह कितनी सीटें जीतगी इसका अन्दाजा अब बहुत घट गया था। इन रिपोर्टों में यह भी कहा गया था कि बुद्धिजीवी वर्ग इस बात से भी बहुत नाराज हो गया है कि हालांकि बारी जस्टिस हंसराज खन्ना की थी लेकिन उन्हें न बनाकर उनसे जूनियर जज जस्टिस एम० एच० बेग को तरक्की देकर भारत का चीफ जस्टिस बना दिया गया था। गोखले ने मुझे बताया कि उन्होंने श्रीमती गांधी को बहुत समझाने की कोशिश की थी कि जस्टिस खन्ना का हक न मारें लेकिन वह नहीं मानीं। जस्टिस खन्ना को इस बात की कीमत चुकानी पड़ी कि मीसा वाले मुकदमे में उन्होंने सरकार के खिलाफ अपना फैसला दिया था।

चूंकि हवा का रुख कांग्रेस के खिलाफ था इसलिए अफवाहें यह उड़ने

चुनाव टाल दिये जायेंगे। इन अफवाहों ने इतना जोर पकड़ा कि चुनावों की तारीखों का ऐलान करते हुए एक सूचना जारी करनी पड़ी। चुनाव 16 से 20 मार्च तक किये जाने का फैसला किया गया था।

श्रीमती गांधी अब भी समझती थीं कि कांग्रेस खींच-तानकर 280 सीटें जीत ही जायेगी, खुफिया विभागवालों की भी यही राय थी। लेकिन अब श्रीमती गांधी को खतरा दिखायी देने लगा था। अपने भाषणों में उन्होंने देश के लिए भीतरी और बाहरी खतरों का राग अलापना शुरू कर दिया था। उन्होंने कहा कि विपक्ष के गिरोह एक बार फिर अस्थिरता की हालत पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं—इस बात में एक बहुत ही खतरनाक गूंज थी। उन्होंने इमर्जेंसी की पैरवी में कहा कि उसकी बदौलत देश ने सभी क्षेत्रों में 'तरक्की की है'। लेकिन आम जनता के बिफरे हुए तेवर और अपनी मीटिंगों में बहुत थोड़े लोगों को देखकर उन्होंने सफाई देने का रवैया अपनाया "इसमें शक नहीं कि कभी कभी गलतियाँ की गयी हैं और इसके लिए हमने उन अफसरों को मुअत्तिल कर दिया है जो इन ज्यादतियों के लिए जिम्मेदार थे।"

एक ग़लती नहीं थी, ग़लतियों का एक पूरा सिलसिला था। अब उन पर से लोगों का भरोसा उठ चुका था। नौबत यहाँ तक पहुँच चुकी थी कि जब दिल का दौरा पड़ने से 11 फरवरी, 1977 को राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद की मौत हो गयी, तो चारों तरफ यह अफवाह फैल गयी कि श्रीमती गांधी रात को दो बजे राष्ट्रपति भवन गयी थीं और उन्होंने राष्ट्रपति पर दबाव डाला था कि वह इस आर्डिनेंस पर दस्तखत कर दें कि मीसा में नज़रबन्दों को चुनाव लड़ने का अधिकार नहीं होगा और इसी वजह से उनको दिल का वह दौरा पड़ा था जिसने उनकी जान ले ली। मैंने इसके बारे में बेगम अहमद से पूछा तो उन्होंने बताया कि उस रात श्रीमती गांधी राष्ट्रपति भवन आयी ही नहीं थीं, प्रधानमंत्री की सुरक्षा के लिए तैनात सिक्योरिटीवालों ने भी यही कहा। लेकिन उस रात श्रीमती गांधी ने राष्ट्रपति अहमद को टेलीफोन ज़रूर किया था। श्रीमती गांधी ने भी किसी तरह के दबाव के बिना ही इस बात से इंकार किया कि उनके और राष्ट्रपति के बीच कोई मतभेद थे।

उन पर से लोगों का भरोसा उठ जाना तो बुरी बात थी ही, लेकिन इससे भी बुरी बात यह थी कि लोगों के मन में यह बात बैठ गयी थी कि वह संजय को प्रधानमंत्री बनाना चाहती थीं। वह कहती तो यही थीं कि उसकी कोई 'राजनीतिक तमन्ना' नहीं है लेकिन लोग कुछ और ही समझते थे। जब उन्होंने रायबरेली में अपनी सीट से मिली हुई अमेठी की सीट से संजय को कांग्रेस का उम्मीदवार बना दिया तो लोगों का यह शक और पक्का हो गया। इस तरह उनके खिलाफ 'डिक्टेटरशिप या जनतन्त्र' के नारे के साथ ही एक नारा और जुड़ गया 'कुनबाशाही या जनतन्त्र'।

दरअसल, चुनाव की पूरी मुहिम के दौरान श्रीमती गांधी को निरंकुशता के आरोप का सामना करना पड़ा। पहले तो उन्होंने इस इलजाम को सुनकर भी अनसुना कर दिया, लेकिन जब इसी बात को बार बार दोहराया जाने लगा तो उन्होंने कहा कि "कांग्रेस कभी भी एक आदमी के बल पर चलनेवाली पार्टी नहीं रही है। उन्होंने कहा 'मैं अपने आपको जनता की सबसे बड़ी सेविका के अलावा और कुछ भी नहीं समझती हूँ।' लेकिन निरंकुशता का आरोप तो उन पर चिपक गया और विपक्ष लगातार इसी एक बात पर जोर देता रहा। वह कहती थीं कि विपक्ष के पास सिर्फ एक-सूत्री कार्यक्रम है मुझे हटाना। यही बात उन्होंने 1971 के चुनाव के वक्त भी कही थी और लोकसभा में दो तिहाई बहुमत पा लिया था। लेकिन अब उनकी साख बिल्कुल उठ चुकी थी और आखिर दौर में भी उनका कारनामा कुछ इससे बेहतर नहीं था।

कांग्रेस के 500 शब्द के मनिफेस्टो मे, जिसे श्रीमती गांधी ने खुद जारी किया था, कहा गया था कि कांग्रेस की मजिल समाजवाद है और 'गरीबी, असमानता और सामाजिक अन्याय के खिलाफ वह अपनी लडाई और तेज कर देगी।

जनता पार्टी के मनिफेस्टो मे खास जोर इस बात पर दिया गया था कि प्रजातन्त्र का ढाँचा नये सिरे से बनाने के लिए वह गाधीवादी सिद्धान्तो और नीतियो का सहारा लेगी ताकि ध्यान खेती-बाडी की प्रगति, बेरोजगारी को दूर करने और राजनीतिक तथा आर्थिक शक्ति के एक ही जगह सिमटने न देने पर केंद्रित रहे। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के मनिफेस्टो मे कहा गया था कि पार्टी आर्थिक विकास के लिए टिकाऊ परिस्थितियाँ पैदा करने के लिए जनतन्त्र की रक्षा करेगी और उसे बढायेगी। सी० एफ० डी० ने कहा कि वह पब्लिक सेक्टर को 'सबसे ऊंचा स्थान देने, और इजारेदार घरानो पर अकुश लगाने सभी जरूरी चीजें आम आदमी की पहुँच के अन्दर बँधी हुई और स्थिर कीमतो पर दिलाने का प्रबन्ध करने, उद्योगो की हर अवस्था के काम मे मजदूरो को उसमे पूरी तरह भाग लेने का अवसर देने और कम से कम समय मे भूमि-सुधार लागू करने आदि के पक्ष मे है।

लेकिन चुनाव की मीटिंगो मे किसी भी मैनिफेस्टो पर विचार ही कब हुआ। पार्टियाँ उनका हवाला भी कभी-कभार ही देती थी। सिर्फ दो ही नारो की गूज सुनायी देती थी। विपक्ष कहता था कि हमे दो रास्तो मे से एक को चुनना है 'डिक्टेटरशिप या जनतन्त्र', कांग्रेस का भी नारा यही था कि जनतन्त्र या अराजकता।

दोनो पक्ष एक दूसरे पर जाती हमले भी करते थे। श्रीमती गांधी ने कहा कि विपक्ष 'मुझे घेरकर मेरे छुरा भोंकना चाहता है।" मोरारजी ने जवाब दिया, "छुरा तो हमारे भी भोंका गया है।" जगजीवनराम ने कहा कि कांग्रेस मे और सरकार मे काम करने के जनतान्त्रिक ढग मे कतर-ब्योंत की गयी। चह्वाण ने जवाबी वार किया कि कुछ नेता ऐसे हैं जो आम लोगो के साथ कदम से कदम मिलाकर नही चल सकते हैं, ऐसे लोग इसी लायक हैं कि उनको नजरअन्दाज कर दिया जाये।

आपस की इस तू-तू मे मे के वातावरण मे आर्थिक समस्याएँ, या सच पूछा जाये तो दूसरी सभी समस्याएँ पीछे ढकेल दी गयी। चुनाव का प्रचार चाहे जिस ढग का रहा हो लेकिन ऐसा लगता था कि देश मे पहली बार चुनाव हो रहे हैं। ज्यादातर सीटो पर दो ही उम्मीदवारो की टक्कर थी—एक कांग्रेस का, दूसरा विपक्ष का। कांग्रेस ने 492 सीटो के लिए अपने उम्मीदवार खडे किए थे और बाकी 50 सीटें अपने समर्थको के लिए छोड दी थी—केरल, तमिलनाडु और पश्चिम बगाल मे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और तमिलनाडु मे अन्ना डी० एम० के०। जनता पार्टी ने 391 उम्मीदवार अपने खडे किये थे और 147 सीटें सी० एफ० डी०, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और पजाब मे अकाली दल तथा तमिलनाडु मे डी० एम० के० के लिए छोड दी थी।

1967 के चुनाव मे कांग्रेस को 40 7 प्रतिशत वोट मिले थे और उसने 283 सीटें जीती थी। 1971 मे सिर्फ 3 प्रतिशत बढ जाने से, 43 6 प्रतिशत वोटो पर कांग्रेस को 350 सीटें मिल गयी, लोकसभा मे दो तिहाई का बहुमत। इस बार विपक्ष को उम्मीद थी कि वह ये वोट अपनी तरफ खीच लायेगा और कांग्रेस को हरा देगा।

सबसे बडी बात यह थी कि इस बार कोई इन्दिरा लहर नही थी। सच तो यह है कि इस बार लहर उलटी ही थी। जून 1975 मे इमर्जेंसी लागू होने के बाद जो दमनचक्र चलाया गया था उससे सरकार बदनाम हो गयी थी। गाँवो मे लोग 'रोटी भी और आजादी भी' और 'आजादी से पहले रोटी' के बारीक अन्तर को भले ही न

चुनाव टाल दिये जायेंगे। इन अफवाहों ने इतना ज़ोर पकडा कि चुनावो की तारीखो का ऐलान करते हुए एक सूचना जारी करनी पडी। चुनाव 16 से 20 मार्च तक किये जाने का फैसला किया गया था।

श्रीमती गाधी अब भी समझती थी कि काग्रेस खीच-तानकर 280 सीटें जीत ही जायेगी, खुफिया विभागवालो की भी यही राय थी। लेकिन अब श्रीमती गाधी को खतरा दिखायी देने लगा था। अपने भाषणो मे उन्होंने देश के लिए भीतरी और बाहरी खतरो का राग अलापना शुरू कर दिया था। उन्होने कहा कि विपक्ष के गिरोह एक बार फिर अस्थिरता की हालत पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं—इस बात मे एक बहुत ही खतरनाक गूज थी। उन्होंने इमर्जेंसी की पैरवी मे कहा कि उसकी बदौलत देश ने सभी क्षेत्रो मे 'तरक्की की है'। लेकिन आम जनता के बिफरे हुए तेवर और अपनी मीटिंगो मे बहुत थोडे लोगो को देखकर उन्होने सफाई देने का रवैया अपनाया "इसमे शक नही कि कभी कभी गलतियाँ की गयी हैं और इसके लिए हमने उन अफसरो को मुअत्तिल कर दिया है जो इन ज्यादतियो के लिए जिम्मेदार थे।"

एक ग़लती नही थी, ग़लतियो का एक पूरा सिलसिला था। अब उन पर से लोगो का भरोसा उठ चुका था। नौबत यहाँ तक पहुँच चुकी थी कि जब दिल का दौरा पडने से 11 फरवरी 1977 को राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद की मौत हो गयी, तो चारो तरफ यह अफवाह फैल गयी कि श्रीमती गाधी रात को दो बजे राष्ट्रपति भवन गयी थीं और उन्होंने राष्ट्रपति पर दबाव डाला था कि वह इस ऑर्डिनेंस पर दस्तखत कर दें कि मीसा के नजरबन्दो को चुनाव लडने का अधिकार नही होगा और इसी वजह से उनको दिल का वह दौरा पडा था जिसने उनकी जान ले ली। मैंने इसके बारे में बेगम अहमद से पूछा तो उन्होंने बताया कि उस रात श्रीमती गांधी राष्ट्रपति भवन आयी ही नहीं थीं, प्रधानमंत्री की सुरक्षा के लिए तैनात सिक्योरिटीवालो ने भी यही कहा। लेकिन उस रात श्रीमती गाधी ने राष्ट्रपति अहमद को टेलीफोन ज़रूर किया था। श्रीमती गाधी ने भी किसी तरह के उकसावे के बिना ही इस बात से इकार किया कि उनके और राष्ट्रपति के बीच कोई मतभेद थे।

उन पर से लोगो का भरोसा उठ जाना तो बुरी बात थी ही, लेकिन इससे भी बुरी बात यह थी कि लोगों के मन मे यह बात बैठ गयी थी कि वह सजय को प्रधान मत्री बनाना चाहती थी। वह कहती तो यही थीं कि उसकी कोई 'राजनीतिक तमन्ना' नहीं है लेकिन लोग कुछ और ही समझते थे। जब उन्होने रायबरेली म अपनी सीट से मिली हुई अमेठी की सीट से सजय को काग्रेस का उम्मीदवार बना दिया तो लोगों का यह शक और पक्का हो गया। इस तरह उनके खिलाफ 'डिक्टेटरशिप या जनतन्त्र' के नारे के साथ ही एक नारा और जुड गया 'कुनबाशाही या जनतन्त्र'।

दरअसल, चुनाव की पूरी मुहिम के दौरान श्रीमती गांधी को निरकुशता के आरोप का सामना करना पडा। पहले तो उन्होंने इस इलजाम को सुनकर भी अनसुना कर दिया, लेकिन जब इसी बात को बार बार दोहराया जाने लगा तो उन्होंने कहा कि "कांग्रेस कभी भी एक आदमी के बल पर चलनेवाली पार्टी नहीं रही है। उन्होंने कहा, 'मैं अपने आपको जनता की सबसे बडी सेविका के अलावा और कुछ भी नहीं समझती हूँ।' लेकिन निरकुशता का आरोप तो उन पर चिपक गया और विपक्ष लगातार इसी एक बात पर जोर देता रहा। वह कहती थीं कि विपक्ष के पास सिर्फ एक-सूत्री कार्यक्रम है मुझे हटाने का। यही बात उन्होंने 1971 के चुनाव के वक्त भी कही थी और लोकसभा म दो तिहाई बहुमत पा लिया था। लेकिन अब उनकी साख बिलकुल उठ चुकी थी और आर्थिक क्षेत्र में भी उनका कारनामा कुछ इससे बेहतर नहीं था।

कांग्रेस के 500 शब्द के मैनिफेस्टो में, जिसे श्रीमती गांधी ने खुद जारी किया था, कहा गया था कि कांग्रेस की मंजिल समाजवाद है और 'गरीबी, असमानता और सामाजिक अन्याय के खिलाफ वह अपनी लड़ाई और तेज़ कर देगी।

जनता पार्टी के मैनिफेस्टो में खास ज़ोर इस बात पर दिया गया था कि अर्थ-तंत्र का ढांचा नये सिरे से बनाने के लिए वह गांधीवादी सिद्धान्तों और नीतियों का सहारा लेगी ताकि ध्यान खेती-बाड़ी की प्रगति, बेरोजगारी को दूर करने और राजनीतिक तथा आर्थिक शक्ति के एक ही जगह सिमटने न देने पर केंद्रित रहे। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के मैनिफेस्टो में कहा गया था कि पार्टी आर्थिक विकास के लिए टिकाऊ परिस्थितियाँ पैदा करने के लिए जनतन्त्र की रक्षा करेगी और उसे बढ़ायेगी। सी० एफ० डी० ने कहा कि वह पब्लिक सेक्टर को 'सबसे ऊंचा स्थान' देने, और इजारेदार घरानों पर अंकुश लगाने, सभी ज़रूरी चीज़ें आम आदमी की पहुँच के अन्दर बँधी हुई और स्थिर कीमतों पर दिलाने का प्रबन्ध करने, उद्योगों की हर अवस्था के काम में मजदूरों को उसमें पूरी तरह भाग लेने का अवसर देने और कम से कम समय में भूमि-सुधार लागू करने आदि के पक्ष में है।

लेकिन चुनाव की मीटिंगों में किसी भी मैनिफेस्टो पर विचार ही कब हुआ। पार्टियाँ उनका हवाला भी कभी-कभार ही देती थीं। सिर्फ दो ही नारों की गूंज सुनायी देती थी। विपक्ष कहता था कि हमें दो रास्तों में से एक को चुनना है 'डिक्टेटरशिप या जनतन्त्र', कांग्रेस का भी नारा यही था कि जनतन्त्र या अराजकता'।

दोनों पक्ष एक दूसरे पर जाती हमले भी करते थे। श्रीमती गांधी ने कहा कि विपक्ष 'मुझे घेरकर मेरे छुरा भोंकना चाहता है।" मोरारजी ने जवाब दिया, "छुरा तो हमारे भी भोंका गया है।" जगजीवनराम ने कहा कि कांग्रेस में और सरकार में काम करने के जनतान्त्रिक ढंग में कतर-ब्योंत की गयी। चह्वाण ने जवाबी वार किया कि कुछ नेता ऐसे हैं जो आम लोगों के साथ कदम से कदम मिलाकर नहीं चल सकते हैं, ऐसे लोग इसी लायक हैं कि उनको नज़रअन्दाज़ कर दिया जाये।

आपस की इस तू-तू मैं-मैं के वातावरण में आर्थिक समस्याएँ या सच पूछा जाये तो दूसरी सभी समस्याएँ पीछे ढकेल दी गयीं। चुनाव का प्रचार चाहे जिस ढंग का रहा हो, लेकिन ऐसा लगता था कि देश में पहली बार चुनाव हो रहे हैं। ज़्यादातर सीटों पर दो ही उम्मीदवारों की टक्कर थी—एक कांग्रेस का, दूसरा विपक्ष का। कांग्रेस ने 492 सीटों के लिए अपने उम्मीदवार खड़े किए थे और बाकी 50 सीटें अपने समर्थकों के लिए छोड़ दी थीं—केरल, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, और तमिलनाडु में अन्ना डी० एम० के०। जनता पार्टी ने 391 उम्मीदवार अपने खड़े किये थे और 147 सीटें सी० एफ० डी०, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, और पंजाब में अकाली दल तथा तमिलनाडु में डी० एम० के० के लिए छोड़ दी थीं।

1967 के चुनाव में कांग्रेस को 40 7 प्रतिशत वोट मिले थे और उसने 283 सीटें जीती थीं। 1971 में सिर्फ 3 प्रतिशत बढ़ जाने से, 43 6 प्रतिशत वोटों पर कांग्रेस को 350 सीटें मिल गयीं, लोकसभा में दो तिहाई का बहुमत। इस बार विपक्ष को उम्मीद थी कि वह ये वोट अपनी तरफ खींच लायेगा और कांग्रेस को हरा देगा।

सबसे बड़ी बात यह थी कि इस बार कोई इन्दिरा लहर नहीं थी। सच तो यह है कि इस बार लहर उलटी ही थी। जून 1975 में इमर्जेंसी लागू होने के बाद जो दमनचक्र चलाया गया था उससे सरकार बदनाम हो गयी थी। गांवों में लोग 'रोटी भी और आज़ादी भी' और 'आज़ादी से पहले रोटी' के बारीक अन्तर को भूल ही न

समझते हो लेकिन जिस तरह से सरकार के कुछ कायक्रम, खास तौर पर नसबन्दी का कायक्रम, चलाये गये थे उससे वह नाराज थी। देहातो मे पुलिस ने डण्डे का इस्तेमाल जरूरत से ज्यादा बार और जरूरत से ज्यादा अधाधुध तरीके से किया था।

गृह मत्रालय मे जो खुफिया रिपोर्टें आयी थी उनमे कहा गया था कि पुलिस के छोटे अफसर गाववालो को यह धमकी देकर उनसे पैसा ऐंठ रहे थे कि अगर वे पैसा नही देंगे तो उन्हे मीसा मे पकड लिया जायेगा। सैकडो गावो के जिन रहनेवालो ने नसबन्दी करनेवालो से बचने के लिए कितनी ही रातें खेतो और जगलो मे काटी थी, उन्होने पकडे जाने से बचने के लिए पुलिस को भी 'खरीद लिया' था।

श्रीमती गाधी ने दिल्ली मे चुनाव प्रचार की मुहिम शुरू करते वक्त लोगो के मन से इस गलतफहमी को दूर कर देने की कोशिश की थी। उन्होने यह बात मान ली थी कि उनकी सरकार ने नसबन्दी के कायक्रम को पूरा करने और लोगो को गन्दी बस्तियो से हटाकर नयी जगहो मे ले जाकर बसा देने के सिलसिले मे गलतियाँ की थीं। लेकिन इसके जवाब मे लोग बडे तिरस्कार के साथ हस दिये और शोर मचाने लगे।

ऐसा लगता था कि अब उनकी बात का कोई मान नही रह गया है। यह सच है कि उन्होने लगभग एक महीने तक एक एक दिन मे बीस बीस मीटिंगो मे भाषण दिये लेकिन असर बहुत कम हुआ।

मैं इलाहाबाद जिले के फूलपुर इलाके मे उनके चुनाव प्रचार की खबरें भेजने के लिए गया था। प्रधानमन्त्री हेलिकॉप्टर से आयी। 1974 मे उत्तर प्रदेश विधानसभा के चुनावो के दौरान इसी जगह उन्होने जिस मीटिंग मे भाषण दिया था उसके मुकाबले मे इस बार सुननेवालो की भीड बहुत कम थी। जाहिर है कि मीटिंग का बन्दोबस्त करनेवालो को इससे ज्यादा लोगो के आने की उम्मीद थी क्योंकि उन्होंने वहाँ से 40 किलोमीटर दूर इलाहाबाद तक से और आस पास के इलाको से लोगो को मीटिंग मे लाने के लिए बसो वगैरह का पूरा प्रबन्ध किया था। लेकिन मैदान के बहुत से हिस्से, जिन्हें चारो ओर बल्लियाँ लगाकर घेर दिया गया था, खाली पडे थे और पन्द्रह मीटर ऊँचे मच पर से जो नारे दिये जाते थे उनका जवाब भी बहुत कमजोर आवाज मे मिलता था।

अपने पन्द्रह मिनट के भाषण मे श्रीमती गाधी ने बीच बीच मे बहुत सी निजी बातो का हवाला दिया। उन्होने कहा, 'नेहरू परिवार के हम लोगो की कुर्बानियो का इतिहास बहुत लम्बा है। मेरे दादा ने एक मकान बनवाया था स्वराज्य भवन, जो मेरे बाप ने देश को भेंट कर दिया। फिर हम लोगो ने एक और मकान बनवाया, आनन्द भवन, जिसे मैंने जनता के नाम अर्पित कर दिया। हम लोगो को अपने लिए कुछ नहीं चाहिए। अगर कुछ लोग हमारा विरोध भी करें, तब भी हम देश की सेवा करते रहना चाहते हैं। हमारा परिवार आगे भी ऐसा ही करता रहेगा।'

श्रीमती गाधी ने जो एक और बात निजी ढग से कही वह यह थी कि 'ऐसे लोगो को ससद मे भेजिये जो मेरा साथ दें, न कि मेरी पीठ मे छुरा भोंकें।'

प्रधानमन्त्री ने इस बात को एक बार फिर दोहराया कि उन पर डिक्टेटर होने का आरोप मन्जूर कर निशाने के लिए लगाया जाता है। क्योंकि अगर मैं डिक्टेटर होती तो न ये चुनाव होते और न विपक्ष के लोगो को यह सब-कुछ कहने का मौका मिलता जो वे इन दिनो कह रहे हैं।

श्रीमती गाधी का भाषण खत्म हो जाने के बाद भी भीड तब तक वहीं रुकी रही जब तक कि उनका हेलिकॉप्टर उड नही गया, देश के इस भाग मे यह सब अभू

चीज़ थी।

इससे ज्यादा लोग तो जनता पार्टी के या सी० एफ० डी० के स्थानीय नेताओं का भाषण सुनने के लिए जमा हो जाते थे। लोग उन्हें सुनने के लिए घंटों आधी आधी रात तक इंतज़ार करते थे। अगर ये नेता देर से भी आते थे तो लोग बुरा नहीं मानते थे, दूसरी मीटिंगें चलती रहती थीं और मोटर से, रेल से आने-जाने में कहीं न कहीं देर हो ही जाती थी। विपक्ष का समर्थन करनेवाले रातों रात न जाने कितने संगठन खड़े हो गये, वालंटियरों और चंदे के लिए जो अपीलें की गयीं उनका लोगों ने तुरन्त तन मन धन से जवाब दिया। कम से-कम सिंधु गंगा के मैदान में तो जो वातावरण था उससे आज़ादी से पहले के दिनों की याद ताजा हो जाती थी। उन दिनों जो कुछ कांग्रेस कह देती थी उसे जोश के साथ पूरा किया जाता था, अब लोग जनता पार्टी की ललकार पर कुछ भी करने को तैयार थे।

कम से कम उत्तर प्रदेश बिहार, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और मध्य प्रदेश में तो यह हाल था कि जनता पार्टी ने जिसे भी खड़ा कर दिया उसे जीता हुआ ही समझिये। मज़ाक में यहां तक कहा जाता था कि जनता पार्टी अगर खम्भे को भी खड़ा कर दे तो वह भी जीत जायेगा। उम्मीदवार के क्या गुण हैं, वह कितना लोकप्रिय है इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता था, असल सवाल यह होता था कि उम्मीदवार जनता पार्टी और उसके साथियों का है या नहीं।

जनता लहर जल्द ही ज़ोर पकड़ गयी। उन्नीस महीने के निरंकुश शासन पर आम लोगों में जो गुस्सा था उसकी वजह से उनका इरादा और पक्का हो गया था। सरकार के नेताओं ने कितनी ही बार इस बात को माना कि कुछ गलतियां हो गयी हैं फिर भी लोगों का गुस्सा शांत नहीं हुआ। ऐसा लगता है कि चुनावों का ऐलान होने से पहले ही वे तय कर चुके थे कि वोट किसे देना है।

विपक्ष के नेताओं ने जनता को यह बताकर कि जेल में उन लोगों ने अलग अलग और पूरे देश ने मिलकर इमर्जेंसी के दौरान क्या-क्या मुसीबतें झेली हैं उनका गुस्सा और भड़का दिया। जबरी नसबन्दी, गन्दी बस्तियों की सफाई और ज़ोर-जुल्म की कितनी ही घटनाएं रोज़ सामने आने लगीं। जो अखबार आम तौर पर सरकार और इमर्जेंसी की तरफ से बोलने लगे थे अब एक दूसरे से होड़ लगाकर इमर्जेंसी के दौरान की भयानक घटनाओं को उछाल रहे थे। लोग इस बात का पक्का बन्दोबस्त कर देना चाहते थे कि 'वे भयानक दिन फिर लौटकर न आने पायें और ऐसा कांग्रेस को हराकर ही किया जा सकता था।

खुफिया विभागवाले और सरकारी नौकर पहले विपक्ष से इसलिए कतराते थे कि वह कांग्रेस को हराकर उसकी जगह नहीं ले सकता था लेकिन अब यही लोग सोलह आने कांग्रेस के खिलाफ हो गये। इस दलील में कोई दम नहीं रह गया था कि विपक्ष एक पँचमेल जमघट है। शासक पार्टी ने जो स्थायित्व दिया था उसके मुकाबले में वे अस्थायित्व को भी पसन्द करने को तैयार थे। इस घुटन में और आज़ादी न रह जाने पर केवल मशीनी आदमी ही पैदा हो सकते थे। और वे मशीनें बनने को तैयार नहीं थे।

सचमुच कांग्रेस का बहुत बुरा हाल था। महल' से मुख्यमंत्रियों को सन्देश भेजा गया कि वे आम जनता को अपनी ओर लाने के लिए तरह तरह की रिआयतों का ऐलान करें। मुख्यमंत्री तो तिजोरियों का मुंह खोले ही बैठे थे, ज्यादातर राज्यों भी रिज़र्व बैंक से कर्ज लेकर अपना काम चला रहे थे। राज्यों की सरकारों ने तरह तरह से 2 अरब 50 करोड़ रुपया बांट दिया—लगान और खेती की आमदनी पर इनकम-

टैक्स कम कर दिया गया, सिंचाई कर घटा दिया गया, बिजली की दर मे कटौती हुई, मकान के किराये मे छूट दी गयी, और महगाई भत्ता और किराया बढ़ा दिया गया, दवा दारू की बेहतर सुविधाएँ दी गयी।

लगता है कि इन रिआयतो का कोई असर नही हुआ। खुफिया रिपोर्टों से पता चलता था कि विपक्ष के हाथ मे इमर्जेंसी सबसे बडा तुरुप का पत्ता था। चुनाव से कुछ दिन पहले श्रीमती गाधी ने इस बात पर विचार करने के लिए कैबिनेट की मीटिंग की कि अगर इमर्जेंसी उठा ली जाये तो उससे क्या फायदा होगा और क्या नुकसान। आम राय इसके खिलाफ थी। उसे हटाने का मतलब विपक्ष की जीत भी समझी जा सकती थी। बहरहाल, कई लोगो की राय थी अगर उसे उठा भी लिया जाये तो अब इस कदम का फायदा उठाने के लिए समय ही कहा रह गया था।

लोगो को सिर्फ इमर्जेंसी से नफरत रही हो, ऐसी बात नही थी, इससे भी ज्यादा नफरत उन्हे *सजय से थी, बसीलाल से थी और कई मामलो मे खुद श्रीमती* गाधी से थी। वह निराश तो बहुत थी पर अभी हार मानने को तैयार नही थी।

ज्यादातर लोग यह समझते थे, और अखबारवाले उनसे अलग नही थे, कि चुनाव में बहुत काटे की टक्कर रहेगी, श्रीमती गाधी का पलडा विपक्ष के मुकाबले मे कुछ भारी रहेगा। यह बात तो कोई सोच भी मुश्किल से ही सकता था कि नेहरू की बेटी, या काग्रेस हार जायेगी, जिसके हाथ मे आजादी के बाद से सत्ता की बागडोर रही थी।

पश्चिमी देशो मे यही आम राय थी। स्कडीनेविया के छोटे छोटे देशो को तो अब भी उम्मीद थी कि भारत की जनता एक बार फिर जनतन्त्र मे अपनी आस्था का सबूत देगी लेकिन बडे बडे देश श्रीमती गाधी के पक्ष मे थे। एक वक्त ऐसा था जब पश्चिमी जर्मनी ने भारत को चेतावनी दी थी कि *अगर एक भी जर्मन सवाददाता नई* दिल्ली से निकाला गया तो भारत को मदद देना बन्द कर दिया जायेगा। अब पश्चिमी जर्मनी का रवैया दूसरा ही था, नई दिल्ली मे उसके राजदूत को पूरा यकीन था कि भारत के लिए श्रीमती गाधी से अच्छा नेता कोई दूसरा हो नही सकता। आपस की बातचीत मे वह दलील यह देते थे कि अगर सभी पश्चिमी देश श्रीमती गाधी के खिलाफ हो जायेंगे तो वह सोवियत सघ की तरफ चली जायेंगी।

श्रीमती गाधी ने जिस दिन से अमरीकी राजदूत विलियम सक्सबी के निजी डिनर मे आने का निमन्त्रण स्वीकार किया था उस दिन से वह पूरी तरह से उनके पक्ष मे हो गये थे। उन्होने अपनी सरकार को बताया कि भारत को घोर उथल-पुथल के रास्ते पर जाने से अगर *कोई रोके हुए है तो वह श्रीमती गाधी ही हैं।* अमरीकी राजदूत की सजय से भी बडी दोस्ती थी, जो व्यापार और कारोबार की खुली छूट के पक्ष मे था। मारुति और अमरीकी कम्पनी इटरनेशनल हार्वेस्टर के बीच सहयोग की बात सैक्सबी ने ही पक्की करायी थी।

बडे देशो मे सोवियत सघ ही अकेला ऐसा देश था जिसे श्रीमती गाधी के जीतने की बहुत उम्मीद नही थी। रूसी अफसरो ने मास्को म भारत के दूतावास को बताया था कि हवा का रुख उनके पक्ष म नही मालूम होता। उन लोगो को इस बात से बडी चिन्ता थी।

चुनाव के पूरे प्रचार के दौरान कोई खास घटना नही हुई। बस एक दिन *समाचार' ने आधी रात के बहुत बाद,* जब अखबारवाले खबर के बारे मे कोई छान बीन भी नही कर सकते थे, यह खबर दी कि सजय पर उसके मतदान क्षेत्र अमेठी म गोली चलायी गयी पर उसे चोट नही आयी। जयप्रकाश समेत सभी नेताओ ने इस घटना की निन्दा की हालांकि उनमे स कुछ को यह शक जरूर था कि कहीं यह वोटरों

की हमदर्दी हासिल करने का हथकंडा तो नहीं है।

श्रीमती गांधी 18 मार्च को लौटकर नई दिल्ली आयीं। उस वक्त तक ज्यादातर जगह वोट पड चुके थे। आसार अच्छे नहीं दिखायी दे रहे थे। उनके घर पर दो मीटिंगें हुई—एक 18 को और दूसरी 19 को। इनमें संजय, धवन, बंसीलाल और ओम मेहता मौजूद थे। बडे अफसरों में गृह मन्त्रालय के सेक्रेटरी और दिल्ली के इंस्पेक्टर-जनरल पुलिस मौजूद थे। इन लोगों को बताया गया कि प्रधानमंत्री की कोठी की 'हर कीमत पर हिफाजत' करनी होगी।

उनको यह भी हिदायत दी गयी कि कोठी की रक्षा करने के लिए उधर से गुजरनेवाली सारी सडकों की नाकेबन्दी कर देनी होगी और जरूरत पडने पर 'कारवाई करने और हिफाजत करने' के लिए बॉर्डर सिक्योरिटी फोर्स के जवान तैनात रहेंगे। 'रॉ' के पास इस्तेमाल के लिए जो ए० एन० 12 रूसी हवाई जहाज थे उन पर अलग अलग केन्द्रों से दस बटालियन (6000 सिपाही) पहले ही लाये जा चुके थे।

इंस्पेक्टर जनरल पुलिस ने फिर अपने यहाँ के अफसरों को इस हुक्म के बारे में बताने के लिए उनकी एक मीटिंग की। एक डी० आई० जी० ने पूछा कि हर कीमत पर हिफाजत करने का क्या मतलब है? आई० जी० ने कहा कि इसका सीधा सादा मतलब है 'हर कीमत पर', जरूरत पडी तो लोगों को गोली से उडा भी देना होगा। डी० आई० जी० ने अपना यह डर उनसे जाहिर किया कि उन्हें इस बात का यकीन नहीं था कि अगर ऐसी जरूरत पड ही गयी तो उनके आदमी जनता पर गोली चलायेंगे।

यह अफवाह भी जोरों पर थी कि श्रीमती गांधी यह भी सोच रही थीं कि अगर चुनाव में फैसला उनके खिलाफ हुआ तो वह मार्शल लॉ लागू कर देंगी—पहले बॉर्डर सिक्योरिटी फोर्स की मदद से और फिर तीनों सेनाओं के प्रधान सेनापतियों की मदद से। कानून मन्त्रालय ने कहा था कि फौज को बुलाये बिना भी मार्शल लॉ लागू किया जा सकता है। इस बात का कभी पक्का पता नहीं लग सका और शायद पक्का पता लगना मुमकिन भी नहीं था।

लेकिन यह सच है कि मार्च के शुरू में दिल्ली में सेना के कमांडरों और नौ सेना के सबसे ऊँचे अफसरों की कान्फ्रेंसें हुई थीं। फौज के खुफिया विभाग के सबसे बडे अफसर मान सिंह को हटाकर उनकी जगह टी० एन० कौल के भाई हृदयनारायण कौल को तैनात कर दिया गया था।

रोटरी क्लब की एक मीटिंग में थल सेना के प्रधान सेनापति जनरल टी० एन० रैना ने जब यह बात कही[1] कि सेना का राजनीति से कोई मतलब नहीं है तो इस

1 अमरीकी पत्रिका नेशन ने अपने मई के अंक में लिखा था कि 5 और 7 मार्च के बीच गोखले ने अपने मन्त्रालय में चुनावों को टलवा देने के लिए संविधान का सहारा लेने का कोई कानूनी पैंतरा ढूँढ निकालने के सिलसिले में काफी सिर खपाया था। नेशन के अनुसार लगभग इसी समय श्रीमती गांधी कुछ मतदान क्षेत्रों में फौज तैनात कर देने के बारे में रैना के विचार मालूम करने की कोशिश कर रही थीं, इस बुनियाद पर कि उन इलाकों में सार्वजनिक सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए यह जरूरी था। कहा जाता है कि रैना ने ऐसा करने से इंकार कर दिया था। इस पर उन्हें कैबिनेट की ओर से हुक्म दिया गया कि उनसे जैसा कहा गया है उसके मुताबिक अपनी फौजें तैनात करें। रैना ने इस हुक्म को पूरा करने का दिखावा तो किया लेकिन उन्होंने जो कुछ किया उससे श्रीमती गांधी का काम नहीं बना।

मैंने 27 मई को गोखले से पूछा कि चुनाव टलवाने के लिए सिर खपाने वाली बात कहाँ तक सच है। उन्होंने कहा, इसमें कोई सचाई नहीं है।

अफवाह पर लोगो को और ज्यादा यकीन हो गया कि श्रीमती गाधी ने उनसे कहा था कि वह 'उन्हे शासन करने मे मदद दे' लेकिन उन्होने इकार कर दिया था।

श्रीमती गाधी को चिन्ता इस बात की नही थी कि चुनाव के नतीजे निकलने के बाद कोई दगा या उपद्रव भडक उठेगा। न उन्हे इस बात का डर था कि अगर काग्रेस हार गयी तो लोग उनकी कोठी के सामने जुलूस लाकर नारे लगायेंगे। उनके दिमाग मे कुछ और ही बात थी।

वह समझती थी कि उन्हे 542 मे से 200 से 220 तक सीटें मिल जायेंगी और उन्हे उम्मीद थी कि कुछ लोगो को वह खरीद लेंगी। वह समझती थी कि कार्यवाहक राष्ट्रपति बी० डी० जत्ती की मदद मे, जो खुलेआम श्रीमती गाधी का राजनीतिक आभार मानते थे वह सरकार बना लेंगी। शासन की बागडोर उन्ही के हाथो मे रहनी होगी और अगर सरकार बनाने की उनकी योजना का विरोध किया गया तो शायद ताकत का सहारा लेना जरूरी हो जाय।

उनकी योजनाएँ कुछ भी रही हो पर जब उत्तर प्रदेश मे रायबरेली के मतदाता-क्षेत्र से, जो इससे पहले के सभी चुनावो मे उनका गढ रहा था, उनके पुराने प्रतिद्वन्द्वी राजनारायण ने उन्हे हरा दिया तो सारी योजनाओ पर पानी फिर गया।

जब यह खबर और सजय के हारने की खबर अखबारो के दफ्तरो के बाहर मोटे मोटे अक्षरो मे लगायी गयी तो हजारो लोग, जिनमे औरतें भी शामिल थी ढोलको की ताल पर नाच उठे। एक जगह एक दर्शक जो भी उधर से गुजरता था उसे तन्दूरी मुर्गे खिला रहा था। एक जमाना था कि यही औरत अपने गौरव के शिखर पर थी और आज 'अनपढ' जनता ने उसे नीचा दिखा दिया था।

श्रीमती गाधी के चले जाने से एक युग का अन्त हो गया, जो न तो पूरी तरह स्वर्ण युग था न पूरी तरह अधकार युग था।

देश को धर्म निरपेक्ष बनाये रखने और एकता के सूत्र मे बाँधे रखने के सिलसिले मे उनकी कोशिशें कोई मामूली योगदान नही थी। उन्होने पाखड के खिलाफ और लकीर के फकीर बने रहने के खिलाफ साहस का परिचय दिया और राजनीतिक मामलो मे भी उन्होने वह रास्ता अपनाया जिस पर चलने पर ज्यादातर दूसरे लोग घबराते।

लेकिन अच्छे कामो या उन्हे पूरा करने के लिए इस्तेमाल किये जानेवाले तरीको की कमी को साहस से नही पूरा किया जा सकता था। ग्यारह साल तक प्रधानमत्री के पद का भार सभालने के दौरान यही श्रीमती गाधी की सबसे बडी ताकत भी थी और उनकी सबसे बडी कमजोरी भी। उनके लिए तरीको की कोई अहमियत नही थी नतीजो की अहमियत थी।

चाहे वह 1969 मे काग्रेस के दो टुकडे कर देने का सवाल रहा हो या जून 1975 मे देश मे भीतरी इमर्जेंसी लागू करने का, इन बातो ने साबित कर दिया था कि वह अपनी जीत के लिए कोई भी हथियार इस्तेमाल करने को तयार थी। उन्हे बस कामयाबी हासिल करने से मतलब था, इस बात से नही कि वह कैसे हासिल की जाये।

यह सच है कि वह ऐसे कार्यक्रम मे विश्वास रखती थी जिसमे बीच के रास्ते मे कुछ वामपथ की ओर झुकाव हो लेकिन विचारधारा उनके लिए बुनियादी तौर पर किसी लक्ष्य को प्राप्त करने का एक साधन-मात्र था। 1969 मे उन्होने बैको का कारोबार सरकार के हाथ मे ले लेने का जो कदम उठाया था वह एक सराहनीय कदम था लेकिन बुनियादी तौर पर वह मोरारजी को एक रेते मे हटा देने के लिए उठाया गया था। विचारधारा की वजह से उन पर प्रगतिशील होने की छाप लग जाती थी

ग्रोर ग्राम जनता इसको ग्रच्छा समझती थी। जितने दिन उन्होने शासन किया उसके दौरान 16 करोड ग्रौर लोग दरिद्रता की सीमा स भी नीचे पहुँच गये ग्रौर इस तरह हमारे देश की 68 प्रतिशत ग्राबादी दरिद्रता के रसातल मे पहुँच गयी थी।

ग्रौर जैसे जैसे दिन बीतते गये, उनको यह विश्वास होता गया कि देश के लिए क्या ग्रच्छा है ग्रौर क्या बुरा यह वही जानती हैं केवल वही। इससे उनके मन मे यह भावना जगी कि उनके बिना देश का काम नही चल सकता ग्रौर उन्होने ग्रपना एक बहुत ताकतवर सेक्रेटेरियट बनाया जो सरकार के हर विभाग पर ग्रपना शिकजा कसे रखता था, उन्होने जासूसो का एक जाल फैलाया जो उनके ग्रसली ग्रौर फर्जी दोनो ही तरह के विरोधियो पर कडी नजर रखता था।

इस तरह उन्हें कोई सलाह देनेवाला नही रह गया क्योकि जो भी जानकारी उनके पास तक पहुँचायी जाती थी वह इस तरह काट छाटकर तैयार की जाती थी कि उनके मन मे यह बात ग्रौर ग्रच्छी तरह बठ जाये कि उनके बिना काम नही चल सकता। ग्रगर कोई उनके सामने दूसरा दृष्टिकोण रखता तो वह ग्रपने मन को यह कहकर बहला लेती कि वह उनकी गद्दी छीनना चाहता है।

कबिनेट की मीटिंग मे वह ऐसा बरताव करती थी जसे स्कूल मे बच्चा को पढा रही हो। ज्यादातर मत्री उनकी नाराजगी के डर से उनके सामने जबान भी नही खोलत थे। वही सरकार थी। ग्रौर इसके बारे मे उ होने किसी के मन मे किसी तरह का शक बाकी नही रहने दिया।

उन्हे इस बात का कोई डर नही था कि इस तरह सारी ताकत एक जगह समेट लेने से उन पर डिक्टेटर बनन का इलज़ाम लगाया जा सकता है। वह बस इतना जानती थी कि ताकत उनके हाथ मे है ग्रौर वह उसे इस्तेमाल करने के लिए तयार थी। उनकी नजरो मे विपक्ष का एक ही इस्तेमाल था कि उसे कुर्बानी का बकरा बना दिया जाय—उनकी सरकार की नीतियो ग्रौर कायक्रमो म जो भी गडबडी हो वह उसके मत्थे मढ दी जाये। वह हर क्षेत्र को पूरी तरह ग्रपनी मुट्ठी मे रखना चाहती थी, चाहे खुलग्राम चाहे ढके छिपे ढग से।

हर काम के लिए वह किसी ऐसे ग्रादमी का चुन लेती थी जो उस काम को पूरा करने के सारे दाँव पेंच जानता हो। लेकिन काम बन जाने पर उसे दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दिया जाता था। उनका काई बँधा हुग्रा सलाहकार नही था। वह किसी पर भरोसा ही नही करती थी।

ऐसे माहौल मे वही ग्रादमी पनप सकता था जिस इस बात से कोई मतलब न हो कि क्या ग्रच्छा है क्या बुरा, क्या सही है या गलत जैसे बसीलाल, या फिर वह जिस पर उन्हें सबसे ज्यादा भरोसा हो जस उनका बटा सजय। ये लोग कोई गलती नही कर सकते थे क्योकि यही वे लोग थे जिन पर उन्हे भरोसा था। बडे दुख की बात थी कि ऐसे साहसी व्यक्ति को ऐसी फटीचर बसाखियो का सहारा लेना पडा। लेकिन श्रीमती गाधी को पूरा भरोसा था कि वह जब भी चाहगी उनस छुटकारा पा लेंगी। दुर्भाग्य से ऐसा हो नही पाया।

ग्रौर जब उन्होने चुनाव करान का ग्रादेश दिया जो उनकी तबाही का कारण बन गये उस वक्त उन्होने सोचा कि इन बाता को उनस बेहतर कोई नही जानता है, न उनका बेटा न बसीलाल य दानो ही चाहत थे कि चुनाव ग्रान वाले कई बरसा क लिए टाल दिय जायें। उनको ऐसा लगता था कि वह जीत जायगी ग्रौर सबका दिखा देंगी कि वह कुछ भी करें पर जनता उनके साथ है। इससे एक बार फिर यह साबित हो जायगा कि जनता के साथ उनका सम्पक ग्रभी टूटा नही है ग्रौर यह कि उनम

अभी तक साहस.ज्ञावी है।

वह यह नहीं समझ पायी कि इतने दिन म सबस अलग रहत रहत जनता क साथ उनका सम्पक टूट चुका है। उन्हे एक सन्तोप तो मिल ही सकता था—जो लोग उनकी तुलना हिटलर और मुसोलिनी से करते हैं वे गलत साबित हो जायेंगे। हिटलर और मुसोलिनी ने कभी स्वतन्त्र चुनाव नहीं कराय थे, उन्होने कम स-कम यह तो किया।

श्रीमती गांधी को कभी यह डर नहीं था कि वह हार जायेंगी। जिस तरह रायबरेली के रिटर्निंग अफसर विनोद मल्होत्रा पर दबाव डाला गया—दो बार ओम मेहता ने और तीन बार धवन ने दिल्ली से टेलीफोन किया—कि वह दुबारा वाट डलवाने का या कम से-कम दुबारा वोट गिनवाने का आदेश दे दें, उसस यह तो पता चलता ही है कि वह कम से-कम यह तो चाहती ही थी कि उनके हारने की खबर का ऐलान जितनी देर म हो सके किया जाये। शायद वह सोचती थी कि अगर कांग्रेस को काफी सीटें मिल गयी तो वह बाद म किसी उप चुनाव म जीतकर आ जायेंगी।

लेकिन उत्तरी भारत के सभी राज्यो ने कांग्रेस का-पत्ता बिलकुल ही साफ कर दिया। उन्होने अपनी ताकत के बल पर अपनी निजी आजादी और उन्नीस महीनो मे जो कुछ भी खोया वह सब फिर स वापस ले लिया। उनका विद्रोह सिफ जबरी नसबन्दी के खिलाफ नहीं था, बल्कि उस पूरी व्यवस्था के खिलाफ था जिसम उनके लिए कोई रास्ता ही नहीं छोडा गया था कि अगर उनके साथ कोई अन्याय हो तो वे उसके खिलाफ कोई फरियाद भी कर सकें—पुलिस उनकी रिपोट दज करन स इकार करती थी, अखबार उनकी शिकायतें नहीं छापते थ अदालतें उनकी अर्जियो की सुनवाई नहीं करती थी और डर के मारे पडोसी तक उनकी मदद को नहीं आते थे।

कांग्रेस की सचमुच बहुत करारी हार हुई थी। वह जसे तसे करके सिफ 153 सीटें जीत सकी जबकि 1971 के चुनाव म उसने 350 सीटें जीती थी। जनता पार्टी और उसके साथी सी० एफ० डी० न मिलकर 299 सीटें जीतीं। उत्तर प्रदेश की 84, बिहार की 54 पजाब की 13, हरियाणा की 11 और दिल्ली की 7 सीटो मे से कांग्रेस एक भी सीट नहीं जीत पायी। वह मध्य प्रदेश मे 1, राजस्थान मे 1 पश्चिम बगाल मे 3, उडीसा मे 4 और असम तथा गुजरात मे 10 10 सीटें ही जीत पायी।

अलग अलग राज्यो मे उसे जितने प्रतिशत वोट मिले उसका ब्योरा इस प्रकार है (ब्रकट मे 1971 का प्रतिशत दिया गया है) पश्चिम बगाल 29 39 (28 23), उत्तर प्रदेश 25 04 (48 56) तमिलनाडु 22 28 (12 51) राजस्थान 30 56 (45 96), पजाब 35 87 (45 96), उडीसा 38 18 (38 46), मणिपुर 45 71 (30 02), महाराष्ट्र 46 93 (63 18), मध्य प्रदश 32 5 (45 6) करल 29 12 (19 75), कर्नाटक 56 74 (70 87) हिमाचल प्रदेश 38 3 (75 79), हरियाणा 17 95 (52 56), गुजरात 46 92 (44 85), बिहार 22 90 (40 06), असम 50 56 (56 98) और आ ध्र प्रदेश 57 36 (55 73)।

उत्तर म तो जनता पार्टी ने पूरा सफाया कर दिया, लेकिन दक्षिण म उसका बुरा हाल रहा। बस आन्ध्र प्रदश और कर्नाटक मे उस एक एक और तमिलनाडु म दो सीटें मिलीं। ज़ाहिर है कि जनता लहर विन्ध्याचल पवन को पार नहीं कर पायी थी। यह भी ज़ाहिर था कि दक्षिण भारत म ज्यादतियां भी कम हुई थी और यातनाओ की कहानियाँ अभी सामने नहीं आयी थी।

जनता पार्टी और सी० एफ० डी की इतनी शानदार जीत पर, जो जनतन्त्र और आजादी के नारे पर चुनाव लड़ी थी भारत के बुद्धिजीवियो और पश्चिमी देशो

के लोगा को बहुत ताज्जुब हुआ—दोना ही का जनता से कोई सम्पक नही था। वे इतनी सी बात नही समझते थे कि गरीब को भी अपनी आजादी से उतना ही प्यार होता है जितना किसी और को। हो सकता है कि उनके स्वय म बहुत बारीकियाँ न रही हो, या वह किसी खास विचारधारा की कसौटी पर खरा न उतरता हो, लेकिन जिस चीज को वे जनतन्त्र समझते थ उस पर उनकी आस्था अडिग थी। एक वोट से उनके हाथ मे यह ताकत आ गयी थी कि वे अपनी पसन्द के आदमी को चुनें और उन्होने इस ताकत को यह साबित करने के लिए इस्तेमाल किया कि असली मालिक वही हैं। श्रीमती गाधी और उनकी पार्टी ने यही अधिकार उनसे छीन लिया था। इस मनमानी के खिलाफ यही उनका फसला था।

उन दिनो एक मजाक आम था कि जहाँ जहाँ सजय गया वहाँ-वहाँ काग्रेस की हार हुई। लेकिन श्रीमती गाधी ऐसा नही समझती थी। एक अखबार को दिये गये इटरव्यू के दौरान उन्होंने कहा कि चुनाव म काग्रेस की हार का दाष सजय के मत्थे मढ दना बातो को बहुत भतही ढग से देखना है। उन्होन कहा कि सजय का पाच सूत्री कायक्रम सरकार का कायक्रम था, और नहरू के जमाने मे 1950 के बाद के वर्षों स चला आ रहा था।

उन्होने 22 माच को काग्रेस वर्किंग कमेटी की मीटिंग म भी सजय की तरफ स सफाई पश की। पहले तो वह इस मीटिंग म आयी नही, वह यह जानना चाहती थी कि लागा का अब भी उनकी जरूरत है या नही। बाद मे उन्हाने इस बात का मौका दिया कि उन्हे मीटिंग म जाने के लिए समझा-बुझाकर राजी कर लिया जाये।' जब सिद्धार्थशकर र न बसीलाल को छ साल के लिए काग्रेस से निकाल देने और सजय की चाडाल चौकडी के दूसरे लागो के खिलाफ कडी कारवाई करने की माँग की तो वह चीखकर बोली "मुझे निकाल दो! मुझे निकाल दो!"

श्रीमती गाधी बिना किसी खतरे के इस तरह की बात कह सकती थी। वह जानती थी कि 5 राजेन्द्रप्रसाद रोड पर उनके चारा ओर जो लोग बैठे हुए थे वे उनके खिलाफ कुछ भी नही कर सकते थे। इन लोगा म कोई हिम्मत नही थी कोई दम नही था। ग्यारह साल तक वे चू भी किये बिना उनका हुक्म बजाते आये थे और उनके गुण गाते रहे थे। फिर इसम ताज्जुब ही क्या है कि काग्रेस वर्किंग कमेटी न एक बार फिर उनके नतत्व के बारे मे अपना विश्वास प्रकट करके विस्तार के साथ बहस करन का काम 12 अप्रल के लिए टाल दिया। इस तरह श्रीमती गाधी को अपना खास मकसद पूरा करने के लिए—पार्टी पर अपना कब्जा बनाये रखने और जिन लोगा न उनका साथ दिया था उन्ह बचान के लिए—अगली चाल सोचने का मौका मिल गया।

इसके बाद अगल कुछ हफ्तो तक पार्टी पर कब्जा करन के लिए जबदस्त खीचातानी चलती रही, एक तरफ श्रीमती गाधी और उनके लोग थे और दूसरी ओर थे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का ओर झुकाव रखनवाल उनके आलोचक[1] के साथ देवकान्त बरुआ चह्वाण और उनके साथी दम साधे दूर म तमाशा दखत रह जसा कि सकट के समय ये लोग हमेशा स करत आये थ। य लाग इस बात का इन्तजार कर रह थे कि देखें आखिर मे नतीजा क्या होता है और बीच बीच मे जब कभी ऐसा

1 जब भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ झुकाव रखनवाली भूतपूर्व ससद-सदस्या श्रीमती सुभद्रा जोशी श्रीमती गाधी से मिलने गयी तो वह बडा रुखाई स मिलीं। श्रीमती गाधी न कहा कि उनक दगाबाज दोस्तो ने उन्हें धोखा दिया था।

लगता था कि हालत और बिगड जायेगी और पार्टी मे फूट पड जाने का खतरा है तो ये लोग भी थोडा सा सहारा दे देते थे।

श्रीमती गाधी और उनके साथियो पर जो हमला हो रहा था उसका रुख दूसरी तरफ मोडने के लिए उनके समथक बरुआ के इस्तीफे की माग करने लगे। उनके खिलाफ इल्जाम यह था कि उन्होने पार्टी को लोकसभा का चुनाव लडने के लिए ठीक से तयार नही किया था। इसकी काट करने के लिए चन्द्रजीत यादव के घर पर ससद के हारे हुए सदस्य और राज्यो के कुछ विधायक जमा हुए और उन्होने सजय, बसीलाल विद्याचरण शुक्ला और ओम मेहता को निकाले जाने की माग की।

चालो और जवाबी चालो के इस माहौल मे सिद्धार्थशकर रे, चन्द्रजीत यादव और उनके दोस्तो ने बरुआ को काग्रेस की वर्किंग कमेटी और पार्लियामेटरी बोड से चमीलाल का इस्तीफा मागने पर राजी कर लिया। इस पर श्रीमती गाधी आगबबूला हो गयी और उन्होने यह बात जाहिर कर दी कि वह इस बात को कतई बर्दाश्त नही करेंगी कि जो लोग उनके करीब थे उनमे से किसी एक को अलग करके पार्टी की हार के लिए जिम्मेदार ठहराया जाय। उनके ग्रुप ने बरुआ के इस्तीफे की माँग तेज करके जवाबी वार किया। उन्होने यह भी माग की कि काग्रेस वर्किंग कमेटी की मीटिंग कुछ दिन के लिए टाल दी जाये और ए० आई० सी० सी० की मीटिंग की जाये जिसमे बरुआ की जगह नया अध्यक्ष चुना जाये। सकट गहरा होता गया। पार्टी फूट के रास्ते पर आग बढती जा रही थी।

एक दिन शाम को श्रीमती गाधी के घर पर एक मीटिंग हुई जिसमे उन्होने अपने बटुए मे से बसीलाल के इस्तीफे का खत निकालकर बरुआ को नही बल्कि चह्वाण को दे दिया। लेकिन इससे पहले उन्होने सबसे इस बात पर हामी भरवा ली थी कि पूरी वर्किंग कमेटी एक साथ इस्तीफा देगी और सभी लोग पार्टी की हार के लिए बराबर के जिम्मेदार होंगे।

यह पार्टी पर फिर से कब्जा करने की चाल थी। सबसे पहले चन्द्रजीत यादव ने कहा कि सब लोगो के साथ इस्तीफा देने के सुझाव से उनका कोई सम्बन्ध नही है। वायलार रवि ने भी बरुआ को पत्र लिखकर अपने दस्तखत वापस ले लिये और कहा कि यह चाल इसलिए चली गयी है कि वर्किंग कमेटी चुनाव के नतीजो के बारे मे छान-बीन न कर सके। सिद्धार्थ बाबू ने भी कलकत्ते से कहलवा भेजा कि सब लोगो के एक साथ इस्तीफा देने की बात मे अब दम नही रह गया है। बरुआ ने कहा कि केरल प्रदेश काग्रेस कमेटी के प्रेसीडेंट ऐंथनी ने भी त्रिवेन्द्रम से टेलीफोन करके उनसे कहा था कि वर्किंग कमेटी चुनाव मे हार की वजह का पता लगाने की अपनी जिम्मेदारी से कैसे बच सकती है। बरुआ ने अखबारवालो को अपने घर पर बुलाकर यह ऐलान कर दिया कि इस बीच मे जो कुछ हुआ है उसे देखते हुए उन्होने इस पूरे सवाल पर बिलकुल नये सिरे से विचार किया है। उन्होने कहा कि पार्टी की करारी हार की छानबीन करने के लिए वर्किंग कमेटी की मीटिंग पहले बतायी गयी तारीखो को ही होगी।

श्रीमती गाधी ने धमकी दी कि वह वर्किंग कमेटी की मीटिंग मे नही आयेंगी और इस तरह एक बार फिर पार्टी के टूट जाने का खतरा पैदा हो गया। इसी बीच बरुआ ने मुख्यमत्रियो और प्रदेश काग्रेस कमेटियो के अध्यक्षो को भी बातचीत मे हिस्सा लेने को बुलावा देकर वर्किंग कमेटी का दायरा और बढा लिया। वर्किंग कमेटी की मीटिंग मे एक दिन पहले श्रीमती गाधी ने एक और बडी चालाकी की चाल चली। उन्होने काग्रेस के अध्यक्ष और वर्किंग कमेटी के दूसरे सदस्यो को एक पत्र लिखकर

चुनाव मे पार्टी की हार की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ओढ ली।

अपने इस खत मे उन्होने लिखा था 'सरकार के नेता की हैसियत से मैं बिना किसी सकोच के इस हार की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेती हूँ। मुझे अपने लिए बहाने या बच निकलने के रास्ते ढूढने में कोई दिलचस्पी नहीं है। मुझे न किसी चाडाल चौकडी की तरफ से सफाई पेश करनी है और न ही किसी ग्रुप के खिलाफ लडना है। मैंने कभी किसी ग्रुप के नेता की हैसियत से काम नहीं किया है।

वर्किंग कमेटी की मीटिंग 12 अप्रल को हुई। चूकि सारे मुख्यमत्री और प्रदेश काग्रेस कमेटियो के अध्यक्ष भी वहाँ मौजूद थे इसलिए वह मीटिंग सिर्फ पिटे हुए मोहरो का एक बहुत बडा जमाव था जिन्हे यह मालूम करने के लिए बुलाया गया था कि आखिर गडबडी कहाँ हुई। लेकिन श्रीमती गाधी का कहीं पता नहीं था।

बिहार के उनके एक चमचे सीताराम केसरी ने पूछा, 'उनके बिना मीटिंग कैसे हो सकती है?" दूसरे लोगो ने भी इसी तरह के सुझाव दिये। कुछ और लोगो ने कहा, "आइये, हम सब लोग 1 सफदरजग रोड चलें और इन्दिराजी को मनाकर मीटिंग मे ले आयें।' कुछ देर तक मीटिंग मे गडबडी मची रही। आखिरकार बरुआ, रेड्डी और कमलापति त्रिपाठी मीटिंग मे से उठकर बाहर आये और लपककर एक मोटर पर बैठ गये। तीनो सीधे श्रीमती गाधी की कोठी पर गये और उन्हे अपने साथ मीटिंग मे ले आये। सभी ने हाथ जोडकर उनका स्वागत किया। वह जानती थी कि उनका जादू अभी खत्म नहीं हुआ है।

वर्किंग कमेटी की बहस बहुत शान्त भाव से शुरू हुई, लेकिन जब हरियाणा के मीठा बोलनेवाले और नरमी का व्यवहार करनेवाले मुख्यमत्री बनारसीदास गुप्ता ने अपने पुराने गुरु बसीलाल के खिलाफ तरह-तरह के इलजाम लगाकर अपने मन का बोझ हल्का करना शुरू किया तो लोगो के कान खडे हुए। बनारसीदास गुप्ता ने कहा कि उनके राज्य की सरकार दिल्ली मे बैठकर बसीलाल चलाते थे। उनका अपना काम इतना था कि बसीलाल के लिए, जो तब रक्षामत्री थे बडी बडी मीटिंगो का बन्दोबस्त करायें। उन्हें हुक्म था कि जिस मीटिंग मे भी बसीलाल बोलें उसके लिए ट्रको, बसो और दूसरे तरीको से 1 00 000 आदमी जुटाये जायें। और हर बार जब बसीलाल किसी मीटिंग मे बोलते थे तो काग्रेस के 10 000 वोट कम हो जाते थे। किसी ने पूछा गुप्ताजी आप पहले क्यों नहीं बोले?' गुप्ताजी ने जवाब दिया 'मैं बुजदिल था।"

मीटिंग मे श्रीमती गाधी ने बसीलाल की तरफ से कोई सफाई पेश नहीं की, लेकिन जब तीसरे पहर सिद्धार्थशकर रे ने बसीलाल को निकाल देने का सुझाव रखा तो उन्होने उसके खिलाफ अपनी आवाज उठायी। वर्किंग कमेटी मे उनके एक दोस्त ने यह सुझाव रखा कि बसीलाल को चौबीस घटे के अन्दर इस्तीफा देने का मौका दिया जाय। लेकिन यह मौका नहीं दिया गया। अगले दिन फिर वर्किंग कमेटी की मीटिंग हुई और उसमे बसीलाल को छ साल के लिए पार्टी की बुनियादी मेम्बरी से निकाल दिया गया। श्रीमती गाधी इस मीटिंग मे नहीं आयीं। दूसरे लोगो पर लगभग कोई आँच नहीं आयी। विद्याचरण शुक्ला को हल्की सी डाट पडी और ओम मेहता के बारे मे तो एक शब्द नहीं कहा गया वह बेचारे दिन भर दया की भीख माँगते फिरे थे। सजय के खिलाफ कोई कारवाई करने का सवाल ही नहीं उठता था, क्योंकि वह तो काग्रेस का मेम्बर ही नहीं था। (कहा जाता है कि एक दिन सुबह श्रीमती गाधी बरुआ के घर गयी थी और उनसे अपने बेटे के लिए फरियाद की थी। बरुआ ने मे एक मित्र के सामने यह माना, आखिरकार मैं हूँ तो इसान ही।')

श्रीमती गाधी खुद साफ बच गयी। न सिर्फ यह कि वर्किंग कमेटी

'हमारी सम्मानित नेता' कहा बल्कि किसी में इतनी हिम्मत भी नहीं हुई कि उनकी तरफ उंगली तक उठाता।

वर्किंग कमेटी ने बरुआ का इस्तीफा मंजूर कर लिया—जैसा कि पहले ही से तय कर लिया गया था—और इस बीच के अरसे के लिए स्वर्णसिंह को अध्यक्ष चुन लिया। इंदिराजी यह नहीं चाहती थीं, वह ब्रह्मानन्द रेड्डी को कांग्रेस का अध्यक्ष बनवाना चाहती थीं। लेकिन बाद में चलकर मई में वह इसमें कामयाब हो गयी, लेकिन चुनाव में टक्कर होने के बाद। रेड्डी को 317 वोट मिले और सिद्धार्थशंकर रे को 160। पिछले मंत्रिमण्डल के स्वास्थ्य मंत्री करणसिंह भी मैदान में थे लेकिन उन्हें बहुत ही थोड़े वोट मिले। मध्य प्रदेश के पांच कांग्रेसी नेता द्वारकाप्रसाद मिश्रा ने श्रीमती गांधी को जिताने में बहुत मदद की—जैसा कि 1969 में वह सिंडीकेट के खिलाफ कर चुके थे।

जनता पार्टी को इस तरह के किसी संकट का सामना नहीं करना पड़ा, लेकिन चूंकि वह चार पार्टियों का गठजोड़ थी इसलिए कहीं कहीं खींचातानी के कुछ आसार जरूर दिखायी दिये। उन्हें अगला प्रधानमंत्री चुनना था। इसके लिए तीन दावेदार थे—मोरारजी, जगजीवनराम और चरणसिंह, खास तौर पर पहले दो।

जनसंघ और संगठन कांग्रेस के लोग मोरारजी के पक्ष में थे और सोशलिस्ट और ज्यादातर युवा तुर्क जगजीवनराम को चाहते थे। भारतीय लोकदल अपने नेता चरणसिंह को प्रधानमंत्री बनवाना चाहता था।

बहरहाल, यह मामला जयप्रकाश पर छोड़ दिया गया जो चुनाव के बाद एकछत्र नेता बनकर उभरे थे। बहुत से लोगों की शंकाओं के बावजूद अंत में जीत जनतन्त्र में उनकी आस्था और जोर जुल्म के खिलाफ उनकी आवाज की ही हुई थी। उनकी सम्पूर्ण क्रांति की कल्पना साकार हो रही थी। वह खुद नेता के चुनाव के झमेले से अलग रहना चाहते थे और उन्होंने अशोक मेहता और मधुलिमये को अपनी यह इच्छा बता भी दी थी। लेकिन बाद में उन्हें इस बात के लिए तैयार कर लिया गया कि वह सभी लोगों की राय मालूम करके फैसला बता दें। आचार्य कृपलानी से उनकी मदद करने को कहा गया।

नये चुने गये संसद सदस्यों से—जनता पार्टी (271), सी० एफ० डी० (28), मार्क्सवादी (22), अकाली (8), किसान मजदूर पार्टी (5), रिपब्लिकन पार्टी (2) और लगभग एक दर्जन और सदस्यों से—24 मार्च को गांधी शांति प्रतिष्ठान की इमारत में जमा होने को कहा गया। लेकिन मीटिंग शुरू होने से पहले ही राजनारायण ने भारतीय लोकदल के नेता चरणसिंह का एक खत लाकर दिया, जो उस समय अस्पताल में थे। इस पत्र में कहा गया था कि प्रधानमंत्री के पद के लिए भारतीय लोकदल मोरारजी देसाई के पक्ष में है। पहले यह समझा जाता था कि शायद चरणसिंह खुद टक्कर लें, लेकिन अब वह मैदान से हट गये थे।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने इस बात का पता लगाने में कोई हिस्सा नहीं लिया कि मोरारजी और जगजीवनराम के बीच ज्यादा लोग किसके साथ हैं। पार्टी के कुछ मेम्बरों ने निजी तौर पर कहा कि चूंकि वे लोग इमर्जेंसी के बीस महीनों के दौरान पिछली सरकार के कुकर्मों का पर्दाफाश करेंगे इसलिए अगर जगजीवनराम नयी सरकार के नेता चुन गये तो इस बात में उनको परेशानी होगी क्योंकि उस दौर में वह श्रीमती गांधी की सरकार में शामिल रह चुके थे। लेकिन पार्टी का सरकारी रवैया यह था कि वह मोरारजी के मुकाबले जगजीवनराम को ज्यादा पसन्द करती।

जब नेता का फैसला करने के लिए इस बुनियादी महत्त्व की मीटिंग के लिए संसद के सदस्य जमा होने लगे तो हॉल में वोट देने की छपी हुई पर्चियां लगायी गयी। लेकिन इससे पहले कि लोगों की राय मालूम करने का सिलसिला शुरू होता, राज नारायण ने सुझाव रखा कि फैसला जयप्रकाश पर छोड़ दिया जाये, मधुलिमये ने इस सुझाव का समर्थन किया। जगजीवनराम और बहुगुणा दोनों हॉल के बाहर इन्तजार कर रहे थे। जब उन्हें पता चला कि लोगों की राय नहीं ली जायेगी तो वे वहाँ से उठकर चले गये। उनको यह बात अच्छी नहीं लगी कि सभी लोगों की राय मालूम करने का जो सुझाव पहले मान लिया गया था उसे आजमाने से पहले ही छोड़ दिया गया।

जयप्रकाश अब भी राय मालूम कर लेने के पक्ष में थे लेकिन कृपलानी ने कहा कि इसमें शक की कोई गुंजाइश हो नहीं है कि ज्यादा लोग मोरारजी के पक्ष में हैं। इसलिए राय मालूम करने का विचार त्याग दिया गया और कृपलानी ने ऐलान कर दिया कि नेता मोरारजी हैं।

मोरारजी को 24 मार्च को भारत के चौथे प्रधानमंत्री की शपथ दिलायी गयी, जिस पद के लिए वह पहले भी कम से कम दो बार कोशिश कर चुके थे। अब उनकी बरसों पुरानी साध पूरी हुई थी।

कई दिन तक वह अपने मंत्रिमण्डल का ऐलान नहीं कर सके क्योंकि वह सी० एफ० डी० के जनता पार्टी में मिल जाने की राह देख रहे थे। जगजीवनराम इसके लिए इस बात पर तैयार थे कि उन्हें उप प्रधानमंत्री बना दिया जाये। लेकिन मोरारजी यह पद चरणसिंह को देने का वायदा कर चुके थे। दो उप प्रधानमंत्री रखना कुछ अटपटा-सा लगता था। मोरारजी बड़े धर्मसंकट में फँस गये थे। चरणसिंह ने मोरारजी को इस दुविधा से छुटकारा दिला दिया और जगजीवनराम के आ जाने के लिए रास्ता खोल दिया। जिस तरह नेता के सवाल का फैसला किया गया था वह जगजीवनराम को अच्छा नहीं लगा था। उन्होंने ऐलान कर दिया कि उनकी पार्टी सरकार में शामिल नहीं होगी।

जब मैंने उनसे पूछा कि आप सरकार में शामिल होना क्यों नहीं चाहते, तो उन्होंने सिर्फ इतना कहा कि उन्होंने कांग्रेस फिर वही मंत्री बनने के लिए नहीं छोड़ी थी। उन्होंने यह भी कहा कि 'कोई मुझसे मेरी मंत्री की कुर्सी छीन तो नहीं रहा था।" फिर भी उन्होंने यह बात जरूर साफ कर दी कि उनकी पार्टी सरकार का साथ देने का तो वचन देगी लेकिन संसद के बाहर वह अपनी अलग हैसियत बरकरार रखेगी।

जयप्रकाश ने जगजीवनराम को मंत्रिमण्डल में शामिल हो जाने पर राजी करने की अपनी कोशिशें जारी रखी। दरअसल, जहाँ जयप्रकाश ने सिरा छोड़ा था वहाँ से एक छोटी-सी कमेटी ने उसे सँभाल लिया और समझौता करा दिया।

तय यह हुआ कि शासक मोर्चे में जो खास-खास पार्टियाँ शामिल हैं उनमें से हर एक के दो-दो मंत्री मंत्रिमण्डल में होंगे—भारतीय लोकदल के प्रतिनिधि होंगे चरणसिंह और राजनारायण, जिनके मंत्रिमण्डल में शामिल किये जाने पर चरणसिंह अड़ गये थे, जनसंघ के अटलबिहारी वाजपेयी और एल० के० अडवाणी, सी० एफ० डी० के जगजीवनराम और बहुगुणा, संगठन कांग्रेस के रामचन्द्र और सिकन्दर बख्त, सोशलिस्टों के जार्ज फर्नांडीज और मधु दण्डवते, युवा तुर्कों और दूसरे लोगों में से मोहन धारिया और पुरुषोत्तमलाल कौशिक, और अकालिया के प्रकाशसिंह बादल। कुल तेरह नाम थे, जो मनहूस गिनती समझी जाती है।

सी० एफ० डी० सरकार में शामिल हो गयी होती लेकिन जब के

नाम का ऐलान किया गया तो जगजीवनराम चिढ गये। पिछले दिन जो तरह नामो पर समझौता हुआ था उसके बजाय उन्नीस नामो का ऐलान किया गया। छ नये नाम थे एच० एम० पटेल, बीजू पटनायक, प्रतापचन्द्र 'चन्द्र', रवीन्द्र वर्मा, शान्तिभूषण और नानाजी देशमुख। 25 मार्च की आधी रात को जगजीवनराम न मोरारजी को टेलीफोन करके बता दिया कि वह मन्त्रिमण्डल मे शामिल नही हो सकेंगे।

जगजीवनराम को इन नये लोगो से कोई शिकायत नहीं थी, लकिन उन्हें यह बात बुरी लगी थी कि उनकी सलाह क्यो नही ली गयी। वह और बहुगुणा दोनो ही शपथ लेने नही गये।

फर्नांडीज ने भी, जिनका जगजीवनराम को राजी करने मे बुनियादी हाथ रहा था, न जाना ही बहतर समझा। शायद उन्होन सोचा कि अगर अभी वह भी मन्त्रिमण्डल के बाहर रहें तो उन्हे जगजीवनराम को अपना इरादा बदलने पर राजी करने मे ज्यादा आसानी होगी। नानाजी देशमुख भी जगजीवनराम के बहुत करीब थे, उन्होने भी यही रवया अपनाया और अपनी जगह ब्रजलाल वर्मा को मन्त्रिमण्डल म शामिल करने का सुझाव दिया।

इस बार भी जयप्रकाश ने ही इस गुत्थी को सुलझाया, उनके सन्देश से सारा काम बन गया। उन्होने जगजीवनराम से कहा कि आप एक अकेले आदमी नही बल्कि पूरी एक ताकत है 'जिसके बिना नये भारत का ढाँचा नही बनाया जा सकता।' आखिरकार, जगजीवनराम और बहुगुणा भी मन्त्रिमण्डल म शामिल हो गये। उन्होंने अपने लिए कोई खास दर्जा या कोई खास मन्त्रालय भी नही मागा। फर्नांडीज ने भी, जो जान बूझकर मन्त्रिमण्डल मे शामिल नही हुए थे, शपथ ले ली।

मन्त्रिमण्डल बनने के नाटक का यह अंतिम अक था, लेकिन पर्दा अभी नही गिरा था। सी० एफ० डी० को यह गिला था कि उसके साथ 'हर कदम पर विश्वासघात किया गया, जनता पार्टी को यह शिकवा था कि 'दूसरी तरफ स हर बात अपनी मर्जी की करवाने' की कोशिश की जाती है। जैस जसे दिन बीतते गये, दोनो के बीच की खाई भी चौडी होती गयी।

इस मनमुटाव स सरकार के काम काज मे कोई कठिनाई पदा नही हुई। सच तो यह है कि चुनाव के वक्त किये गय कई वायदे तो बडी जल्दी पूरे कर दिये गये—नागरिक स्वतन्त्रताएँ वापस कर दी गयी, 1971 म बगला देश की लडाई के दिनो म जो बाहरी इमर्जेंसी लागू की गयी थी वह हटा दी गयी (भीतरी इमर्जेंसी तो लोकसभा मे विपक्ष को पूरा बहुमत मिल जाने पर कांग्रेस ने खुद ही 21 मार्च को हटा दी थी।) आॅल इडिया रेडियो और टलीविजन के लिए स्वायत्त कार्पोरेशन कायम करने का ऐलान कर दिया गया। मीसा मे जो लोग अभी तक जेलो म बन्द थे उन्ह रिहा कर दिया गया। आर्थिक अपराधी भी छोड दिये गये। सिर्फ नक्सलवादियो को यह आजादी नही दी गयी। (बाद मे उन्हान जयप्रकाश स बीच मे पडन को कहा और उन्हे कुछ कामयाबी भी मिली।)

फर्नांडीज को, जो बडौदा डायनामाइट केस म मुख्य अभियुक्त थ पहले जमानत पर रिहा किया गया और बाद मे जब सी० बी० आई० के डायरेक्टर डी० सेन ने, जो इस मामले को देख रह थे मोरारजी स कहा कि मुकदम मे 'कोई खास दम नही है तो मुकदमा ही वापस ले लिया गया। उनके साथ बाकी जिन 24 लोगो पर इलजाम लगाया गया था उन्हें भी रिहा कर दिया गया।

लेकिन मुकदमा वापस लिए जान स पहल फर्नांडीज न भी अपन दिल का सारा गुबार निकाल लिया। उन्होंने मजिस्ट्रेट स कहा, 'जिस वक्त सरकार के काबू म

रहकर काम करनेवाला रेडियो और सेंसर की जंजीरो मे जकड़े हुए अखबार सारी दुनिया को यह बता रहे थे कि किस तरह भारत की जनता ने श्रीमती गांधी की डिक्टेटरशिप और उनकी पीढ़ी दर पीढ़ी चलनेवाली हुकूमत के आगे सर झुका दिया है, उस वक्त मैं उनकी फासिस्ट सरकार के खिलाफ अंडरग्राउंड विरोध संगठित कर रहा था। इस काम मे जो औरतें और मर्द थे उनमे स्वतन्त्रता और आजादी के आदर्श कूट कूटकर भरे हुए थे, जो डिक्टेटरशिप के साथ किसी तरह की समझौतेबाजी के लिए तैयार नही थे, जो मानव अधिकारो की रक्षा के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगा देने को तैयार थे, जो अपने दृढ विश्वासो की कीमत चुकाने को तैयार थे।"

यह तो शुरू से ही मालूम था कि इस मुकदमे मे कोई दम नही था, वह गढ़ा हुआ मुकदमा था।

दस साल मे पहली बार विचार व्यक्त करने की पूरी आजादी मिली थी जब अखबारो पर से सारी पाबंदियाँ हटा ली गयी थी। सच बात तो यह है कि इमर्जेंसी से पहले भी अखबार जरूरत से ज्यादा शरीफ जरूरत से ज्यादा भले थे और ऐसी खबरें न छापकर, जिनसे सरकार को कोई परेशानी हो उसे खुश रखने को जरूरत से ज्यादा तैयार रहते थे।

अदालतो पर भी अब कोई दबाव नही रह गया था। यह ऐलान कर दिया गया कि इमर्जेंसी के दौरान जिन जजो को बदलकर किसी दूसरी जगह भेज दिया गया था या जिनका ओहदा हटा दिया गया था, उन सबको उनकी पुरानी जगहो पर वापस भेज दिया जायेगा। कार्यवाहक राष्ट्रपति ने 28 मार्च को संसद के दोनो सदनो के मिले जुले अधिवेशन मे यह ऐलान किया कि जनता सरकार बुनियादी अधिकारो और नागरिक स्वतन्त्रताओ पर लगी हुई बची खुची पाबन्दियाँ भी हटा लेगी कानून का शासन फिर कायम कर देगी अखबारो को अपने विचार आजादी के साथ व्यक्त करने का अधिकार वापस कर देगी और इस बात का पक्का प्रबन्ध करने के लिए कानून बना देगी कि अदालतो की ओर से स्वतन्त्र रूप से छानबीन कराये बिना किसी भी राजनीतिक या सामाजिक संगठन को गैर कानूनी न ठहराया जाये।

सरकार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जमाअते इस्लामी और आनन्द मार्ग पर से पाबन्दी हटा ली।

उसने यह भी वायदा किया कि वह मीसा आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन से सम्बंधित कानून और जनता के प्रतिनिधियो के चुनाव से सम्बंधित कानून मे किये गये उस संशोधन को भी रद्द कर देगी जिसके जरिये कुछ खास लोगो को चुनाव के दौरान किये जानेवाले अपराधो से बरी रखा गया है। तीस साल मे पहली बार ऐसा हुआ था कि कांग्रेस पार्टी जो लगातार शासन करती आयी थी, आज विपक्ष की कुर्सियो पर बैठी थी, बुझी-बुझी और उदास-सी।

प्रधानमंत्री के सेक्रेटेरियट को काट छाँट दिया गया और उसे अब सिर्फ 'दफ्तर' कहा जाने लगा। 'रा' मे भी काफी कतर-ब्योंत कर दी गयी और परिवार नियोजन कार्यक्रम को बदलकर परिवार कल्याण कार्यक्रम कर दिया गया। जिन अफसरो ने इमर्जेंसी के दौरान खुलेआम संजय का साथ दिया था उन्हे बदलकर दिल्ली से बाहर दूसरी जगहो मे भेज दिया गया।

दूसरी ओर इमर्जेंसी लागू करनेवाले भी मुसीबत मे फँस गये। पर उन्हें अब भी अपने किये का पछतावा नही था। श्रीमती गांधी ने कहा कि उनकी हार ... यह थी कि उन्होंने चुनाव कराने के लिए गलत वक्त चुना। एक बार फिर ... वालो के खिलाफ जहर उगला—जिसका उन्हें खब्त हो गया था—और

पर यह आरोप लगाया कि उन्होंने ज्यादतियों के किस्से बहुत बढ़ा चढ़ाकर उछाले थे। संजय ने कहा कि वह राजनीति से संन्यास ले लेगा, लेकिन साथ ही उसे इस बात का भी पूरा यकीन था कि साल भर के अन्दर ही उसका और उसके ग्रुप का पलड़ा फिर भारी हो जायेगा। उसने कहा कि जनता पार्टी को अपने भाग्य को सराहना चाहिए कि मोरारजी प्रधानमंत्री हो गये, वरना अगर कहीं जगजीवनराम प्रधानमंत्री बन जाते तो और भी बुरा हाल होता। अंबिका सोनी ने युवक कांग्रेस के अध्यक्ष के पद से इस्तीफा दे दिया और खुलेआम संजय की आलोचना की।

धवन ने अपना इस्तीफा श्रीमती गांधी को उसी जमाने में दे दिया था जब वह नया प्रधानमंत्री चुने जाने के वक्त तक के लिए प्रधानमंत्री का काम-काज देख रही थीं। यूनुस ने कहा कि जल्द ही वे फिर वापस आ जायेंगे। उन्होंने विलिंगडन क्रीसेंट में अपना बंगला खाली कर दिया और दिल्ली में एक निजी मकान में रहने लगे। उनका बँगला बाद में श्रीमती गांधी को दे दिया गया। बंसीलाल को जुनून का दौरा पड़ गया लेकिन कुछ दिन बाद वह ठीक हो गये और उन्होंने कहा कि उनका कांग्रेस से निकाला जाना 'उन लोगों की तिकड़मों' का ही एक हिस्सा था। ओम मेहता का रवैया यह था कि जैसे इमर्जेंसी से उनका कभी कुछ लेना देना ही नहीं था। उन्होंने कहा, 'इमर्जेंसी के दौरान जो कुछ हुआ उसका समर्थन करते हुए मेरा एक भी ऑर्डर दिखा दीजिये।' विद्याचरण शुक्ला ने उसी पुरानी अकड़ के साथ कहा कि सारा कसूर तो अखबारों का या सूचना देनेवाले माध्यमों का खुद अपना है। उन्होंने अपनी तरफ से ऐसे काम करने का जिम्मा ले लिया जो खुद मुझे नहीं पसन्द थे। सिद्धार्थशंकर रे को अपने किये पर पछतावा तो नहीं था लेकिन यह साबित करने के लिए कि इमर्जेंसी में और उन उन्नीस महीनों के दौरान जो कुछ हुआ उसमें उनका कोई हाथ नहीं था, उन्होंने श्रीमती गांधी का साथ छोड़ दिया।

जिन अफसरों की संजय, धवन और दूसरे लोगों के साथ मिलीभगत थी उन्होंने साफ इंकार कर दिया कि इन सब बातों में उनका कोई हाथ था। खैर यह तो सभी कहते थे—और कांग्रेसी उनसे कोई अलग नहीं थे—कि इमर्जेंसी के दौरान जो 'भयानक बातें' हुई उनका उन्हें कभी पता नहीं चला।

श्रीमती गांधी और धवन को छोड़कर ऐसा एक भी आदमी नहीं था जिसने संजय को दोष न दिया हो। जो लोग श्रीमती गांधी के सबसे करीब थे उन्होंने भी कहा, 'सारे झगड़े की जड़ वही था'। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने भी जिसने इमर्जेंसी का समर्थन किया था और जिसे लोकसभा में कुल सात सीटें मिली थीं, संजय और उसकी चांडाल चौकड़ी' को दोषी ठहराया।

लेकिन अब ये सब बीती हुई बातें थीं। अब हवा में आजादी की गूंज थी। जोश था। खुशी थी। ऐसा लगता था जैसे अँधेरे से अचानक उजाले में आ गये हों। एक दूसरी ही तरह की उमंग थी, ऐसी उमंग जो 1947 में, जब देश को ब्रिटिश हुकूमत से आजादी मिली थी उस वक्त भी नहीं दिखायी देती थी। लोग देश के भविष्य के लिए मेहनत करने और कुर्बानी देने को तैयार थे।

जनता सी० एफ० डी० सरकार इस माहौल का पूरा फ़ायदा उठाना चाहती थी और जिन राज्यों में मार्च के चुनाव में उसने कांग्रेस का सफ़ाया कर दिया था उनमें वह विधानसभाओं के नये चुनाव कराना चाहती थी। इसका मतलब था कि सभी उत्तरी राज्यों में नये चुनाव हों—उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और बिहार में, और इनके अलावा उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में भी। इस समय तक चह्वाण विपक्ष की कांग्रेस संसदीय पार्टी के नेता चुने जा चुके थे। इस

काम में उनका सहयोग माँगा गया। यह इसलिए जरूरी समझा गया कि राज्यसभा में बहुमत होने के कारण कांग्रेस संविधान में संशोधन करने और विधानसभाओं की अवधि फिर पहले की तरह ही पाँच साल कर देने की सरकार की योजना पर पानी फेर सकती थी। (संविधान में कोई भी संशोधन दोनों सदनों में दो तिहाई बहुमत से ही किया जा सकता है।) चह्वाण सहयोग देने पर राजी हो गये। विधानसभाओं की अवधि छः साल से घटाकर पांच साल कर देने और इस तरह फिर 42वें संशोधन से पहलेवाली स्थिति बहाल कर देने के लिए 7 अप्रैल को संविधान में संशोधन (43वां) का प्रस्ताव रखा गया। सरकार इसे इसी बैठक में मंजूर करा लेना चाहती थी। इसका मतलब था कि गुजरात, केरल, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मणिपुर और सिक्किम को छोड़कर बाकी सभी राज्यों में नये चुनाव हों।

चह्वाण शुरू शुरू में तो यह समझ नहीं पाये कि इसके क्या क्या नतीजे होंगे और उन्होंने अपनी पार्टी के मेम्बरों से सलाह मशविरा भी नहीं किया था। कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों ने बहुत दिन तक इसका विरोध किया। चह्वाण ने कहा कि उन्होंने सिर्फ इस बात के लिए अपनी रजामन्दी दी है कि यह बिल पेश किया जाये, उसको मंजूर करने की नहीं। वह बिहार की विधानसभा भंग करने में पूरी तरह साथ देने को तैयार थे—उस राज्य की विधानसभा जहाँ जयप्रकाश के आन्दोलन का सबसे ज्यादा असर पड़ा था। और कहीं नहीं।

जनता पार्टी बड़ी दुविधा में पड़ गयी थी। वह नहीं चाहती थी कि जिस लहर के सहारे वह विजय की मंजिल तक पहुँची थी वह यों ही बिखरकर रह जाये। इसके अलावा 12 अगस्त तक नये राष्ट्रपति का चुनाव भी पूरा हो जाना था। लोकसभा, राज्यसभा और राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों को ही राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेना था। विधानसभाओं के वोट बहुत काफी थे और उनसे फ़ैसले का रुख बदल सकता था। मन्त्रिमण्डल ने फैसला किया कि अगर कांग्रेस ने सहयोग न दिया तो वह नये चुनाव कराने के लिए विधानसभाओं को भंग करने के लिए राष्ट्रपति के अधिकारों[1] का सहारा लेगा—मजे की बात यह थी कि संविधान में ये अधिकार 'आपात-स्थिति के प्रावधान' नामक अध्याय में दिये गये हैं। मन्त्रिमण्डल में इस सवाल पर गरमा गरम बहस हुई और कई मन्त्री यह सोचने लगे कि इतने सख्त कदम का नैतिक दृष्टि से आम लोगों पर क्या असर पड़ेगा। वे जनता पार्टी पर उँगली उठायेंगे कि वह भी वही कर रही है जो कांग्रेस करती थी—एक सरकार की जगह दूसरी तरह की सरकार।

सचमुच संसद के चुनावों की बुनियाद पर उन सरकारों को भी बर्खास्त कर देना, जिनकी मियाद अभी पूरी नहीं हुई थी, आगे के लिए बहुत बुरी मिसाल कायम करना होगा, कुछ भी हो भारत का ढाँचा एक संघ-राज्य का ढाँचा था, और इससे राज्यों की स्वायत्त-सत्ता को नुकसान पहुँच सकता था।

विधानसभाओं को भंग करने के पक्ष में मन्त्रिमण्डल के फैसले का ऐलान चरण सिंह ने 18 अप्रैल को एक प्रेस कान्फ्रेंस में कर दिया। उन्होंने कहा कि नौ राज्यों के—बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल के—मुख्यमन्त्रियों से उन्होंने अपने अपने राज्यों की विधानसभाएं भंग कर देने के लिए कह दिया है।

चरणसिंह ने इस कदम को इस बुनियाद पर सही ठहराया कि ...

1 संविधान की धारा 356 में राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह 'रिपोर्ट पर या अन्यथा भी राज्यों की विधानसभाओं को भंग कर सकता है।'

ससद को भग करने की सलाह मानने का कोई इरादा नही था।

फर्नांडीज को उनकी इस योजना की भाक मिल गयी और उन्होंने सरकार के इस्तीफा देने के विचार का भरपूर विरोध किया। उन्होंने खुल्लमखुल्ला कहा कि "अपना बहुमत बनाने के लिए उन्हें (काग्रस को) बस इतना करना है कि हममे से कुछ लोगो को गिरफ्तार कर लें।' धीरे धीरे सबकी समझ मे आने लगा कि जत्ती ऐलान पर दस्तखत करने से आनाकानी क्यो कर रहे हैं। सभी लोग बहुत झुंझलाये हुए थे। लोगो म गुस्से की लहर दौड गयी और उन्होंने जत्ती के बँगले के सामने नारे लगाये।

मन्त्रिमण्डल की बैठक हुई और उसमे एक खत का मसविदा मजूर किया गया जिसम लिखा था कि अगर कार्यवाहक राष्ट्रपति प्रधानमत्री और उनके मन्त्रिमण्डल की सलाह मानने को तयार नही हैं तो उन्हें इस्तीफा दे देना चाहिए। बदनाम 42वें सशोधन का हवाला दिया गया, उसमे यह बात साफ-साफ शब्दो म कही गयी थी कि राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री और उसके मन्त्रिमण्डल की सलाह मानने के लिए बाध्य होगा। जत्ती का बना बनाया खेल बिगड गया। कबिनेट के सक्रेटरी ने पत्र ले जाकर उन्हें दिया। जत्ती चारा तरफ से घिर गये थे। वह जानते थे कि इसका नतीजा बहुत बुरा होगा और उन्होंने फौरन ऐलान पर दस्तखत कर दिये। एक और सकट टल गया। सबने सन्तोष की साँस ली।

ऐलान 30 अप्रल को जारी कर दिया गया। नौ राज्यो की विधानसभाएँ भग कर दी गयी और चुनाव कमिश्नर से कहा गया कि वह मानसून शुरू होने से पहले जल्दी-से-जल्दी चुनाव कराने का बन्दोबस्त करें। जनता पार्टी, सी० एफ० डी० और उनके साथियो ने इस ऐलान का स्वागत किया, जबकि काग्रेस ने उसे एक डिक्टेटरी हरकत' और देश के सघ राज्य वाले जनतान्त्रिक ढाँचे पर एक चोट कहा।

दस्तखत करने मे जत्ती की टालमटोल से जगजीवनराम का यह विश्वास और पक्का हो गया कि जनता पार्टी और सी० एफ० डी० के नेताओ को अपनी एकता बनाये रखना चाहिए और उन्होंने मोरारजी से कह दिया कि सी० एफ० डी० जनता पार्टी मे शामिल हो जायेगी। सी० एफ० डी० के भविष्य का फसला करने के लिए जब उसकी मीटिंग होनेवाली थी, यह उससे लगभग एक हफ्ते पहले की बात है। राजनीति के बहुत समझदार खिलाडी होने के नाते जगजीवनराम जानत थे कि अगर सी० एफ० डी० और जनता पार्टी म कोई समझौता न हो सका तो उत्तर प्रदेश और बिहार उनके लिए एक समस्या बन जायेंगे। लकिन जनता पार्टी मे शामिल होने के पीछे जगजीवनराम का एक और उद्देश्य था। वह उसके अध्यक्ष के चुनाव पर असर डाल सकेंगे। वह नही चाहते थे कि भारतीय लोकदल का कोई आदमी जनता पार्टी का अध्यक्ष बने। वामपथी झुकाव रखनेवाले चन्द्रशेखर, जिनके नाम पर किसी तरह का कोई धब्बा नही था, सर्वसम्मति से पार्टी के अध्यक्ष चुन लिए गये।

जनता पार्टी और सी० एफ० डी० अब मिलकर एक ही शक्ति बन गये थे। हालाँकि इस सिलसिले को पूरा करने मे एक महीने स ज्यादा वक्त लग गया था लेकिन इसको शुभ मानकर हर तरफ इसका स्वागत किया गया। कुछ लोग इसलिए निराश भी हो गये कि उन्हें यह बात अच्छी नही लगी कि जो मोल तोल और सौदेबाजी काग्रेस के अन्दर होती थी वही उनकी नयी सरकार में भी होने लगी थी।

विधानसभाओ के टिकट जिस तरह बाँटे गय उससे भी वे खुश नही थे। दूसरी पार्टियों के भगोडो के लिए दरवाजे खोल देना तो बुरा था ही, लेकिन इसस भी बुरी बात यह थी कि जनता पार्टी म भी काले बाजार वाले, गैर कानूनी शराब का धधा करनेवाले, खुशामदी, अपना उल्लू सीधा करनेवाले और कम्युनिस्ट ऊँची-ऊँची जगहो

चुनाव मे चूँकि लोगो ने काग्रेस को बिलकुल ठुकरा दिया है इसलिए राज्यो मे उसकी सरकारो को बने रहने का कोई अधिकार नहीं है और अपनी इस दलील के पक्ष म उन्होने सविधान के कुछ अग्रेज विशेषज्ञों के हवाले भी दिये ।

इसके अलावा यह एक नैतिक चुनौती भी थी, जिन सरकारो ने अपने आलोचको को मुकदमा चलाये बिना नजरबन्द कर दिया हो, ऐसे जुल्म ढाये हो कि जो बयान भी नही किये जा सकते और विपक्ष के सदस्यो को तग कर-करके खदेड दिया हो, उनके हाथ मे शासन की बागडोर नही रहने दी जा सकती ।

लेकिन गहमत्री चरणसिह ने यह सारा काम बहुत गलत ढग से किया था । वह सविधान की पेचीदा गुत्थियो मे उलझ गये थे । सारा किस्सा बहुत भोडा रूप धारण कर चुका था और काग्रेस ने जनता पार्टी के नाम पर कलक लगाने का यह मौका हाथ से नही जाने दिया ।

जयप्रकाश की राय थी कि जिन राज्यो की विधानसभाओ ने अभी अपने पाँच साल पूरे नही किये हैं उन्हे भग न किया जाये । उनके ध्यान मे उत्तर प्रदेश और उडीसा के राज्य थे । जनता सरकार के एक वरिष्ठ मत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने (जो अब विदेश मत्री थे) मोरारजी को पत्र लिखकर विधानसभाओ के भग किये जाने पर जो आलोचना हो रही थी उस पर अपनी चिन्ता प्रकट की । वह भी इसी को बेहतर समझते थे कि नौ मे से केवल सात राज्यो की विधानसभाओ को भग किया जाये ।

कुछ राज्यो की काग्रेसी सरकारो ने सरकार के इस कदम को सुप्रीम कोट मे चुनौती दी । सुप्रीम कोट ने 24 अप्रैल को 'इस कदम को रुकवा देने और आखिरी फैसला होने तक के लिए कोई आदेश जारी कर देने' की उनकी अर्जी सभी जजो की राय से खारिज कर दी । लेकिन इससे भी मसला हल नही हुआ । श्रीमती गाधी दूर से यह सारा तमाशा देख रही थी । इसी बीच जत्ती ने विधानसभाए भग करने के ऐलान पर दस्तखत करने से इकार कर दिया । जिस दिन उन्होने इकार किया उससे कई दिन पहले ही उन्हें ऐसा करने के लिए 'राजी कर लिया गया था । यह यशपाल कपूर के दिमाग की उपज थी कि कायवाहक राष्ट्रपति विधानसभाओ के भग किये जाने के रास्ते मे रोडा अटका सकता है । श्रीमती गाधी की सलाह लेना जरूरी था और यह यशपाल कपूर ने धवन के जरिये किया क्योकि खुद उन्हे प्रधानमत्री के घर मे घुसने से मना कर दिया गया था । इधर कुछ अरसे से वह एक बेकार का बोझ बन गये थे । हर आदमी फौरन मदान मे कूद पडा, श्रीमती गाधी भी और चह्वाण भी । दोनो ने टेलीफोन पर जत्ती से बात की । कायवाहक राष्ट्रपति अपने बेटे की शादी का न्योता देने के बहाने गोखले से यह जानने के लिए मिले कि इसमे कानूनी पेचीदगियाँ क्या पैदा हो सकती हैं ।

जत्ती अपनी बात पर अडे रहे, कोई भी दलील उन पर कारगर नही हुई । चरणसिह, शातिभूषण और कई दूसरे मत्री उनको समझा-समझाकर हार गये । यह इशारा दिये जाने पर भी कि शायद उन्हें ही अगला राष्ट्रपति बनवा दिया जाय वह लालच मे नही फँसे । मोरारजी और जगजीवनराम महसूस कर रहे थे कि अब उनके सामने जनता के पास वापस जाने के अलावा और कोई रास्ता नहीं रह गया है । उनका विचार था कि इसी सवाल पर लोकसभा का चुनाव फिर से करा लिया जाय ।

उन्हे क्या पता था कि जत्ती ने इसके बारे मे पहले ही सोच रखा था और यह फैसला कर लिया था कि अगर जनता पार्टी और सी० एफ० डी० की सरकार ने इस्तीफा दे दिया तो वह चह्वाण से सरकार बनाने को कहेंगे । कायवाहक राष्ट्रपति का

संसद को भंग करने की सलाह मानने का कोई इरादा नहीं था।

फर्नांडीज को उनकी इस योजना की भाफ मिल गयी और उन्होंने सरकार के इस्तीफा देने के विचार का भरपूर विरोध किया। उन्होंने खुल्लमखुल्ला कहा कि "अपना बहुमत बनाने के लिए उन्हें (कांग्रेस को) बस इतना करना है कि हममें से कुछ लोगों को गिरफ्तार कर लें।" धीरे धीरे सबकी समझ में आने लगा कि जत्ती ऐलान पर दस्तखत करने से आनाकानी क्यों कर रहे हैं। सभी लोग बहुत झुंझलाये हुए थे। लोगों में गुस्से की लहर दौड़ गयी और उन्होंने जत्ती के बंगले के सामने नारे लगाये।

मन्त्रिमण्डल की बैठक हुई और उसमें एक खत का मसविदा मंजूर किया गया जिसमें लिखा था कि अगर कार्यवाहक राष्ट्रपति प्रधानमंत्री और उनके मन्त्रिमण्डल की सलाह मानने को तैयार नहीं हैं तो उन्हें इस्तीफा दे देना चाहिए। बदनाम 42वें संशोधन का हवाला दिया गया, उसमें यह बात साफ-साफ शब्दों में कही गयी थी कि राष्ट्रपति प्रधानमंत्री और उसके मन्त्रिमण्डल की सलाह मानने के लिए बाध्य होगा। जत्ती का बना बनाया खेल बिगड़ गया। कैबिनेट के सेक्रेटरी ने पत्र ले जाकर उन्हें दिया। जत्ती चारों तरफ से घिर गये थे। वह जानते थे कि इसका नतीजा बहुत बुरा होगा और उन्होंने फौरन ऐलान पर दस्तखत कर दिये। एक और संकट टल गया। सबने सन्तोष की साँस ली।

ऐलान 30 अप्रैल को जारी कर दिया गया। नौ राज्यों की विधानसभाएँ भंग कर दी गयीं और चुनाव कमिश्नर से कहा गया कि वह मानसून शुरू होने से पहले जल्दी से-जल्दी चुनाव कराने का बन्दोबस्त करें। जनता पार्टी, सी० एफ० डी० और उनके साथियों ने इस ऐलान का स्वागत किया, जबकि कांग्रेस ने उसे एक 'डिक्टेटरी हरकत' और देश के 'संघ राज्य वाले जनतान्त्रिक ढाँचे पर एक चोट' कहा।

दस्तखत करने में जत्ती की टालमटोल से जगजीवनराम का यह विश्वास और पक्का हो गया कि जनता पार्टी और सी० एफ० डी० के नेताओं को अपनी एकता बनाये रखना चाहिए और उन्होंने मोरारजी से कह दिया कि सी० एफ० डी० जनता पार्टी में शामिल हो जायेगी। सी० एफ० डी० के भविष्य का फैसला करने के लिए जब उसकी मीटिंग होनेवाली थी, यह उससे लगभग एक हफ्ते पहले की बात है। राजनीति के बहुत समझदार खिलाड़ी होने के नाते जगजीवनराम जानते थे कि अगर सी० एफ० डी० और जनता पार्टी में कोई समझौता न हो सका तो उत्तर प्रदेश और बिहार उनके लिए एक समस्या बन जायेंगे। लेकिन जनता पार्टी में शामिल होने के पीछे जगजीवनराम का एक और उद्देश्य था। वह उसके अध्यक्ष के चुनाव पर असर डाल सकेंगे। वह नहीं चाहते थे कि भारतीय लोकदल का कोई आदमी जनता पार्टी का अध्यक्ष बने। वामपंथी झुकाव रखनेवाले चन्द्रशेखर, जिनके नाम पर किसी तरह का कोई धब्बा नहीं था, सर्वसम्मति से पार्टी के अध्यक्ष चुन लिये गये।

जनता पार्टी और सी० एफ० डी० अब मिलकर एक ही शक्ति बन गये थे। हालाँकि इस सिलसिले को पूरा करने में एक महीने से ज्यादा वक्त लग गया था, लेकिन इसको शुभ मानकर हर तरफ इसका स्वागत किया गया। कुछ लोग इसलिए निराश भी हो गये कि उन्हें यह बात अच्छी नहीं लगी कि जो मोल-तोल और सौदेबाजी कांग्रेस के अन्दर होती थी वही उनकी नयी सरकार में भी होने लगी थी।

विधानसभाओं के टिकट जिस तरह बाँटे गये उससे भी वे खुश नहीं थे। दूसरी पार्टियों के भगोड़ों के लिए दरवाजे खोल देना तो बुरा था ही, लेकिन इससे भी बुरी बात यह थी कि जनता पार्टी में भी काले बाजार वाले, ग़ैर क़ानूनी शराब का धंधा करनेवाले, खुशामदी, अपना उल्लू सीधा करनेवाले और कम्युनिस्ट ऊँची-ऊँची जगहों

पर दिखायी दे रहे थे। इन खबरों से लोगों की निराशा और भी बढ़ गयी कि कांग्रेसी नेताओं की तरह यहाँ भी बड़े बड़े व्यापारियों और सेठों से पैसा जमा किया जा रहा था। ऐसा लगता था कि नौकरशाही भी अपने उसी पुराने आरामतलबी के ढर्रे पर आती जा रही थी। लोग सोचते थे, ऐसा कैसे हो सकता है ?

जयप्रकाश ने तो उनसे वायदा किया था कि गाँव से लेकर नई दिल्ली में केन्द्रीय सरकार के स्तर तक चौकसी रखने के लिए जनता की कमेटियाँ बनायी जायेंगी। क्या कोई भी सरकार इतनी गहरी छान बीन की इजाज़त देगी ? आज लोगों के दिमाग में यही सवाल है।

जनता पार्टी ने देश का नैतिक स्तर ऊँचा कर दिया है। बरसों बाद अब फिर उन आदर्शों की बात होने लगी है जिन्हें श्रीमती गांधी की सरकार ने बड़ी कोशिश करके तहस-नहस कर दिया था। जनता पार्टी जो कुछ कर रही है उसकी अच्छाइयों को आम लोग समझते न हों, ऐसी बात नहीं है। बात यह है कि जनता पार्टी ने पहले जो नैतिक मानदण्ड कायम किये थे उन्हें वे बाकी रखना चाहते हैं।

वे इस बात से खुश हैं कि चारों तरफ जो डर छाया हुआ था वह दूर हो गया है—पुलिस का डर दूर दूर तक फैले हुए जासूसों के जाल का डर, अफसरशाही का डर, दम घोंट देनेवाले कानूनों का डर और बिना मुकदमा चलाये नज़रबन्द कर दिये जाने का डर।

वे इस बात से भी खुश थे कि देश के बड़े से बड़े लोगों को भी बख्शा नहीं जायेगा। बैंकों में श्रीमती गांधी के खातों की जाँच पड़ताल शुरू कर दी गयी है और अपराधियों को सज़ा देने के लिए जाँच कमीशन बिठा दिये गये हैं।

आम लोगों को इस बात की भी उतनी ही चिन्ता है कि जो कुछ हुआ वैसा फिर न होने पाये। वैसी ही हालत फिर न पैदा होने पाये, इसके लिए हमें कुछ सबक लेना होगा। ऐसा करने का एक तरीका तो यह हो सकता है कि जनतन्त्र में आर्थिक तत्त्व भर दिया जाये। सबकी बराबरी पर आधारित समाज की स्थापना सम्भव है और हो सकता है कि इस मामले में भारत ही बाकी दुनिया को रास्ता दिखाये।

वे यह भी नहीं चाहते कि जनता पार्टी का भी वही हाल हो जो कांग्रेस का हुआ था उसके नेता भी उनसे पहले वाले नेताओं की खाली की हुई कुर्सियों में इस तरह धस जायें कि उन्हीं का एक हिस्सा बन जायें। जन साधारण की दुविधा आदर्शों की दुविधा है। वे जानते हैं कि आदर्शों के पीछे मारे मारे घूमने के मुकाबले में समझौतेबाज़ी में कहीं ज्यादा फायदा है और उससे कहीं ज्यादा मदद मिलती है। जनता पार्टी के नाम के साथ कुछ अच्छाइयाँ जुड़ गयी हैं और लोग नहीं चाहते कि उन पर कोई धब्बा लगे।

यह उम्मीद तो कोई भी नहीं करता कि बरसों के दौरान जो ग़लतियाँ की गयी हैं उन्हें कोई आदमी या कोई पार्टी दो या तीन महीनों में ठीक कर देगी। लेकिन जनता पार्टी ने जिस ढंग से और जिस रफ्तार से काम करना शुरू किया है उससे लोग बिलकुल हताश भले ही न हुए हों, पर कुछ निराश ज़रूर हुए हैं। लोगों ने कांग्रेस को ठुकरा दिया है, जिस पर अभी तक उसी पुरानी चाडाल चौकड़ी का कब्ज़ा बना हुआ है। अगर जनता पार्टी ने भी उन्हें निराश कर दिया तो वे क्या करेंगे ?

वे इन्तज़ार करने को तैयार हैं। वे समझते हैं कि इतनी जल्दी उम्मीद छोड़ देना ठीक नहीं है और अपना फ़ैसला सुना देना भी अभी बहुत जल्दी है।

परिशिष्ट 1

मारुति

एक सस्ती स्वदेशी 'जनता' मोटरकार बनाने का विचार पहले पहल बहुत दिन हुए 1950 के बाद उठा था। छोटी मोटर की योजना [illegible] जो मनुभाई शाह की कल्पना की उपज थी, कई उतार चढ़ाव देखे। एक वक्त ऐसा आया था जब सरकार ने फ्रांस की 'रेनो' मोटर बनानेवालो के साथ समझौते पर लगभग दस्तखत कर दिये थे, पाटे कमेटी की सिफारिश यही थी कि हमारी आवश्यकताओ को सबसे अच्छी तरह यही मोटर पूरा कर सकती है। लेकिन बाद मे कृष्णमाचारी के सख्त विरोध करने पर यह योजना खटाई मे पड गयी। इसके बाद कई बरस तक इस योजना के [illegible] की चर्चा बार-बार की गयी लेकिन कोई नतीजा नही निकला।

प्राइवेट और पब्लिक सेक्टर की कई कम्पनिया ने यह मोटर बनाने के लिए टेंडर भेजे और मोटर के अपने अपने नमूने भी तयार कराये। मसूर राज्य के औद्योगिक विकास निगम ने भी अर्जी दी थी, जिसमे यह अन्दाजा लगाया गया था कि जो नमूना उन्होने तयार किया था, वसी मोटर बाजार मे बेचने के [illegible] लगभग 5 6 हजार रुपये की लागत आयेगी।

सरकारी क्षेत्रो म इस सवाल पर जो बहस हो रही थी [illegible] थी। एक धारा का माननवालो का कहना था कि मोटर स्थानीय [illegible] के साधनो का सहारा लेकर बनायी जाये जबकि दूसरी धारा के [illegible] का कहना था कि इसके लिए मोटर बनानेवाली विदेशी कपनिया के [illegible] किया जाय। उस समय फाक्सवगन टोयोटा रेनो, सिट्राएन और [illegible] योजना म हाथ बँटाने के लिए बहुत उत्सुक थे।

जब यह बहस पूरे जोरो पर थी, उसी [illegible] रायस कपनी के क्रीव वाल कारखाने म अपनी [illegible] यह कहना गलत न होगा कि सजय के [illegible] अपने आप ही तय हो गया।

ने ही बनायी थी और वही उसका मैनेजिंग डायरेक्टर था हालांकि इस कम्पनी मे उसका सिर्फ एक 100 रु० का शेयर था। जो 'लेटर ऑफ इटेंट' जारी किया गया था उसमे दो खास शर्तें ये थी। मोटर पूरी तरह यही के साधनो से बनायी जायेगी और उसकी कीमत कम होगी! जैसा कि जाहिर है, जिन हालात मे आगे चलकर मारुति लि० काम करनेवाली थी उनमे इन शर्तों के पूरा होने की न कोई उम्मीद थी और न ही उन्हें पूरा किया जा सकता था।

जहां तक सजय का सवाल था उसने पहली बडी बाधा पार कर ली थी। 'लेटर ऑफ इटेंट' मिल जाने के बाद सजय ज़मीन खरीदने और पैसा जुटाने मे लग गया। कितने ही व्यापारी पैसा लगाने को तैयार थे और राजनीति के मैदान मे भी लम्बे चौडे हौसले रखनेवाले बेईमान लोगो की कोई कमी नही थी। इनकी मदद से सजय की ये दोनो समस्याए भी हल हो गयी।

बसीलाल ने अपनी आदत के मुताबिक खुली धाधली करके महलादा, ढुडेरा और खेतरपुर गांवो के रहनेवालो को बेदखल करके दिल्ली से गुडगांव जानेवाली बडी सडक के किनारे 445 एकड उपजाऊ जमीन हथिया ली। गांववालो को लगभग 10,000 रु० एकड के हिसाब से कुल 45 लाख रुपया मुआवज़ा दिया गया जबकि उससे मिली हुई जमीन का भाव 35 000 रु० एकड था। इसके अलावा, जो जगह चुनी गयी थी वह इस कानून के भी खिलाफ थी कि किसी भी रक्षा प्रतिष्ठान से 1 000 मीटर की दूरी के अन्दर कोई कारखाना न बनाया जाये। सजय का कारखाना फौजी गोला बारूद के एक भण्डार से बिलकुल मिला हुआ था।

ज़मीन मिल जाने के बाद सजय ने पूजी जुटाने के सवाल की तरफ ध्यान दिया।

सबसे पहली पूजी तो उन व्यापारियो से मिली जो इस फेर मे थे कि इसके बदले मे ज्यादा से ज्यादा रिआयतें हासिल कर लें या अपना कोई काम बनवा लें। सितम्बर 1974 तक मारुति लि० की जमा पूजी 1,84 60,700 तक पहुच चुकी थी। इसमे से 22 प्रतिशत शेयर यू० पी० टेडिंग कपनी के 16 प्रतिशत शेयर दरभगा मार्केटिंग कपनी के और 11 प्रतिशत शेयर सारन ट्रेडिंग कपनी के थे। इसके अलावा मारुति लि० ने 1973 74 के सरकारी साल के दौरान मोटर की बिक्री का अधिकार बेचकर 2 18,91,042 रु० और बटोरे थे। हर डीलरशिप 3 लाख रुपये से 5 लाख रुपये तक का बयाना लेकर बेची गयी थी और वह भी ऐसे व्यापारियो के हाथ जिनका इससे पहले मोटरो से कोई सम्बन्ध नही रहा था लेकिन जो समझते थे कि इस काम मे पैसा लगाना मुनाफे का सौदा है या जिन्हे इसके लिए मजबूर किया गया था।

शुरू से ही यह योजना सरासर नाकामयाब रही है। पहला जो नमूना बनाया गया था उसे कबाड मे डाल दिया गया। दूसरा नमूना बना तो आज़माइश के दौरान ही उलट गया। इसके बाद भी जो नमूने बने उनमे भी कोई-न-कोई खराबी ही निकली —किसी का स्टीयरिंग खराब था तो किसी का सस्पेंशन और किसी का इजन बहुत जल्दी बेहद गरम हो जाता था। एक वक्त तो ऐसा आया कि सजय ने लेटर ऑफ इटेंट' मे लगायी गयी शर्तों को तोडकर विदेशी सामान भी लगाना शुरू कर दिया। अफसोस फिर भी मारुति लि० ऐसी मोटर नही बना पायी जो सडक पर चल सकती। इस दौरान जब मारुति लडखडाती हुई चल रही थी सजय सबके सामने बडे भरोसे के साथ बात करता रहा। दिसम्बर 1973 मे एक प्रेस कान्फ्रेंस मे उसने कहा कि कार छ महीने मे बनकर तयार हो जायेगी। यही बयान उसने अट्ठारह महीने बाद दोहराया और कहा कि 1977 तक फक्टरी अपनी पूरी क्षमता से काम करने लगेगी और रोज़ 200 मोटरें बनाया करेगी। अभी जनवरी 1976 मे चडीगढ मे काग्रेस अधिवेशन के

हालात मे, इनमे से कोई भी कपनी मुनाफा नही कमा सकती थी, इसमे न तो ढग का साज सामान ही था और न ढग के काम करनेवाले। लेकिन वह जमाना आम हालात का तो था भी नही। श्रीमती गाधी के जबदस्त राजनीतिक सरक्षण का सहारा लेकर सजय ने मारुति की कपनिया म बडी कामयाबी के साथ ऑर्डरो की भरमार कर दी। जो लोग आनाकानी करत थे या इन फैक्टरियो की क्षमता के बारे मे शक करते थे उनका पत्ता काट दिया जाता था। और जो लोग कानूनी पहलू से शकाएँ उठाते थे उन्हे तग किया जाता था और दबा दिया जाता था। मिसाल के लिए जब अप्रल 1975 मे मारुति के सज-सामान के बारे में ससद म सवाल पूछे गये तो औद्योगिक विकास मन्त्रालय के डायरेक्टर कृष्णास्वामी ने स्टेट ट्रेडिंग कार्पोरेशन (एस० टी० सी०) के तहत काम करनेवाली कम्पनी प्रोजेक्टस एण्ड इक्विपमेंट कार्पोरेशन (पी० ई० सी०) और पूर्वी योरोप के देशो के एजेंट बाटलीबोई से आवश्यक जानकारी देने को कहा। मारुति लि० ने मोटर बनाने की मशीनें इन्ही दो कम्पनियो स खरीदी थी। इससे पहले कि कोई जानकारी बाहर जान पाती पी० ई० सी० और एस० टी० सी० के डायरेक्टरो को प्रधानमत्री के दफ्तर ने तलब किया और फटकारा। उनस जाँच पडताल बन्द कर देने को कहा गया। पी० ई० सी० के जो दो अफसर, कावले और भटनागर, जाच पडताल कर रह थे उनमे से कावले को बदलकर किसी दूसरी जगह भेज दिया गया और भटनागर को 'सस्पेंड' कर दिया गया। कृष्णास्वामी के घर पर छापा मारा गया और वहाँ स शराब की दो बोतलें बरामद करके उन्ह एक्साइज का कानून तोडने के जुर्म मे सस्पेंड कर दिया गया।

सरकारी दखलन्दाजी का उजागर करनेवाली एक और मिसाल तेल और प्राकृतिक गैस कमीशन (ओ० एन० जी० सी०) का मामला है। जनवरी 1975 मे ओ० एन० जी० सी० ने सडक कूटनेवाले छ रोलरो के लिए टण्डर मँगवाये। सरकारी कम्पनी गाडन रीच वर्कशाप (जी० आर० डब्लू०) और दो दूसरी कम्पनियो ने टेण्डर भेजे। एम० एच० वी० ने भी एक प्राइवेट कम्पनी की माफत टेण्डर भेजा। शुरू मे जी० आर० डब्लू का टेण्डर 1,46 000 रु० का और मारुति का 1,60 000 रु० का था। बाद मे मारुति ने अपना टेण्डर घटाकर 1,41,000 रु० कर दिया। फिर भी ऑर्डर सरकारी कम्पनी को ही मिला। यह फैसला दो बातो की बुनियाद पर किया गया था। एक तो यह कि जी० आर० डब्लू० सरकारी कम्पनी थी और इसलिए दाम मे 10 प्रतिशत तक की छूट पाने की अधिकारी थी और दूसरे उसकी साख ब त ऊँची थी।

लेकिन इससे पहले कि जी० आर० डब्लू० के साथ सौदा पक्का किया जाता, यह ऑर्डर रद्द कर दिया गया। साज-सामान की खरीदारी मे सम्बन्ध रखनवाले कमीशन के सदस्य लाहिडी न दुबारा एस्टीमेट मँगवाय। मारुति ने अपने रोलरो की क़ीमत घटाकर 1,25,000 रु० कर दी और जी० आर० डब्लू० अपनी पुरानी कीमत पर जमी रही। बाद म ठेका मारुति को दे दिया गया। दुबारा टण्डर मगाकर तो लाहिडी ने अपने अधिकारो की सीमा स बाहर जाकर काम किया ही था इसके अलावा उन्होंने एक गलती यह भी की थी कि उन्होने इस शत का पूरा नही किया था कि किसी कम्पनी को ठेका देने के कागजात पर हस्ताक्षर कराने स पहल उसकी क्षमता का अन्दाजा लगाने के लिए उसकी फक्टरी का मुआइना कर लिया जाना चाहिए। इसके अलावा यह आर्डर दने की सारी कार्रवाई इतने ऊँचे स्तर पर की गयी थी कि ओ० एन० जी० सी० के पुरान कमचारियो को भी एतराज करने का मौका नही मिला था।

इमर्जेंसी लागू हो जाने के बाद तो कानून के अनुसार काम करने का दिखावा भी छोड दिया गया था। अब तो टेण्डर मँगाने की भी जरूरत नही रह गयी थी। बस सजय के कहने की देर होती थी और कितने ही लोग उसे पूरा करने के लिए तैयार रहते थे। वाशिंगटन पोस्ट ने अपने 10 नवम्बर 1976 के अक में लिखा, "आम लोग समझते हैं कि बहुत बडी धोखाधडी चल रही है। बडे-बडे अफसर कहते हैं कि व कुछ भी नही कर सकते। सजय सेक्रेटरियो को बुलाकर बस इतना कह देता है, 'यह ठेका उसको दे दो'।"

इस रवैये का ठोस सबूत यह था कि राज्यो की तरफ से और दूसरी सरकारी सस्थाओ की तरफ से सडक कूटनेवाले रोलरो की माग अचानक बढने लगी। इमर्जेंसी लागू होने के कुछ ही दिन के अन्दर बाडर रोड्स आर्गेनाइजेशन (बी० आर० ओ०) से 100, हरियाणा से 50 पजाब से 40 और उत्तर प्रदेश और नई दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी से अनिश्चित सख्या म सडक कूटनेवाले रोलरो के आडर आ चुके थे।

एम० एच० वी० के पास सचमुच नये रोलर बनाने के लिए न तो आवश्यक साज सामान ही था और न तकनीकी जानकारी ही। उसने कुल 2 000 रुपये के हिसाब से फोड और पर्किन के सेकिडहैण्ड इजन खरीदकर उन्ह पुराने कबाड रोलरों मे फिट कर दिया और उन पर रग रोगन करके नया कहकर बेच दिया। बाजार मे जो दूसरे रोलर मिल रह थे उनके मुकाबले मे इन रोलरो की कीमत (1 40 000 रुपये) चालीस प्रतिशत ज्यादा थी। यह तो बताने की जरूरत नही कि इनमे से ज्यादातर रोलर उन कामो के लिए मुनासिब साबित नही हुए जिनके लिए इन्हें खरीदा गया था। बॉर्डर रोडस आर्गेनाइजेशन को यह मालूम हाने पर परशानी तो बहुत हुई, लेकिन वह बोल कुछ नही सकता था, कि उसे जो रोलर दिय गय थे उनम स कोई भी बहुत ऊँचाई पर काम नही कर सकता था। इसलिए वे पठानकोट मे बी० आर० ओ० के डिपो मे खडे रहे।

एम० एच० वी० का एक और काम, जो उन्होने अभी हाल ही म शुरू किया था बस की बॉडी बनाने का था। इस बात के बावजूद कि हर राज्य मे बस की बॉडियाँ बनाने के लिए अपनी जरूरत भर पूरा इन्तजाम था, एम० एच० वी० को राज्यो की सरकारो की तरफ से ऐसा आडर मिलने लगे। मिसाल के लिए मध्य प्रदेश ने एम० एच० वी० को न सिर्फ 100 बसो की बॉडी बनाने का आडर दिया बल्कि उन्हे 39 000 रुपये फी बॉडी के हिसाब से बहुत ज्यादा भुगतान भी किया। खुद अपने कार्पोरेशन को वे सिर्फ 27 813 रुपये देते थे। इसी तरह उत्तर प्रदेश सरकार को भी सजय की चाडाल चौकडी को खुश करने के लिए जरूरत स 5 लाख रुपया ज्यादा खर्च करना पडा। अन्दाजा लगाया गया है कि इमर्जेंसी उठने तक अकेले उत्तर प्रदेश स 499, मध्य प्रदेश स 180 हरियाणा स 307, राजस्थान स 152 और दिल्ली स 52 बसो की बाडी बनाने के ऑडर मिल चुके थ।

लेकिन शायद भ्रष्टाचार और कुनबापरवरी की सबसे शर्मनाक मिसालें विदेशी मल्टीनेशनल कार्पोरेशनो के साथ मारुति की मिलीभगत की हैं। इमर्जेंसी के कुछ ही दिन बाद (मुमकिन है कुछ पहले भी हो) मारुति कई मल्टीनेशनल कार्पोरेशन का एजण्ट बन बैठा—खास तौर पर अमरीका के इण्टरनेशनल हार्वेस्टर और पाइपर कम्पनी और पश्चिम जर्मनी की मन कम्पनी और डिमाग कम्पनी। इन कम्पनियों के बनाये हुए माल के अलावा मारुति के पास रसायन, पम्पिग इजन, बुलडोजर और टेलीफोन के मोटे तार सप्लाई करने की भी एजेंसियाँ थी।

सजय गाधी न 1976 के बीच म अभी दिल्ली म पानी सप्लाई करनेवाले और

गन्दे पानी की निकासी का प्रबन्ध करनेवाले सगठन से यह बात मनवा ली कि शहर मे पीने के पानी और गन्दे पानी को साफ करने के लिए वह फिटकरी के बजाय क्विक फ्लाक पालिमिक्स नामक एक रसायन इस्तेमाल किया करे।

यह रसायन एम० टी० एस० वाले सजय गाधी के एक दोस्त आर० सी० सिह के साथ मिलकर बनाते थे, जो दिल्ली की आई० आई० टी० से छुट्टी लेकर वहाँ काम कर रहा था।

जब पानी सप्लाई के सगठन के कुछ कमिस्टो ने इस रसायन को इस्तेमाल करने के बारे मे कुछ आनाकानी की तो उन्ह सस्पेंड कर दिया गया। आर० सी० सिह को म्युनिसिपल कमिश्नर बी० आर० टमटा का तकनीकी सलाहकार बना दिया गया और इस हैसियत से सिह ने इस रसायन के इस्तेमाल की मजरी दे दी। पानी सप्लाई सगठन रोज 10 000 रुपये का रसायन इस्तमाल करन लगा। इस सगठन मे पालिमिक्स का इस्तमाल शुरू हो जाने के बहुत दिन बाद इसके लिए टेंडर मँगवाये गये ताकि इसका ठेका देने की पूरी कार्रवाई फाइलो मे ठीक रह।

शहर मे पानी की सप्लाई म कोई भी रसायन इस्तेमाल करने से पहले यह जरूरी है कि कानपुर की नेशनल एनविरानमेण्ट इजीनियरिंग रिसच इस्टीच्यूट से इसकी जाँच करवा ली जाये, लेकिन इस रसायन की जाँच नही करवायी गयी। रसायनो की जानकारी रखनेवालो का कहना है कि इस रसायन के इस्तेमाल से पानी मे 'मोनोमर' नामक पदाथ इतनी अधिक मात्रा मे जमा हो जाता है कि उससे जहर पदा होने का डर रहता है और उमसे खाल और आख की बीमारियाँ फैल सकती हैं। पालिमिक्स के इस्तेमाल से जितना 'मोनोमर' पानी मे जमा हो जाता है वह अमरीका मे खाने पीने की चीजो स और मादक पदार्थों की नत पड जाने स सम्बन्धित कानून मे बतायी गयी सीमा से कही अधिक है। विदेशो मे इसे सिफ नालियो के पानी के लिए इस्तेमाल किया जाता है पीने के पानी के लिए नहीं।

एजेंट की हैसियत स मारुति को हर सौदे की कुल रकम का 20 25 प्रतिशत भाग कमीशन के रूप म मिलता था। सरकारी और प्राइवेट सगठनो को डरा धमका कर उन्ही कम्पनियो को आडर भेजने के लिए मजबूर किया जाता था जिनकी एजेंसी मारुति के पास थी। इस सिलसिले मे कई चलत हुए ठेके भी रद्द कर दिये गये। मिसाल के लिए पब्लिक सक्टर की इडियन ट्यूब कम्पनी को ओ० एन० जी० सी० ने ब्रिटिश स्टील कम्पनी के बताये हुए मोटे मोटे नल सप्लाई करने का ठेका दे रखा था। मारुति के एक प्रतिनिधि झुनझुनवाला न ब्रिटिश स्टील के प्रतिनिधि चार्ल्स गाडन स मिलकर उन्ह यह पट्टी पढ़ायी कि अगर ब्रिटिश स्टीलवाले मारुति का अपना एजेंट बना लें तो उन्ह बहुत फायदा रहगा। ब्रिटिश स्टीलवाले राजी हो गये और इसके फौरन ही बाद इडियन ट्यूब कम्पनी का ठेका खत्म कर दिया गया। इसी तरह जब मारुति ने इटरनैशनल हार्वेस्टर की तरफ म पैरवी की तो पोलड के साथ फसल काटने की मशीनें सप्लाई करन का ठेका खत्म कर दिया गया।

एक और मिसाल है जब ओ० एन० जी० सी० को चौबीस भारी ट्रको का आॅडर मारुति की मारफत देने पर मजबूर किया गया। इनम म बारह इण्टरनेशनल हार्वेस्टर वाले सप्लाई करनेवाले थ और बाकी बारह पश्चिमी जमनी की कम्पनीमैन। मारुति का टेंडर 50 लाख रुपय का था, जो उसके बाद वाल सबसे ऊँचे टेंडर स भी दुगुना था। जब ओ० एन० जी० सी० ने आठ ऐसी टकों के लिए टेंडर मँगाये जिन पर 40 से 45 टन तक के क्रेन लगे हो, तो सबस नीचा टेंडर नई दिल्ली के अथ मूविंग एण्ड मशीनरी कार्पोरेशन का था। वे अमरीकी हान्स्ट क्रेन 1 करोड 58 लाख रुपय

मे दे रहे थे। मारुति ने शुरू मे 1 करोड 76 लाख रुपये का टेंडर दिया था लेकिन बाद मे उसे घटाकर 1 करोड 70 लाख रुपये का कर दिया था। ठेका पहली वाली कम्पनी को दिया जानेवाला था लेकिन केशवदेव मालवीय ने खुद बीच मे पडकर उसे मारुति को दिलवा दिया।

इनसोव ग्राटो लि० नामक कम्पनी का कारोबार बिठा देने के पीछे भी मारुति का ही हाथ था। इस कम्पनी का उद्देश्य सोवियत सघ के सहयोग से मोटरगाडियाँ बनाना था। दोना देशो के बीच जो समझौता हुग्रा था उसमे कहा गया था कि ग्रोम्माश एक्सपोट मास्को उत्तर प्रदेश के सडीला शहर म लगाये जानेवाले एक कारखाने मे 400 गाडियाँ बनाने के लिए ग्रावश्यक विदेशी कल पुर्जे सप्लाई करेगा। लेकिन इमर्जेंसी लागू होने के कुछ हा समय बाद उद्याग मत्रालय ने सोवियत वालो को लिख दिया कि मारुति लि० के पास चूकि 'हल्की व्यावसायिक गाडियाँ बनाने की सभी ग्रावश्यक सुविधाएँ मौजूद हैं इसलिए भारत म एक ग्रौर कारखाना लगाने की कोई जरूरत नही है। इसके बजाय विदेशी कल-पुर्जे मारुति लि० को सप्लाई कर दिये जायँ, ग्रौर जो मोटरगाडियाँ बनाने की योजना है उन्हे वही बनायेगा। इसके बाद एक ग्रौर खत भेजा गया जिसमे यह बात साफ कर दी गयी थी कि सरकार एक नया कारखाना लगाने की इजाजत नही देगी। नतीजा यह हुग्रा कि इस योजना को चुपचाप उठाकर ताक पर रख दिया गया।

शायद जिस घोटाले के बारे मे सबसे ज्यादा दस्तावेज मिलते हैं वह हवाई जहाजो वाला घोटाला है। पाइपर हवाई जहाजो के एजेण्ट की हैसियत से सजय ने उन्नीस पाइपर हवाई जहाजो के ग्रॉडर जुटाये। इनम से हर हवाई जहाज पर सजय को विदेशी मुद्रा म पाच पाँच लाख रुपया कमीशन मिला। पाइपर से सजय ने मॉल नामक हवाई जहाजो की एजेंसी ले ली—जिसे ग्रमरीका ने बडी-बडी कम्पनियो के ग्रफसरो के लिए बनाया था। यह महसूस करके कि हिन्दुस्तान म 'मॉल' हवाई जहाज खरीदनेवाले गिनती के ही मिल सकेंगे, सजय ने कृषि मत्रालय पर दबाव डाला कि वह फसलो पर दवा छिडकनेवाला 'बसत हवाई जहाज बनाना बन्द कर दे ग्रौर उसकी जगह 'मॉल इस्तेमाल करे। सौभाग्य से इमर्जेंसी खत्म हो जाने की वजह से इसके बारे मे कोई ग्राखिरी फसला नही किया जा सका।

जसे जसे हवाई जहाजो मे सजय का दखल बढता गया उसने एक नई कम्पनी खडी कर दी—मारुति एविएशन कम्पनी। शायद उसका इरादा यह था कि एक तीसरी फीडर एयर लाइन चलायी जाये जिसका कारोबार प्राइवट लोगो के हाथ मे रहे, ग्रौर इण्डियन एयर लाइस ग्रौर दूसरी सरकारी सस्थाएँ उसकी मदद करें। ग्रब यह बात मालूम हो चुकी है कि उसने इण्डियन एयरलाइस को इसकी छान-बीन करने के लिए राजी कर लिया था कि यह सुझाव किस हद तक सफल हो सकता है। हवाई जहाजो मे ग्रपनी बढती हुई दिलचस्पी की वजह से सजय ने सफदरजग का हवाई ग्रड्डा हथिया लेने की कोशिश की। उसने इण्डियन एयरलाइस को हुक्म दिया कि वह सारे हैंगर खाली कर दे ग्रौर ग्रपनी सारी बसें स्टेशन वगन ग्रौर मोटरें इन्द्रप्रस्थ एस्टेट मे दिल्ली ट्रासपोट कार्पोरेशन के डिपो मे खडी किया करे। वह मारुति एविएशन की वकशाप सफदरजग हवाई ग्रड्डे मे लगाना चाहता था। किस्मत स इमर्जेंसी खत्म हो जाने वजह से यह हवाई योजना भी खत्म हो गयी।

जसे जस सजय ग्रौर उसके साथी ज्यादा मुनाफा देनेवाले कारबारा म हाथ डालत गय वैसे वैसे बडे पमाने पर 'जनता मोटर बनाने की योजना को छोड दिया। मारुति लि० के कमचारियो को काम पर लगाये रखने के लिए

के कैप, नामों की तख्तियाँ, तालों का सामान और दूसरी छोटी-मोटी चीजें बनाने का काम दिया जाता रहा। कभी-कभी इस कम्पनी को बिलकुल ही निराले ढंग का ठेका मिल जाता था, जैसे रक्षा मंत्रालय के लिए बमों के 'कैप-चैम्बर' बनाने का ठेका। बीच-बीच में इस तरह के ठेके मिलते रहने के बावजूद मारुति लि० कर्जों की दलदल में धँसती गयी। 1976 के अन्त तक उस पर 2 करोड़ 30 लाख रुपये का कर्जा चढ़ चुका था, जो कि उसकी 2 करोड़ 64 लाख रुपये की बुनियादी जमा पूँजी के लगभग बराबर ही था।

अगर लोग मारुति को 'माँ रोती' कहने लगे थे तो इसमें ग़लत क्या था।

परिशिष्ट 2

सेंसरशिप की मार्गदर्शिकाएं

प्रकाशनार्थ नहीं (गोपनीय)

1 सेंसरशिप का उद्देश्य अखबारों का इस सम्बन्ध में मार्गदर्शन करना तथा उन्हें इसके बारे में सलाह देना है कि वे अनधिकृत, दायित्वहीन अथवा निराशाजनक समाचार, रिपोर्टें, अटकलबाजियाँ या अफवाहें छापने से कैसे बचें। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए इन मार्गदर्शिकाओं का लक्ष्य यह है कि देश में सार्वजनिक सुव्यवस्था बनाये रखने स्थायित्व तथा आर्थिक प्रगति के लिए अनुकूल वातावरण बनाये रखने में समाचार पत्र जगत के सभी हिस्सों का स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त किया जाये।

2 सेंसरशिप की परिधि में हर समाचार, रिपोर्ट, टिप्पणी, वक्तव्य, दृश्य अभिव्यक्ति, फिल्म, फोटो, चित्र तथा कार्टून आ जाता है।

3 सेंसरशिप संसद, किसी भी विधानसभा या न्यायालय की कारवाइयों से सम्बन्धित समाचारों, टिप्पणियों अथवा रिपोर्टों के प्रकाशन पर लागू होती है। इन संस्थाओं की कारवाइयों को प्रकाशित करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए

(क) संसद तथा विधानसभाओं के प्रसंग में

1) सरकार की ओर से दिये गये वक्तव्य पूर्ण रूप में अथवा संक्षिप्त रूप में प्रकाशित किये जायें, पर उसकी अन्तर्वस्तु सेंसरशिप के नियमों का उल्लंघन न करे।

2) किसी विषय पर बोलनेवाले सदस्यों के नाम तथा उनके दलों के नाम दिये जायें तथा यह भी उल्लेख किया जाये कि वे विषय के पक्ष में बोले या उसके विरुद्ध।

3) विधेयकों, सुझावों अथवा प्रस्तावों पर होनेवाले मतदान के परिणाम तथ्य रूप में दिये जायें, और मतदान होने की स्थिति में यह उल्लेख किया जाये कि कितने मत पक्ष में थे और कितने विरुद्ध।

4) कोई भी इतर-संसदीय गतिविधि अथवा कोई भी ऐसी चीज जो संसद/विधानसभा की सरकारी कारवाइयों में से निकाल दी गयी हो, प्रकाशित न की जाये।

(ख) न्यायालयों के प्रसंग में

1) जजों के तथा वकीलों के नामों का उल्लेख किया जाये।

2) न्यायालय के आदेश का वह भाग, जिसमे यह बताया गया हो कि क्या कारवाई की जानी है, प्रकाशित किया जाये परन्तु उपयुक्त भाषा मे।
3) सेंसरशिप के नियमो का अतिक्रमण करनेवाली कोई सामग्री न छापी जाये।

4 समाचार, टिप्पणियाँ अथवा रिपोर्टें प्रकाशित करत समय निम्नलिखित बातें ध्यान में रखी जायें

(क) हर समाचार तथा रिपोट के बारे मे यह सुनिश्चित कर लिया जाये कि वह तथ्यो की दृष्टि से बिलकुल ठीक है, और सुनी सुनायी बातो अथवा अफवाहो पर आधारित कोई बात न प्रकाशित की जाये।
(ख) किसी ऐसी आपत्तिजनक सामग्री को, जो पहले प्रकाशित हो चुकी हो, फिर से ज्यो-का-त्यो छाप देने की अनुमति नहीं है।
(ग) सचार के आधारभूत साधनो से सम्बन्धित कोई भी अनधिकृत समाचार अथवा विज्ञापन अथवा चित्र प्रकाशित न किया जाये।
(घ) परिवहन अथवा सचार, आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति तथा वितरण, उद्योग आदि की सुरक्षा से सम्बन्धित व्यवस्थाओ के बारे मे कुछ भी प्रकाशित न किया जाये।
(ङ) किसी भी प्रकाशनाथ सामग्री का सम्बन्ध आन्दोलनो तथा हिंसात्मक घटनाओ से नही होना चाहिए।
(च) ऐसे उद्धरण, जो अपने प्रसग से अलग हो तथा जिनका अभिप्राय गुमराह करना अथवा कोई विकृत अथवा गलत प्रभाव उत्पन्न करना हो, न प्रकाशित किये जायें।
(छ) प्रकाशित सामग्री म इस बात का कोई सकेत न हो कि उस सेंसर किया गया है।
(ज) नजरबन्द राजनीतिक व्यक्तियो के नामो का तथा इस बात का कि वे कहाँ नजरबन्द हैं कोई उल्लेख न किया जाय।
(झ) कोई भी ऐसी सामग्री न प्रकाशित की जाये जिससे इस बात की सम्भावना हो कि

1) विदेशो के साथ भारत के सम्बन्धो पर बुरा प्रभाव पड़ेगा,
2) जनतान्त्रिक सस्थाओ के काम-काज मे बाधा पडगी,
3) प्रधानमत्री, राष्ट्रपति राज्यपालो और सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयो के न्यायाधीशो की सस्थाओ की निन्दा हागी,
4) आन्तरिक सुरक्षा तथा आर्थिक स्थायित्व के लिए खतरा उत्पन्न होगा,
5) सशस्त्र सेना के सदस्यो अथवा सावजनिक कमचारियों के बीच अश्रद्धा उत्पन्न हागी,
6) देश मे कानून के आधार पर स्थापित सरकार के प्रति घृणा अथवा तिरस्कार की भावना जागृत हागी,

7) भारत के नागरिकों के विभिन्न वर्गों के बीच वैमनस्य तथा घृणा की भावना को बढ़ावा मिलेगा,

8) वह देश के भीतर किसी भी जगह काम रुक जाने तथा धीमा पड़ जाने का कारण बन जायेगी अथवा इस स्थिति को उत्पन्न कर देगी अथवा उसके लिए उकसावा देगी अथवा उसे उत्तेजित करेगी,

9) राष्ट्रीय ऋण के प्रति अथवा किसी भी सरकारी ऋण के प्रति सार्वजनिक विश्वास की जड़ें खोखली होंगी,

10) किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के किसी वर्ग को करों का भुगतान करने से इंकार करने अथवा उसमें विलम्ब करने का प्रोत्साहन अथवा उकसावा मिलेगा

11) सार्वजनिक कर्मचारियों के विरुद्ध अपराधपूर्ण बल का प्रयोग करने का उकसावा मिलेगा,

12) लोगों को प्रतिबंधकारी नियमों को तोड़ने का प्रोत्साहन मिलेगा।

5 आकाशवाणी के प्रसारणों समाचार एजेंसियों की रिपोर्टों तथा सरकार की ओर से सरकारी तौर पर जारी किये गये बयानों के उद्धरण प्रकाशित करने की अनुमति है, परन्तु शर्त यह है कि इस प्रकार के उद्धरण में जो कुछ कहा गया हो उसका सच्चा तथा यथार्थ विवरण प्रस्तुत करें और कोई भी चीज उसके उचित प्रसंग से अलग न की जाये या किसी भी प्रकार विकृत न की जाये।

6 यदि किसी संवाददाता को कोई खबर किसी ऐसे स्रोत से मिली हो जो सरकारी अथवा प्रामाणिक नहीं है तो उसकी पुष्टि प्रेस सूचना अधिकारी से प्राप्त की जा सकती है।

7 यदि किसी अखबार, पत्र पत्रिका अथवा किसी अन्य दस्तावेज़ में, केवल सम्पादकीय टिप्पणी को छोड़कर, कोई ऐसी रिपोर्ट, टिप्पणी अथवा कोई अन्य सामग्री प्रकाशित हो, जो इन मार्गदर्शिकाओं के शब्दों तथा उनके आशय के प्रतिकूल हो, और यदि यह स्पष्ट हो कि वह केवल स्थानीय संवाददाता की दी हुई सामग्री पर ही आधारित हो सकती है तो उसके लिए स्थानीय संवाददाता को ही उत्तरदायी ठहराया जायेगा जब तक कि यह न सिद्ध कर दिया जाये कि सत्य अन्यथा है।

8 ऐसी हर प्रकाशित सामग्री की प्रतिलिपि, जिसे पहले से सेंसर न कराया गया हो, प्रधान सेंसर के पास उसकी जानकारी के लिए भेज दी जाये।

9 किसी समाचार, रिपोर्ट अथवा टिप्पणी को प्रकाशित करना उचित होगा या नहीं, इसके विषय में यदि कोई शंका हो तो मुख्य सेंसर से परामर्श किया जाये।

प्रकाशनार्थ नहीं

व्याख्या 1—सरकार के किसी कानून या किसी नीति या किसी प्रशासनिक कारवाई को वैध उपायों से बदलवाने या उसका निवारण कराने के उद्देश्य से व्यक्त की गयी नापसन्दीदगी अथवा आलोचना को, और जिन बातों में भाषा-सम्बन्धी भावनाओं या प्रादेशिक जन समुदायों या जातियों या सम्प्रदायों के बीच असामंजस्य

उत्पन्न होता हो या जिनमे इस प्रकार का असामजस्य उत्पन्न करने की प्रवत्ति हो, उनको वैध उपायो से दूर कराने के उद्देश्य स उनकी ओर सकेत करनेवाले शब्दो को इस खण्ड के अभिप्राय की परिधि मे आपत्तिजनक सामग्री नही माना जायेगा।

व्याख्या 2—इस बात पर विचार करते समय कि कोई सामग्री विशेष इस अधिनियम के अन्तगत आपत्तिजनक है अथवा नही, ध्यान इस बात की ओर दिया जायेगा कि उन शब्दा, चिह्नो अथवा दृश्य अभिव्यक्तियो का प्रभाव क्या पडता है, न कि यह कि उस समाचार-पत्र अथवा समाचार पत्रक को छापनेवाले प्रेस के रखवाले या प्रकाशक अथवा सपादक का अभिप्राय क्या था।

10 जो कुछ पहले कहा जा चुका है उसे उदाहरणो से स्पष्ट कर देने के लिए यह सलाह दी जाती है कि निम्नलिखित से सम्बधित कोई समाचार, रिपोर्ट तथा टिप्पणिया प्रकाशित न की जायें

(क) ऐसी बातें जो सरासर अभद्र अथवा अश्लील हो या जिनका उद्देश्य दूसरे को डरा धमकाकर अपना काम निकालना हो,

(ख) इतर ससदीय गतिविधियाँ अथवा कारवाइयाँ, जसे घरने, बैठकी हडतालें, मच की ओर भपट पडना चिल्लाना, अध्यक्ष की आज्ञा का पालन करने से इकार करना, क्योकि ये बातें कारवाइयो का अग नही हैं,

(ग) ऐसी बातें जिनमे (प्रदेश, धम, नस्ल, भाषा अथवा जाति पर आधारित) विभिन्न जन-समुदायो के बीच शत्रुता, घृणा अथवा मनमुटाव की भावना को बढावा देने की प्रवत्ति हो,

(घ) समाचार पत्रो, पत्रिकाओ, प्रकाशनो, पुस्तको से लिये गये ऐसे उद्धरण जो सेंसरशिप के नियमो का उल्लघन करत हो,

(ङ) वे बातें जिन्हें अध्यक्ष ने कारवाई मे से निकलवा दिया हो,

(च) ऐसी बातें जो विदेशो के साथ मैत्रीपूण सम्बन्धो को बढावा देने मे बाधक हो,

(छ) ऐसी बातें जो देश की सुरक्षा तथा अखण्डता की आवश्यकताओ का अतिलघन करती हो,

(ज) ऐसी बातें जिनमे जनतान्त्रिक सस्थाओ के कामकाज को ध्वस्त करने की प्रवत्ति हो।

प्रकाशनार्थ नहीं

8 मार्च 1976 से आरम्भ होनेवाले ससद के अधिवेशन की कारवाइयों के समाचार देने के सम्बन्ध मे मार्गदर्शिकाएँ

1 ससद एक सवसत्ताधारी संस्था है और, इसलिए, उसकी कारवाइया की अपनी एक पवित्रता है। किसी भी दशा म जनता का स्वर तथा सवसत्ताधारी सस्था होने का ससद का स्वरूप कलकित नहीं होने देना चाहिए। इसलिए कोई भी ऐसा समाचार रिपोट अथवा टिप्पणी प्रकाशित न की जाये जिसमे ससद की कारवाइया की पवित्रता को दूषित करने का प्रयत्न किया गया हो या इन कारवाइया को गलत अथवा विकृत रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया हो।

2 संसद की कार्रवाइयों से सम्बन्धित समाचारों, रिपोर्टों तथा टिप्पणियों पर डी० आई० एस० आई० आर० 1971 का नियम 48 और उसके अन्तर्गत जारी किये गये कानूनी आदेश लागू होते हैं। 26 जून 1975 को जारी किये गये कानूनी आदेश 275 (ई), और डी० आई० एस० आई० आर० के नियम 48 के अन्तर्गत 12 अगस्त 1975 तथा 2 फरवरी 1976 को उसमे किये गये संशोधनों के प्रावधान इस प्रसंग मे उपयुक्त हैं। इनकी परिधि मे वे सभी समाचार, टिप्पणियाँ, अफवाहें तथा अन्य रिपोर्टें आ जाती हैं जिनका सम्बन्ध निम्नलिखित बातों से हो

(क) उक्त नियमों के, जिनमे उनके अन्तर्गत जारी किये गये आदेश भी शामिल हैं, भाग तीन के नियम 31 तथा 33, भाग चार के नियम 36, 38, 39, 43, 46, 47, 48, 50 51 तथा 52, भाग पाँच, भाग आठ तथा भाग नौ के प्रावधानों मे से किसी का भी उल्लंघन अथवा तथाकथित अथवा निहित उल्लंघन, या

(ख) इस प्रकार के उल्लंघन के सम्बन्ध मे की गयी कोई कारवाई, या

(ग) आन्तरिक सुरक्षा संरक्षण अधिनियम 1971 (1971 का 26वाँ अधिनियम) के प्रावधानों के अन्तर्गत की गयी कोई कारवाई, या

(घ) संविधान की धारा 352 के अन्तर्गत 25 जून 1975 को राष्ट्रपति की आपात स्थिति की घोषणा, या

(ङ) संविधान की धारा 359 के अन्तर्गत 26 जून 1975 को जारी किया गया राष्ट्रपति का आदेश, या

(च) भारत प्रतिरक्षा अधिनियम 1971 (1971 का 42वाँ अधिनियम) के प्रावधानों के अन्तर्गत, या भारत प्रतिरक्षा (संशोधन) अधिनियम 1975 (1975 का 32वाँ अधिनियम) द्वारा संशोधित रूप मे इस अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत, या उनके अन्तर्गत बनाये गये नियमों अथवा जारी किये गये आदेशों के अन्तर्गत की गयी कोई कारवाई, या

(छ) कोई 'प्रतिकूल रिपोर्ट', उस परिभाषा के अनुसार, जो भारत प्रतिरक्षा तथा आन्तरिक सुरक्षा नियम, 1971 के नियम 36 की धारा 7 में दी गयी है, या

(ज) संविधान की धारा 356 के अन्तर्गत 31 जनवरी 1976 को तमिलनाडु राज्य के सम्बन्ध मे जारी की गयी राष्ट्रपति की घोषणा।

3 संसद की कारवाइयों के समाचार देते समय आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन की रोकथाम से सम्बन्धित अधिनियम 1976 मे आपत्तिजनक बतायी गयी बातों का भी ध्यान मे रखा जाना चाहिए। इस अधिनियम मे आपत्तिजनक सामग्री की परिभाषा जिस रूप मे की गयी है वह इस प्रकार है

आपत्तिजनक सामग्री का अभिप्राय उन सभी शब्दों, चिह्नों अथवा अन्य अभिव्यक्तियों से है

(क) जिनसे इस बात की सम्भावना हो कि

1) भारत मे या उसके किसी राज्य में कानून के आधार पर स्थापित सरकार के प्रति घृणा अथवा तिरस्कार की भावना उत्पन्न होगी या उसके प्रति अश्रद्धा की भावना को उकसावा मिलेगा और उसके

फलस्वरूप सार्वजनिक अव्यवस्था फैलेगी या फैलने की प्रवृत्ति पैदा होगी, या

2) किसी व्यक्ति को खाद्य सामग्री अथवा अन्य आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन, आपूर्ति अथवा वितरण में या आवश्यक सेवाओं में हस्तक्षेप करने का उकसावा मिलेगा, या

3) सशस्त्र सेनाओं अथवा सार्वजनिक सुव्यवस्था को बनाये रखने का दायित्व सँभालने वाले सशस्त्र दल के किसी सदस्य को अपनी प्रतिबद्धता अथवा अपने कर्त्तव्य से विमुख होने का प्रलोभन मिलेगा, या इस प्रकार के किसी सशस्त्र दल में सेवा करने के लिए लोगों का भरती करने में विघ्न पड़ेगा या इस प्रकार के सशस्त्र दलों के अनुशासन पर कोई आँच आयेगी।

4) विभिन्न धार्मिक, नस्ली, भाषाई अथवा प्रादेशिक जनसमुदायों अथवा जातियों अथवा सम्प्रदायों के बीच शत्रुता, घृणा अथवा मनमुटाव की भावनाओं अथवा असामंजस्य को बढ़ावा मिलेगा, या

5) जनसाधारण में या जनसाधारण के किसी भाग में ऐसा भय अथवा आतंक उत्पन्न होगा जिससे किसी व्यक्ति को राज्यसत्ता के विरुद्ध अथवा सार्वजनिक शान्ति के विरुद्ध अपराध करने की प्रेरणा मिले, या

6) किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के किसी वर्ग अथवा समुदाय को किसी व्यक्ति की हत्या करने, कोई उपद्रव करने अथवा अन्य कोई अपराध करने का उकसावा मिले,

(ख) जो कि

1) भारत के राष्ट्रपति, भारत के उप राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोकसभा के अध्यक्ष अथवा किसी राज्य के राज्यपाल के प्रति निन्दाजनक हो,

2) सरासर अभद्र हो, अथवा अश्लील हो, अथवा जिसका उद्देश्य किसी को डरा धमकाकर अपना काम निकालना हो।

एन० डी० एस० 12 यू० एन० आई० के सभी केन्द्रों तथा सभी ग्राहकों के लिए मीरचदानी की ओर से

कल बहुत रात गये सेंसर कार्यालय ने हमें मौखिक रूप से निम्नलिखित नयी मार्गदर्शिकाओं की सूचना दी। ये आपकी जानकारी के लिए हैं, और इन्हें प्रकाशित न किया जाये

निम्नलिखित तीन मामलों के बारे में कोई खबर न छापी जाये

1 संसद के आगामी अधिवेशन का काय,
2 सुप्रीम कोर्ट में प्रधानमंत्री के चुनाव का मुकद्दमा, और
3 जिन पार्टियों पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है उनके किसी भी प्रतिनिधि का कोई भी बयान।

प्राथमिकता
डी० ई० एल० 65 जनरल

संपादकों के लिए परामर्श केवल आपकी जानकारी के लिए, प्रकाशनार्थ नहीं। आज सुबह डी० ई० एल० 4 के अन्तर्गत इससे पहले जारी किये गये परामर्श से आगे।

मुख्य सेंसर ने संसद की कारवाइयों के बारे में समाचार देने के सम्बन्ध में निम्नलिखित मार्गदर्शिकाएँ भेजी हैं

(क) मंत्रियों के वक्तव्य पूर्ण रूप में या संक्षिप्त रूप में प्रकाशित किये जा सकते हैं, परन्तु उसकी विषय वस्तु से सेंसरशिप के नियमों का अतिक्रमण नहीं होना चाहिए।

(ख) किसी बहस में भाग लेनेवाले संसद सदस्यों के भाषण किसी भी रूप में या किसी भी ढंग से प्रकाशित नहीं किये जायेंगे, परन्तु उनके नामों का और जिन दलों से उनका सम्बन्ध है उनके नाम प्रकाशित किये जा सकते हैं। बहस में भाग लेनेवाले सदस्यों के नाम प्रकाशित करते समय इस बात का उल्लेख किया जाये कि उन्होंने किस सुझाव का समर्थन किया या विरोध।

(ग) किसी विधेयक, सुझाव, प्रस्ताव आदि पर मतदान के परिणामों का समाचार यथार्थ रूप में दिया जाये। मतदान होने की स्थिति में इस बात का उल्लेख किया जाये कि कितने मत पक्ष में थे और कितने विरुद्ध।

संपादकगण हमसे मुख्य प्रेस सलाहकार की ओर से जारी की गयी निम्नलिखित मार्गदर्शिकाएँ आपकी जानकारी के लिए प्रसारित करने को कहा गया है (प्रकाशनार्थ नहीं)।

मौजूदा इमर्जेंसी में अखबारों के लिए मार्गदर्शिकाएँ

आन्तरिक उपद्रव से भारत की सुरक्षा तथा उसके स्थायित्व के लिए उत्पन्न हो जानेवाले खतरे का मुकाबला करने के लिए राष्ट्रीय इमर्जेंसी की घोषणा का यह तकाजा है कि खबरों तथा टिप्पणियों की व्यवस्था करने तथा उन्हें भेजने में अत्यधिक सावधानी तथा सतर्कता बरती जाये। अखबारों को यह सलाह देना आवश्यक है कि वे अनधिकृत, गैर जिम्मेदाराना या निराशाजनक खबरें, अटकलें तथा अफवाहें प्रकाशित करने से सावधान रहें, साथ ही अखबारों को जन-साधारण के प्रति अपना दायित्व निभाने का पूरा अवसर मिलना चाहिए। अखबार इमर्जेंसी के दौरान सरकार का तथा जन-साधारण का एक सबसे ताकतवर सहारा होते हैं। कोई भी जानकारी किस ढंग से छापी, प्रकाशित तथा प्रसारित की जाती है इसमें उन लोगों को बेहद बल मिल सकता है जो देश की आन्तरिक सुरक्षा के लिए खतरा पैदा कर रहे हैं।

आन्तरिक खतरे का मुकाबला करने के लिए जिस इमर्जेंसी की घोषणा की गयी है उसमें सरकार को मुख्यतः देश के भीतर के उन गुमराह और विध्वंसक तत्वों की ओर से चिन्ता है जो अपनी हरकतों से राष्ट्र की शान्ति तथा उसके स्थायित्व में विघ्न

डालने की कोशिश कर सकते हैं। एक जनतान्त्रिक देश मे, जिसमे नागरिक राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्यो तथा दायित्वो के प्रति पूरी तरह सजग हो, सरकार का उद्देश्य हर मामले मे उन व्यापक तथा असाधारण शक्तियो पर निर्भर रहना उतना नही होता, जो उसे प्रदान की गयी हो, जितना कि राष्ट्र को इमर्जेंसी के कारणो से छुटकारा दिलाने के बुनियादी काम को पूरा करने के लिए अनुकूल वातावरण बनाये रखने मे देश की आबादी के सभी हिस्सो का ऐच्छिक सहयोग प्राप्त करना।

सामान्य मार्गदर्शन

1 यदि कोई समाचार स्पष्टत खतरनाक हो, तो अखबार उसे स्वय ही न छाप कर मुख्य प्रेस सलाहकार की सहायता करें। यदि कोई शका हो तो उस खबर को निकटतम प्रेस सलाहकार के पास भिजवाया जा सकता है और भिजवा दिया जाना चाहिए।

2 यदि कोई सामग्री प्रकाशित करने से पहले जाँच के लिए भेज दी गयी हो तो प्रेस सलाहकार की सलाह को माना जाये।

3 यदि किसी मामले से सम्बधित खबरो अथवा टिप्पणियो के प्रकाशन के विरुद्ध सलाह देते हुए मार्गदर्शन किया जा रहा हो, तो उस मामले का कोई उल्लेख तब तक न किया जाये या उसका कोई हवाला तब तक न दिया जाये जब तक कि उसके लिए नये सिरे से मजूरी न प्राप्त कर ली गयी हो, क्योकि हमेशा सयम से काम लिया जाना चाहिए और सनसनीखेज बातें छापने से बचना चाहिए, हम एक बार फिर दोहरा दें, छापने से बचना चाहिए। विशेष रूप से पोस्टरो के चित्रो तथा शीर्षको मे इस बात का पालन किया जाना चाहिए।

4 अफवाहो का कोई प्रचार न किया जाये।

5 जब कोई दस्तावेज या फोटो चित्र सरकारी तौर पर जारी किया जाये तो इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि उसके साथ जो विवरण अथवा अखबार के लिए हिदायत भेजी जाये उसका आशय बाकी रखा जाये।

6 किसी भारतीय अथवा विदेशी अखबार म यदि कोई आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित हो चुकी हो तो उसे दुबारा प्रकाशित न किया जाये।

7 सचार के आधारभूत साधनों के सम्बन्ध म कोई भी अनधिकृत खबर या विज्ञापन या चित्र प्रकाशित न किया जाये।

8 परिवहन अथवा सचार आवश्यक वस्तुओ की आपूर्ति तथा वितरण आदि की सुरक्षा से सम्बधित व्यवस्था के बारे मे कुछ भी प्रकाशित न किया जाये।

9 कोई भी ऐसी सामग्री प्रकाशित न की जाये जिससे सशस्त्र सेना के सदस्यों या सरकारी नौकरो के बीच अश्रद्धा की भावना पैदा हो सकती हो।

10 कोई भी ऐसी सामग्री प्रकाशित न की जाये जिससे भारत मे कानून के आधार पर स्थापित सरकार के प्रति घृणा अथवा तिरस्कार उत्पन्न हो या अश्रद्धा की भावना को उकसावा मिले।

11 कोई भी ऐसी सामग्री प्रकाशित न की जाये जिससे भारत के निवासियों के विभिन्न वर्गों के बीच शत्रुता तथा घृणा की भावना को बढ़ावा मिलने की सम्भावना हो।

12 कोई भी ऐसी सामग्री प्रकाशित न की जाये जिसमे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी जगह काम ब द हो जाने या इसकी गति धीमी पड जाने का कारण बन जाने की या उस स्थिति को वस्तुत पैदा कर देने की उसके लिए उकसावा देने या उत्तेजना प्रदान करने की सम्भावना निहित हो।

13 कोई भी ऐसी सामग्री प्रकाशित न की जाये जिससे राष्ट्रीय ऋण के प्रति अथवा किसी भी सरकारी ऋण के प्रति सावजनिक विश्वास की जडें खोखली हो जाने की सम्भावना हो।

14 कोई भी ऐसी सामग्री प्रकाशित न की जाये जिससे किसी व्यक्ति को या व्यक्तियो के किसी वग को करो का भुगतान करने से इकार करने या उसे टाल देने का प्रोत्साहन या उकसावा मिले।

15 कोई भी ऐसी सामग्री प्रकाशित न की जाये जिससे सावजनिक कमचारियो के विरुद्ध अपराधपूण बल का प्रयोग करने के लिए भडकावा मिलने की सम्भावना हो।

16 प्रतिकूल रिपोट का अभिप्राय किसी भी ऐसी, सच्ची या झूठी रिपोट, वक्तव्य अथवा दृश्य रिपोट से है जो या जिसका प्रकाशन, ऊपर बताये गये किसी भी हानिकर काय को करने के लिए उकसावा हो।

अखबारो के लिए सामान्य मार्गदर्शिकाएँ

अखबारो को सलाह दी जाती है कि सन्देश, समाचार, रिपोर्टें तथा टिप्पणियाँ आदि भेजते समय निम्नलिखित मुख्य बातो का ध्यान रखें।

1 जनतान्त्रिक सस्थाओ के काम काज मे विघ्न डालने की कोई भी कोशिश।

2 सदस्यो को इस्तीफा देने पर मजबूर करने की कोई कोशिश।

3 आन्दोलनो तथा हिंसात्मक घटनाओ से सम्बन्धित कोई भी बात।

4 सशस्त्र सेना अथवा पुलिस को भडकाने की कोई कोशिश।

5 देश की एकता को खतरे मे डालकर विघटन तथा साप्रदायिक आवेगो को बढावा देने की कोई कोशिश।

6 नेताओ के विरुद्ध झूठे आरोपो की रिपोर्टें।

7 प्रधानमत्री के पद को निंदित करने की कोई कोशिश।

8 सामान्य काम काज मे विघ्न डालने के लिए क़ानून तथा व्यवस्था को खतरे मे डालने की कोई कोशिश।

9 आन्तरिक स्थायित्व, उत्पादन तथा आर्थिक सुधार की सम्भावनाओ को खतरे मे डालने की कोई कोशिश।

सेंसर का फोन

सीरिया के दूतावास पर अरब छात्रो के कब्जा कर लेने के बारे में केवल 'समाचार' की भेजी हुई खबर छापी जाये।
5-6-1976

सेंसर से श्री राघवन

आ म प्रदेश हाईकोर्ट के जजो के तबादले के बारे मे कोई खबर प्रकाशित न की जाये।
8 जुलाई, 1976
5 30 बजे शाम

सेंसर के दफ्तर से

सेंसर से श्री मेहरसिंह ने फोन करके कहा---समझा जाता है कि श्री जयप्रकाश नारायण ने प्रधानमंत्री के कोष से जयप्रकाश के इलाज के लिए डायलिसिस यत्र खरीदने के लिए प्रधानमंत्री के योगदान के सम्बन्ध मे प्रधानमंत्री को लिखा गया अपना पत्र प्रकाशन के लिए भेजा है। आपसे अनुरोध है कि इस खबर का इस्तेमाल न करें।

सेंसर रूम से आय

इसके (जयप्रकाश के पत्र के) सम्बन्ध मे 'समाचार' खबर भेजेगा। उसे प्रकाशन की मजूरी दे दी गयी है।

(ह०)
16-6 1976 समाचार सपादक

सेंसर के दफ्तर से फोन (जे० एन० सिन्हा)

आज दिल्ली मे मिजो प्रतिनिधिमण्डल के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए हैं। इस समझौते तथा उसकी पृष्ठभूमि के बारे मे पी० आई० बी० ने सामग्री भेजी है। इस सबध मे कृपया कोई आलोचनात्मक टिप्पणी न की जाये।
1 जुलाई, 1976

सेंसर का सन्देश

अगर एम० एन० एफ० के नेता लालडेंगा कोई बयान जारी करें तो वह सेंसर के पास भेज दिया जाये।

(ह०)
2 7 1976 समाचार सपादक

सेंसर का टेलीफोन

अखबार मे चार्ल्स सोबराज के बारे म, जो एक अ तर्राष्ट्रीय धोखेबाज है और दिल्ली म धोखाधडी और जहर देने के इलजाम म पकडा गया है कोई खबर न छापी जाये। यह टेलीफोन श्री भट्टाचार्य ने लिया था।
6 जुलाई, 1976

उप मुख्य सेंसर आप का फोन

युगाडा मे इस्राइली हमले के बारे म कोई खबर, टिप्पणी या चित्र 14 जुलाई तक न छापा जाये। विशेष रूप से इस्राइली कारवाई की प्रशसा करने और उसे उचित ठहराने की कोशिश न की जाये।
8 जुलाई 1976

सेंसर का फोन (राघवन)

अगर कोई सवाददाता तटस्थ पूल सम्मेलन से किसी वाक् आउट के सम्बन्ध मे खबर भेजे तो उसे पहले सेंसर करा लिया जाये।

(ह०)
10 7 1976 समाचार सपादक

सेंसर का सन्देश

वाशिगटन मे आनेवाली इस आशय की कोई खबर न छापी जाये कि अमरीका के धनी व्यापारी श्री कुमार पाद्दार का पासपोट रद्द कर दिया गया है।

(ह०)
14 जुलाई, 1976 समाचार सपादक
प्रतिलिपि सपादक को

सेंसर का फोन

देश मे कीमतो की स्थिति से सम्बन्धित खबरें, टिप्पणियाँ या सपादकीय पहले सेंसर करा लेने के लिए भेजे जायें।

(ह०)
17 7 1976 समाचार सपादक

यह बात कीमतें गिरने स सम्बन्धित रिपोर्टों पर लागू नही होती (सेंसर से श्री ठकराल)।

सेंसर का सन्देश

जयप्रकाश के बारे मे कोई समाचार न छापा जाये।
20 जुलाई, 1976

सेंसर का फोन (राघवन)

कृपया उत्तर प्रदेश मे परिवार नियोजन कायक्रम और शिक्षा कर के बार म "नकी बुराई करत हुए कोई खबर या टिप्पणी या सपादकीय न छापें।

(ह०)
28 " 1976 समाचार सपादक

सेंसर का निर्देश

1 मुख्य सेंसर की एक हिदायत मे विरुद्ध दिल्ली हाईकोट म दायर की गयी स्टेटसमन की रिट के बार मे कुछ भी न छापा जाये।

2 जम्मू कश्मीर म लागू किये गय अध्यादेशों की वधता के सम्बन्ध म कोई खबर या टिप्पणी न छापी जाये।

(ह०)
29 7 1976

सेंसर से श्री राघवन

म्रा प्र प्रदेश हाईकोर्ट के जजो के तबादले के बारे म कोई खबर प्रकाशित न की जाये।
8 जुलाई, 1976
5 30 बजे शाम

सेंसर के दफ्तर से

सेंसर स श्री महरसिह ने फोन करके कहा—समझा जाता है कि श्री जयप्रकाश नारायण ने प्रधानमत्री के कोष से जयप्रकाश के इलाज के लिए डायलिसिस यत्र खरीदने के लिए प्रधानमत्री के योगदान के सम्बन्ध मे प्रधानमत्री को लिखा गया अपना पत्र प्रकाशन के लिए भेजा है। आपसे अनुरोध है कि इस खबर का इस्तेमाल न करें।

सेंसर रूम से प्राप्त

इसके (जयप्रकाश के पत्र के) सम्बन्ध मे 'समाचार' खबर भेजेगा। उसे प्रकाशन की मजूरी दे दी गयी है।

(ह०)
समाचार सपादक

16-6 1976

सेंसर के दफ्तर से फोन (जे० एन० सिन्हा)

आज दिल्ली मे मिस्रो प्रतिनिधिमण्डल के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए हैं। इस समझौत तथा उसकी पृष्ठभूमि के बार में पी० आई० बी० ने सामग्री भेजी है। इस सबध म कृपया कोई आलोचनात्मक टिप्पणी न की जाये।
1 जुलाई, 1976

सेंसर का सन्देश

अगर एम० एन० एफ० के नेता लालडेंगा कोई बयान जारी करें तो वह सेंसर के पास भेज दिया जाये।

(ह०)
समाचार सपादक

2 7 1976

सेंसर का टेलीफोन

अखबार मे चार्ल्स सोबराज के बारे म, जो एक अ तरराष्ट्रीय धोखेबाज है और दिल्ली म धोखाधडी और जहर देने के इन्तजाम म पकडा गया है कोई खबर न छापी जाय। यह टेलीफोन श्री भट्टाचार्य ने लिया था।
6 जुलाई, 1976

उप-मुख्य सेंसर आय का फोन

युगाडा म इस्राइली हमले के बारे म कोई खबर, टिप्पणी या चित्र 14 जुलाई तक न छापा जाये। विशेष रूप से इस्राइली कारवाई की प्रशसा करने और उसे उचित ठहराने की कोशिश न की जाय।
8 जुलाई 1976

सेंसर का फोन (राघवन)

अगर कोई सवाददाता तटस्थ पूल सम्मेलन से किसी वाक आउट के सम्बन्ध मे खबर भेजे तो उसे पहले सेंसर करा लिया जाये।

(ह०)

10 7 1976 समाचार सपादक

सेंसर का सन्देश

वाशिंगटन से आनेवाली इस आशय की कोई खबर न छापी जाये कि अमरीका के धनी व्यापारी श्री कुमार पोद्दार का पासपोर्ट रद्द कर दिया गया है।

(ह०)

14 जुलाई, 1976 समाचार सपादक

प्रतिलिपि सपादक को

सेंसर का फोन

देश मे कीमतो की स्थिति से सम्बन्धित खबरें, टिप्पणियाँ या सपादकीय पहले सेंसर करा लेने के लिए भेजे जायें।

(ह०)

17 7 1976 समाचार सपादक

यह बात कीमतें गिरने से सम्बन्धित रिपोर्टों पर लागू नही होती (सेंसर से श्री ठुकराल)।

सेंसर का सन्देश

जयप्रकाश के बारे मे कोई समाचार न छापा जाये।

20 जुलाई, 1976

सेंसर का फोन (राघवन)

कृपया उत्तर प्रदेश म परिवार नियोजन कायक्रम और शिक्षा-कर के बारे मे उनकी बुराई करते हुए कोई खबर या टिप्पणी या सपादकीय न छापें।

(ह०)

28 " 1976 समाचार सपादक

सेंसर का निर्देश

1 मुख्य सेंसर की एक हिदायत के विरुद्ध दिल्ली हाईकोर्ट मे दायर की गयी स्टेटसमन की रिट के बारे म कुछ भी न छापा जाय।

2 जम्मू कश्मीर म लागू किय गय अध्यादेशो की अवधना के सम्बन्ध म कोई खबर या टिप्पणी न छापी जाये।

(ह०)

29-7 1976 समाचार सपादक

सर्विस नम्बर 2/8/7/2/1 (बगलौर/विजयवाडा/मद्रास/बम्बई/दिल्ली)
हैदराबाद 30 जुलाई

हैदराबाद के श्री आर० श्रीनिवासन की ओर से बगलौर के श्री टी० आर० के नाम और सभी समाचार सपादको के नाम (सभी केन्द्रो के) प्रतिलिपि।

श्री टी० नागी रेड्डी की अत्येष्टि के बारे मे समाचार प्रकाशित करने के बारे मे सेंसर की ओर से निम्नलिखित हिदायतें दी गयी हैं

"हमे खेद के साथ कहना पड रहा है कि स्व० श्री टी० नागी रेड्डी की अत्येष्टि की खबर सक्षिप्त रूप मे छापें। उसमे शव के पोस्टमाटम, उनके अण्डरग्राउण्ड जीवन और अत्येष्टि के समय उपस्थित लोगो की सख्या आदि का उल्लेख न करें।"

सेंसर का फोन (राघवन)

विनोबा भावे से सम्बन्धित किसी भी खबर को पहले सेंसर करा लें।
9 अगस्त, 1976

सेंसर के दफ्तर से श्री ठुकराल

राज्यसभा के सदस्य श्री सुब्रह्मण्यम स्वामी के बारे मे इस आशय की कोई खबर या टिप्पणी न छापी जाये कि आज ससद मे उन्होने व्यवस्था का एक प्रश्न उठाया था, ससद के प्रसग म उनसे सम्बन्धित कोई अन्य रिपोर्ट भी प्रकाशित न की जाय।
10 8 76

सेंसर का फोन (पारधी)

जेल सुधार के बारे मे लोकसभा मे उठाये गये प्रश्न के सम्बन्ध मे कुछ न छापा जाये।

(ह०)
समाचार सपादक

11 8-1976

सेंसर का फोन

जमायते-उल्माए हिन्द ने कुछ प्रस्ताव पास किये हैं। एक प्रस्ताव लेबनान मे सीरिया के हस्तक्षेप के बारे म है। इस प्रस्ताव को छापने म पहले सेंसर करा लें।

(ह०)
समाचार सपादक

24 8 1976

श्री राघवन, सेंसर

ससद की आज की कारवाई छापने म पहले सेंसर करा लें।

(ह०)
समाचार सपादक

1 सितम्बर, 1976

सेंसर से

भारत की बार कौंसिल के अध्यक्ष राम जेठमलानी के बारे म जो इस समय अमरीका मे हैं सभी खबरें छापने म पहले सेंसर करा ली जायें।

(ह०)
समाचार सपादक

6-9 1976

सेंसर का फोन

पंजाब के परिवहन राज्य मंत्री श्री दिलबागसिंह दलेके ने पंजाब हरियाणा परिवहन विवाद के सम्बन्ध में विधानसभा में एक बयान दिया है जिसमें अम्बाला से चंडीगढ़ के बीच एक गलियारे का उल्लेख है। इस गलियारे के बारे में सारे उल्लेख काट दिये जायें।

(ह०)
समाचार संपादक

9 सितम्बर, 1976
प्रतिलिपि संपादक को

सेंसर का संदेश (श्री राघवन)

विमान का अपहरण करनेवालों के नाम, राष्ट्रीयता तथा उनके इरादे के बारे में मौजूदा देशों हाल पर आधारित कोई अटकलबाजी की खबर न प्रकाशित की जाय।

(ह०)
गिरीश सक्सेना

11 सितम्बर, 1976
प्रतिलिपि संपादक को

सेंसर से श्री लक्ष्मीचंद

अमरीका की फिलिप्स पट्रोलियम कम्पनी से सम्बंधित सारी खबरें सेंसर के लिए भेजी जायें।

(ह०)
ए० पी० सक्सेना
समाचार संपादक

15 9 1976

सेंसर के दफ्तर से श्री ठकराल का फोन

आंध्र प्रदेश के विधायक स्व० श्री नागी रेड्डी ने आंध्र प्रदेश के [illegible] के खिलाफ अदालत की मानहानि के सम्बन्ध में सुप्रीम कोर्ट में जो रिट [illegible] है, उसकी कारवाई प्रकाशित न की जाय।

(ह०)
[illegible]

20 सितम्बर, 1976
प्रतिलिपियां संपादक
नई दिल्ली ब्यूरो
डेस्क

सेंसर का फोन (ए० पी० सिंह)

जयगढ किले मे दफन खजाने की खोज के बारे मे कोई खबर सेंसर को दिखाये बिना न छापी जाये।

(ह०)
त्रिपाठी
सब-एडिटर

21 सितम्बर, 1976
प्रतिलिपियाँ सपादक
ब्यूरो
सभी चीफ सब

श्री लक्ष्मीचद सेंसर

कृपया डाकू सुदर के बारे मे कोई अटकलबाजी की या सनसनीखेज खबर न छापें क्योकि उससे छानबीन के काम मे बाधा पड सकती है। इस सम्बन्ध मे आपसे अनुरोध है कि आप वही छापें जो सरकारी तौर पर कहा जाय।

(ह०)
एस० के० वर्मा
समाचार उप-सपादक

29 9 1976

सेंसर का सन्देश

विदेश मत्रालय भारत पाक वार्ता के बार मे एक बयान जारी कर रहा है। आपसे अनुरोध है कि आप किसी टिप्पणी या सपादकीय के बिना केवल उसका सरकारी विवरण ही छापें।

(ह०)
ए० पी० सक्सना
समाचार सपादक

7 10 1976

के० बी० शर्मा सेंसर का फोन

कृपया पजाब की धारीवाल मिल म हडताल के बारे मे कोई खबर न छापें।

6-10 1976

एस० के० वर्मा
समाचार उप-सपादक

श्री रतन सेंसर का फोन

उडीसा के छ काग्रेसी नताओ न, जिनमे केन्द्रीय मत्री जे० बी० पटनायक भी शामिल हैं, पार्टी के मामलात के बारे म पुरी मे एक बयान दिया है। इस सेंसर करा लिया जाये।

12 10 1976

शिवदास
चीफ सब

सेंसर का फोन

शेख अब्दुल्ला की प्रेस कान्फ्रेंस की रिपोट छापने स पहल सेंसर को भेजी जाय।

(ह०)
ए० पी० सक्सना
समाचार संपादक

12 10-1976

सेंसर ठकराल का संदेश

लुसाका मे, जहाँ रक्षामंत्री बंसीलाल ठहरे हुए थे, बम फटने की आशंका के बारे मे कोई खबर न छापी जाये।

(ह०)
14 अक्तूबर, 1976 शिवदास
चीफ सब

लक्ष्मीचंद सेंसर

ईरान को अमरीकी हथियारों की बिक्री के बारे म सारी खबरें और संपादकीय सहित सारी टिप्पणियाँ छापने से पहले सेंसर करा ली जायें।

(ह०)
16 10 1976 समाचार संपादक

सेंसर का फोन

कुछ चुने हुए सीमावर्ती क्षेत्रों म नेपाली नागरिकों पर भारत सरकार की ओर स लगायी गयी पाबंदियों के बारे मे कोई खबर और इस विषय मे नेपाली सरकार तथा भारतीय राजदूत के बयान छापने स पहले सेंसर कराने के लिए भेजे जायें।

(ह०)
16 10 1976 ए० पी० सक्सेना
समाचार संपादक

सेंसर का फोन

फीजो से मिलने के लिए नागा शांति परिषद् के प्रतिनिधिमंडल के इंग्लैंड जाने के बारे मे कोई खबर न छापी जाय।
20 10 1976 ए० पी० सक्सेना

उप मुख्य सेंसर, पिल्ले

हैदराबाद मे 29 अक्तूबर स 7 नवम्बर तक चौथा एशियन बैडमिंटन टूर्नामेंट होने जा रहा है। इसमे चीनी टीम के भाग लेने की खबर को बहुत न उछाला जाये (न विवरण के रूप मे, न खास फोटो छापकर)।

(ह०)
21 10 1976 ए० पी० सक्सेना
समाचार संपादक

सेंसर से जे० एन० सिन्हा

जम्मू कश्मीर के नये मंत्रियों के शपथ-ग्रहण के प्रश्न पर जो आज होने वाला था, केवल जम्मू कश्मीर सरकार की प्रेस विज्ञप्ति और मुख्यमंत्री का बयान छापा जाय। उसके बारे म कोई टिप्पणी जैसी रिपोर्ट न छापी जायें।

(ह०)
4 11-1976 ए० पी० सक्सेना
समाचार संपादक

सेंसर का सन्देश (लक्ष्मी शंकर)

ए० आई० सी० सी० के अधिवेशन में अम्बिका सोनी और महुआ जोशी के भाषण न छापे जायें।

प्रधानमंत्री के भाषण के लिए भी 'समाचार' की भेजी हुई खबर को ही नमूना बनायें।

(ह०)
शिवदास

21 नवम्बर, 1976

सेंसर के दफ्तर से श्री राघवन का फोन

आज मध्य प्रदेश की विधानसभा में पेश किये गये पहले पूरक बजट की खबर में से नेशनल हेराल्ड का चन्दा दिये जाने का हवाला काट दिया जाय।

(ह०)
एस० बनर्जी

30-11 1976

जे० एन० सिन्हा (सेंसर)

दिल्ली की वजीरपुर जैसी बस्तियों में औद्योगिक योजनाओं के लिए नवयुवक उद्यमियों के टैक्स देने से इकार कर देने के बारे में केवल सरकारी विज्ञप्ति ही इस्तेमाल की जाये।

(ह०)
ए० पी० सक्सेना
समाचार संपादक

4 12-1976

सेंसर का सन्देश (पारथी)

14 दिसम्बर को श्री संजय गांधी का जन्मदिवस मनाने के बारे में मुख्यमंत्रियों या कांग्रेसी नेताओं का कोई बयान इस्तेमाल न किया जाये।

(ह०)
शिवदास

9 दिसम्बर, 1976

जे० एन० सिन्हा (मुख्य सेंसर का दफ्तर)

अमरीका से भारत को 'स्काईहॉक जेट फाइटर' विमानों की सप्लाई के बारे में कोई खबर न छापें। केवल सरकारी घोषणा ही इस्तेमाल की जाये।

10 दिसम्बर 1976

प्रतिलिपि संपादक को

लक्ष्मीकान्त (सेंसर)

दक्षिण अफ्रीकी भारतीय परिषद के अध्यक्ष श्री ए० एम० मूसा का रंगभेद के बारे में कोई बयान या भाषण आपके प्रतिष्ठित पत्र में न छपने पाये।

(ह०)
समाचार संपादक

16 12 1976

सेंसर से श्री रतन

पार्टी के अन्दर की खींचातानी और झगड़ो और कांग्रेस तथा युवक कांग्रेस की टक्कर के बारे मे कोई खबर न छापी जाये।

(ह०)
19 12 1976 ए० पी० सक्सेना

सेंसर के दफ्तर से आनन्द पारधी का फोन

पाकिस्तानी दूतावास ने जिन्ना की जन्मशती के अवसर पर किसी समारोह का आयोजन किया है। एक समारोह आज इण्डिया इण्टरनेशनल सेंटर म है। एक और समारोह मे हमारे राष्ट्रपति को 25 दिसम्बर का राष्ट्रपति भवन म जिन्ना पदक दिया जायेगा। हो सकता है कुछ और समाराह भी हा। इन समारोहो की खबरें जरा नीचे स्वरो में दी जायें।

(ह०)
23 12 1976 ए० पी० सक्सेना
समाचार सपादक

श्री मेहरसिंह (सेंसर) का फोन

सेंसर की मजूरी लिये बिना उत्तर पूर्वी प्रदेश मे विद्रोह के बारे मे कोई खबर या लेख न छापा जाये।

(ह०)
23 12 1976 समाचार सपादक

सेंसर से पारधी

डायनामाइट काण्ड के सिलसिले मे मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट की अदालत मे दिया गया डा० कुमारी हुलगोल का बयान न छापा जाय।

(ह०)
23 12-1976 समाचार सपादक

के० बी० शर्मा (सेंसर)

रायपुर म लगाये जानवाले टलीविजन टावर के ढह जाने के बारे मे कृपया कोई समाचार न छापें।

(ह०)
28 12 1976 एम० डी० जोशी

मुख्य सेंसर के दफ्तर से

अफीकी नेशनल कांग्रेस व श्री एम० मूसा के बयानों का जो अफ्रीकी जनता की आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करते हैं, पूरी तरह प्रचार किया जाय। उन्होंने कल भोपाल मे एक बयान दिया था और शीघ्र ही एक और बयान देनेवाले हैं।

दक्षिण अफ्रीकी सरकार ने विरुद्ध संगठन दक्षिण अफ्रीकी भारतीय परिषद के अध्यक्ष श्री ए० एम० मूला के सम्बन्ध में पहले जो हिदायत दी गयी थी, वह अब भी लागू है।

(ह०)
4-1 1977 समाचार सम्पादक

श्री भाय (उप-मुख्य सेंसर)

नेताओं की मीटिंगों सहित कांग्रेस तथा युवक कांग्रेस में पार्टी के अन्दर के मामलात के बारे में सारी खबरें छापने से पहले कृपया सेंसर कराने के लिए भेजी जायें।

(ह०)
8 जनवरी, 1977 एम० के० वर्मा
समाचार उप-सम्पादक

अनुक्रमणिका